प्रकाशक
अवध पब्लिशिंग हाउस
लखनऊ

मुद्रक
नारायण कृष्ण पावगी
भारत प्रेस
नेहरू रोड, लखनऊ

इस छन्द में भूषण ने अपनी हार्दिक भावना को स्पष्टतया व्यक्त कर दिया है। वे स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि ये कुमाऊँ और श्रीनगर के [illegible], [illegible] और [illegible] उत्कृष्ट राजाओं से भी अधिक मोह से आलमगीर सम्राट का [illegible] पर प्रेम भाव दर्शाया था तथा उसे धन-धान्य से परिपूर्ण किया था। इससे अधिक उत्कृष्ट भाव तो किसी हिंदू कवि ने मुसलमानों के प्रति प्रकट ही नहीं किया। जिस व्यक्ति ने इन मुगल बादशाहों को [illegible] दिखाया है, ऐसे व्यक्ति को यदि कोई [illegible] कहता है, तो उसकी बुद्धि की बलिहारी है!

यदि भूषण में साम्प्रदायिक या जातीय द्वेष होता, तो उसके मुख से किसी मुसलमान की प्रशंसा न निकलनी चाहिए थी। परन्तु यह महाकवि केवल औरंगजेब के पूर्वजों की ही प्रशंसा नहीं करता, वरन औरंगजेब के पौत्र जहाँदारशाह की भी भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। उसकी प्रशंसा का एक छन्द यह है।

"डंका के दिये ते दल डंबर उमंड्यो,
उड़मंड्यो उड़मंडल लौं खुर की गरद है।
जहाँदारशाह बहादुर के चढ़त पैंड,
पैंड में मदन मारू राग बंब नद है।
'भूषण' भनत घने घूमत हरौलदार,
हिम्मत अमोल बढ़ हिम्मत दुरद है।
हद्दन छपद महि मद फरनद होत,
कद्दन मनद से जलद हलहद है।★

★ 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका जुलाई १९३४, पृ० ३२६।

समर्पण

प्रिय एक मात्र सहोदर लघु बन्धु ! (स्वर्गीय गैंदालाल दीक्षित) ! जिन 'शिवाजी' के राष्ट्र संगठन के आदर्श को प्रेरक बना कर 'महाकवि भूषण' ने स्वराज्य की सृष्टि कर डाली थी तथा अत्याचार से अभिभूत साम्राज्यवाद को ध्वस्त कर दिया था उसी का अन्वेषण, विवेचन और विश्लेषण इस 'भूषण-विमर्श' में किया गया है।

उसी आदर्श को लक्ष्य करके तुमने भी अपने अथक परिश्रम, त्याग और तपस्वी वृत्ति से जीवन की बाजी लगाकर 'शिवाजी-समितियों' का निर्माण इस प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में किया था। साथ ही एक बृहद् राष्ट्रीय सेना की स्थापना और संचालन करके सशस्त्र राज क्रान्ति का प्रत्यक्ष सजीव-स्वरूप खड़ा कर दिया था, जिसके प्रभाव से बृटिश शासकों का आसन डोल गया और हृदय थर्रा उठा था।

उक्त दोनों व्यक्तियों की स्वराज्य प्राप्ति की कृतकार्यता का स्वरूप भी एकसा ही दृष्टिगोचर होता है अन्तर यही है कि भूषण ने अपने जीवन-काल में ही इस स्वराज्य सुख का उपभोग कर लिया था परन्तु तुम्हारे प्रयत्न से मिला यह स्वराज्य नश्वर शरीर के अन्त होने पर तुम्हारे नाम से आत्मिक प्रभाव द्वारा काँग्रेस के हाथों में आ गया है। जिसमें अहिंसा और सत्य के बल का भी एक गहरा पुट लगा हुआ है। इस सफलता से तुम्हारी आत्मा को अवश्य पूर्ण संतोष होना स्वाभाविक है। अतः यह 'भूषण-विमर्श' तुम्हारी दिवंगत आत्मा को स्मृति स्वरूप गद्-गद् हृदय से रुद्ध कण्ठ हो सप्रेम समर्पित है।

तुम्हारा

दद्दा (भगीरथ प्रसाद दीक्षित)

विषय सूची

दो शब्द

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में विभिन्न युगों के परिवर्तन पर दृष्टिपात करते हुए हमें उन अमर कृतियों का परिचय मिलता है जिनके द्वारा उन युगों में क्रमशः नवीन भावनाओं का सृजन और विकास सम्भव हो सका था। इन कृतियों के रूप में राष्ट्र की शक्ति, जागृति और एकता का सन्देश देनेवाले महान कवियों और साहित्यकारों में महाकवि भूषण का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है जिन्होंने मुग़ल शासकों की दासता के बन्धन में जकड़े हुए, असहाय पीड़ित और अकर्मण्य हिन्दू-राष्ट्र को अपनी अमर-वाणी द्वारा नवजीवन दान दिया। वीर-रस-प्रधान उनकी काव्य-धारा प्रसुप्त, निष्प्राण और हताश स्वदेश के लिए, स्वधर्म के लिए, स्वजाति के लिए और हिंदी साहित्य के लिए साक्षात अमृत-स्रोत बन कर प्रवाहित हुई जिसने अल्पकाल में ही महाराष्ट्र कुल-भूषण शाहू जी और शूरशिरोमणि महाराज छत्रसाल जैसे महापुरुषों को देशोद्धार के लिए महाक्रान्ति का आवाहन करने को कटिबद्ध [illegible] दया युग ने करवट बदली और भारतीय राष्ट्र सबल होकर तत्कालीन विरोधी शक्तियों से सफलतापूर्वक संघर्ष करने लगा।

भूषण ने जहां हिन्दुत्व का समर्थन किया है वहां हिन्दू मुसलिम मेल पर भी अच्छा बल दिया है और राष्ट्रीय भावना के लिये क्षेत्र परिष्कृत करने का पूरा प्रयत्न किया था। वास्तव में औरंगजेब के अत्याचारों से समाज का रक्षण करना ही उनका प्रधान लक्ष्य था।

इस अमर कवि की जीवनी तथा कृतियां पर अनेक बार प्रकाश डाला जा चुका है। तद्विषयक ग्रन्थों की हिन्दी साहित्य में कमी नहीं है, परन्तु महाकवि भूषण की कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन जो

वास्तविक अर्थ में अनुसन्धान के तथ्यों पर आधारित हो, किसी भी पुस्तक में नहीं मिलता। इसी अभाव की पूर्ति करने के लिये आचार्य भगीरथ प्रसाद दीक्षित ने "भूषण-विमर्श" की रचना की। आचार्य जी ने वर्षों के परिश्रम, अध्यवसाय और अनुसन्धान के पश्चात् इस महान् कार्य्य में सर्व प्रथम सफलता पाई और उनके ग्रन्थ को साहित्य जगत में समुचित सम्मान प्राप्त हुआ। साहित्य के विद्यार्थियों और महाकवि-भूषण के विषय में साहित्यिक अनुसन्धान करनेवाले विद्वानों को इस ग्रन्थ मे पर्याप्त संकलित सामग्री प्राप्त हुई और इसकी उपादेयता को समझ कर उन्होंने अपने लेखों में इसे बड़ा महत्व दिया।

परन्तु, आचार्य भगीरथ प्रसाद दीक्षित की अभिलाषा सदा से महाकवि-भूषण-विषयक इस ग्रन्थ को अधिक से अधिक पूर्ण और उपयोगी बनाने की रही है और उनका अनुसन्धान कार्य्य 'भूषण-विमर्श' का प्रथम-संस्करण छपने के पश्चात् भी अनवरत चलता रहा है।

वस्तुतः, कई वर्षों के बाद आचार्य जी ने 'भूषण-विमर्श' की संशोधित, परिमार्जित और परिवर्धित पाण्डु-लिपि तैयार की जिसमें उनके नवीनतम अनुसन्धानों का तथ्य पूर्णतया वर्तमान था और हमारे द्वारा प्रस्तुत यह नया संस्करण उसी का मुद्रित-रूप है।

हमें विश्वास है कि हमारा यह प्रकाशन सदा की भाँति हमारे अनुग्राहकों, ग्राहकों, लेखकों तथा साहित्य के विद्यार्थियों को उपयोगी सिद्ध होगा और हिन्दी के प्राचीन राष्ट्रीय महाकवि भूषण के प्रति इसे हमारी श्रद्धाञ्जलि मान कर वे इसको समुचित सम्मान प्रदान करते हुए अपनी गुणग्राहकता का परिचय देंगे।

अवध-पब्लिशिंग-हाउस
चारबाग, लखनऊ
ता १-२-५०

—भृगुराज भार्गव
अध्यक्ष

सम्मति

आचार्य पं० भगीरथ प्रसाद दीक्षित का भूषण विमर्श नामक ग्रन्थ मैंने पढ़ा। इसमें दीक्षित जी ने भूषण के जीवन चरित्र और उनके काव्य के सम्बन्ध में खोजपूर्ण और ऐतिहासिक विवेचन के साथ नये विचार दिये हैं। अभीतक भूषण के जीवन चरित्र के लेखक और उनके काव्य के समालोचक विद्वान् उनको छत्रपति शिवाजी का समकालीन और उनका आश्रित कवि मानते आये हैं। दीक्षित जी ने इस मतको असत्य ठहराया है और यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि भूषण का जन्म शिवाजी की मृत्यु के बाद हुआ था तथा उन्होंने सितारा में छत्रपति साहू का आश्रय पाया था। इसमें यह भी सिद्ध किया गया है कि भूषण और मतिराम भाई नहीं थे। कुछ समालोचकों द्वारा भूषण पर किये गये आक्षेपों के भी, उन्होंने, अध्ययन पूर्ण उत्तर दिये हैं।

भूषण हिन्दी-वीर काव्य के एक प्रतिभा सम्पन्न और प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। उन्होंने हिन्दी के शृंगार और काव्य रीतिके कालमें शिवाजी जैसे वीर पुरुष का यश गान करके जनता के साहस और प्रसुप्त-वीर भावनाओं को जाग्रत किया था। जो कार्य शिवाजी ने अपने 'करवाल' से किया वह कार्य भूषण ने अपनी लेखनी से किया। उनके काव्य में जो जातिपक्ष और विद्वेष का दोष लगाया जाता है वह वास्तव

प्रकाशित किया तब कुछ विद्वानों ने उनकी तीव्र आलोचना की थ
दीक्षित जी फिर भी उस पर विचार करते रहे, किन्तु एक दो छोटी बा
को छोड़कर उन्हें कोई ऐसा प्रबल कारण न मिला जिससे कि वे अ
मत को बदल सकते। भूषणविमर्श के इस संस्करण में उन्होंने अ
विचारों को पहले से अधिक परिष्कृत करके रखा है। आशा की
है कि विद्वज्जन भी उनपर ध्यान और शान्ति पूर्वक विचार करेंगे।

आचार्य जी का प्रमुख निर्णय यह है कि भूषण कवि छत्रपति शि
के नहीं वरन् उनके पौत्र साहूजी के समकालीन कवि थे। आप लि
कि "भूषण का जन्म ही (संवत् १७३८ वि०) शिवाजी की मृत्यु
वर्ष पीछे हुआ था" (पृ० ५७) उनका असली नाम 'मनिरा
उनका जन्म-स्थान 'वनपुर' था। संभवतः सं० १७५८ वि० के प
वनपुर से हटकर त्रिविक्रमपुर (तिकमापुर) में रहने लगे थे (पृ० ३
वहीं पर चिंतामणि और मतिराम द्वितीय भी रहने लगे थे। [
तो उनके सहोदर थे किन्तु मतिराम उनके भाई न थे। यह म
महाकवि मतिराम से जिसने जहाँगीर के समय में ख्याति प्राप्त की
थे। भूषण ने शिवराज भूषण की रचना संवत् १७७३ में की। [
उन्होंने 'शाहू, को पढ़कर सुनाई थी। शाहू के सिवा भूषण
सोलंकी, मोरँग (विहार), कुमाऊँ, गढ़वाल, रीवाँ, जयपु
उदयपुर आदि के नरेशों तथा दिल्लीपति के दरब
देखा था। प्रतिष्ठा भी अच्छी प्राप्त की। "इन दरबारों
जाने का उद्देश्य ..विशुद्ध राष्ट्रीय संगठन था"

न कि भटई करके पैसा कमाना। दीक्षित जी ने भूषण के राष्ट्रीय पर्यटन तथा सम्मान करने वालों का भी वर्णन किया है और उसकी पुष्टि में भूषण के उपयुक्त छंदों का अवतरण देकर उनकी आलोचना भी की है।

भूषण ने छत्रपति शाहू, छत्रसाल, और सवाई जयसिंह की प्रशंसा विशेष रूप से की है।

छठवे अध्याय से दीक्षित जी ने भूषण की भाषा, शैली, कवित्व-रस, अलंकार, उदात्त भावना, विवेकपूर्ण विश्वास, मौलिकता आदि पर अपने विचार प्रकट किये हैं। भूषण पर किये गये कुछ आक्षेपों का-जैसे भिक्षुक वृत्ति, अश्लीलता, जाति तथा धर्म द्वेष, अनैतिहासिकता, भटैती आदि—भी निराकरण किया गया है। आपका कहना है कि "लोगों ने भूषण के विचारों को ठीक ठीक नहीं समझा इसीलिए वे भूषण की कविता पर आक्षेप कर बैठते हैं" (पृ० २७१) आक्षेप ही नहीं वरन् उनकी रचना से काल्पनिक आक्षेप वाले छन्दों को निकाल देने का आन्दोलन भी एक बार हो चुका है।

उपर्युक्त संक्षिप्त संकेतों से यह स्पष्ट है कि दीक्षित जी ने भूषण तथा उनकी रचनाओं की व्यापक और सांगोपांग आलोचना करने का प्रयास किया है। यद्यपि उनके कुछ विचारों से अन्य विद्वान् सहमत न हो सकेंगे। तथापि पक्षपात रहित पाठक यह मानने से संकोच न करेंगे कि दीक्षित जी ने अनेक भ्रमात्मक विचारों तथा भूषण संबंधी शंकाओं के समाधान करने का सराहनीय और बहुत कुछ सफल प्रयत्न किया है।

भूषण की कविताओं के संग्रहों में जो छन्द मिलते हैं वे सभी भूषण के ही रचे हुए हैं या उनके नाम से रचे हुए अन्य कवियों के भी छन्द

उनमें घुस आये हैं इसका निर्णय जब तक न हो जाय तब
भी निश्चित न हो जाय कि उनके छन्दों का प्रारम्भ और प्रसंगादि
क्या हैं तब तक वैज्ञानिक आलोचना और निश्चयात्मक निर्णय
दुष्कर सा है। यदि यह मान ही लिया जाय कि ये सब छन्द जिनका
रण दीक्षित जी ने दिया है निस्सन्देह भूषण के ही हैं तब तो दीक्षि
के निबन्ध का मुख्यांश पुष्ट और आदरणीय मानना ही पड़ेगा। तब
को शिवाजी के दरबार के कवि होने की कल्पना का बदलना अनिवा
जायगा। दीक्षित जी ने तो बहुत सी ज्ञातव्य बातें लिखी हैं किन्तु य
और कुछ न करके केवल भूषण के समय का निर्धारण ही करते त
उनकी कृति बड़े मार्के की कहे जाने की अधिकारिणी होती।

भूमिका में वाद-विवाद उठाने की न तो सम्मानित प्रणाली है
न उसके लिए स्थान ही है। यह सब विवेकशील पाठक स्व
कर लेंगे। आशा है कि यदि इस संस्करण के बाद दीक्षित जी के नि
पर यदि कुछ बहस छिड़ी तो वह गर्मा-गर्मी से रहित और विवेक
होगी। भूषण साहित्य पर दीक्षित जी ने जो आलोचना की है उसके
हिन्दी साहित्य सेवियों को कृतज्ञ होना चाहिए और उनका उत्साह
करना चाहिए। यों तो "नैको ऋषिर्यस्य मतिर्नभिन्ना" की कहावत च
ही आई है और चलती रहेगी किन्तु गुणज्ञ तो गुणों का सम्मान
ही रहेंगे।

१२ ए हेस्टिंग्स रोड
सिविल लाइन, प्रयाग
८-१-५०

(डा०) रामप्रसाद त्रिपाठी
डो० एस्० सी० लंद
इतिहास विभागाध
प्रयाग विश्वविद्याल

प्राक्कथन

संवत् १९७९ वि० में मैंने नागरी-प्रचारिणी-सभा-काशी के तत्वावधान में अन्वेषणार्थ असनी जिला फतहपुर की यात्रा की थी। इस यात्रा का उद्देश्य हस्तलिखित पुस्तकों की खोज करना तथा उनकी विस्तृत रिपोर्ट लेना था।

भागीरथी के किनारे बसा हुआ यह गाँव प्राचीन संस्कृति से युक्त अत्यन्त मनोरम लगता था। इसी पवित्र भूमि में प्राचीन काल से संस्कृत और हिन्दी के उद्भट विद्वान और कवि बराबर होते चले आये हैं। यह ग्राम पौराणिक वैद्य अश्वनी कुमार बन्धुओं का बसाया हुआ माना जाता है। यहाँ पर उक्त कुमार-द्वय की मूर्तियाँ एक मंदिर में स्थापित हैं जो कि अधिक प्राचीन नहीं है। इन वैद्यों के नाम पर यहाँ एक मेला भी लगता है।

बादशाह अकबर के दरबारी कवि नरहरि महापात्र यहीं रहते थे तथा इनके पुत्र हरनाथ कवि ने एक लक्ष मुद्रा व्यय करके अनेक कुलीन कान्यकुब्जों को लाकर बसाया था। इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रसिद्ध कवि इसी नगरी में हुए हैं जिनमें ईश्वर, ऋषिनाथ, शंकर, घनश्याम शुक्ल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आज भी यहाँ पर साहित्यिकों की उल्लेखनीय संख्या है। पचासों अपढ़ गाँव वासी यहाँ ऐसे मिलेंगे जिन्हें

सैकड़ों उत्तम कवित्त कंठस्थ हैं। संध्या समय इन लोगों का कविता पाठ एक अपूर्व आनन्द का समा बांध देता है।

यहाँ पर उक्त समय अपने एक साथी सहित ६ महीने तक हस्त-लिखित पुस्तकों की नोटिसें हम लोग लेते रहे परन्तु वे समाप्त नहीं हो पाई थीं। इनमें सबसे अच्छा संग्रह नरहरि महापात्र के वंशज श्रीमान् जी के पास था। इन्हीं के संग्रह में एक पुस्तक मतिराम कवि कृति वृत्त कौमुदी (छन्द सार पिंगल) नामक मिली थी जिसके आधार पर ही भूषण विषयक खोज का श्रीगणेश हुआ था और उसी के परिणाम-स्वरूप यह "भूषण विमर्श" ग्रंथ आपके सम्मुख है।

वृत्त कौमुदी में मतिराम के पिता का नाम, वंश, गोत्र, पूर्वजों के नाम आदि, भूषण के पिता, वंश आदि से भिन्न हैं, अतः भूषण और मति-राम सहोदर भाई कैसे माने जा सकते हैं!! यही शंका इस ग्रंथ का मूलाधार है। फिर इसी प्रश्न को लेकर नागरी प्रचारिणी पत्रिका के भाग ४ अंक ४ में एक विवेचनात्मक लेख लिखा गया था जो तत्कालीन साहित्यिकों की धारणा के नितान्त प्रतिकूल था। इस नवीन भावना को देखकर हिन्दी संसार एक बार ही विक्षुब्ध हो उठा। उस लेख से कुछ साहित्यिक विद्वानों को एक ऐतिहासिक मर्यादा टूटती हुई दिखलाई दी।

अनेक विद्वान् आलोचकों ने इस लेख के विरुद्ध आवाज उठाई और इसके खंडनार्थ अनेकों लेख प्रकाशित हुए। इन विरोधी लेखों से मुझे बल ही मिला। अनेक बातों के (जो केवल अनुमान पर अव-लंबित थीं) स्पष्ट प्रमाण मिलने लगे। भूषण-मतिराम के बंधुत्व संबंधी खोज के साथ उनके समय निरूपण तथा शिवाजी के संबन्ध को

यथार्थता भी कुछ कुछ प्रकट होती दिखलाई दी। अतः अन्वेषण का कार्य और भी तीव्र वेग से चलने लगा।

इसी कार्य के लिये सन् १६२३ ई० में मैंने भूषण के निवास स्थान तिकमापुर (कानपुर) की यात्रा की। वहाँ पर सिवाय उनके मकानों के खंडहरों के और कुछ न मिला। केवल पं० मन्नालाल जी वैद्य के पास प्राचीन पत्रों पर भूषण के कुछ छन्द मिले जो भूषण के लिखे हुए बतलाये जाते हैं। हाँ, मतिराम के वंशज गंगाप्रसाद नामक युवक तिकमापुर से ४—५ मील के अंतर पर बांद गाँव में रहते थे। उनके पास से कश्यपगोत्र की एक वंशावली मतिराम के पंती बिहारीलाल कवि के कुछ पत्र और बुँदेल राजा विक्रमशाह व जयपुर नरेश की कुछ सनदें मिलीं जो उक्त कवि के नाम थीं। जिनमें से कुछ मैं उनसे ले भी आया था।

मैंने राजा बीरबल का बनवाया हुआ महादेव जी का मंदिर और बाग भी देखा जिनका उल्लेख भूषण ने शिवराज भूषण में इस प्रकार किया है—

वीर वीरवर से जहाँ उपजे कवि अरु भूप।
देव बिहारीश्वर तहाँ विश्वेश्वर तद्रूप॥

शिवराजभूषण छन्द २७

इस बाग में एक वृक्ष ३००-४०० वर्ष पुराना 'बाओ बाव' नामक अभी विद्यमान है जिसे बीरबल के हाथ का लगाया हुआ बताया जाता है। इस वृक्ष पर कानपुर के कलक्टर ने एक तख्ती भी लगवा दी है जिस पर उक्त विवरण लिखा हुआ है। यह बाग और मंदिर घाटमपुर—

मोरपुर रोड पर तिकमापुर से कुछ ही फासिले पर अवस्थित है। कुछ लेखकों ने उक्त मंदिर को राधाकृष्ण का मंदिर मान लिया है। जो कि उनकी स्पष्ट भूल है।

इस मंदिर से आधे मील के अंतर पर सँजेती नामक ग्राम में कवि मतिराम के वंशज 'मान' जी रहते हैं। उन्होंने बतलाया कि हम वत्सई के तिवारी हैं। तिकमापुर से डेढ़ दो मील के अंतर पर 'रनवन की भुइयाँ' नामक देवी का मंदिर है। जिसके विषय में कहा जाता है कि यहीं भूषण के पिता रत्नाकर देवी की उपासना किया करते थे। यह पर बड़ा और प्राचीन मंदिर तो नहीं है, पाछे की बनी छोटी सी मढ़िया अवश्य है। संभव है पुराना मंदिर नष्ट हो गया हो। इससे यह भी विदित होता है कि भूषण के यहाँ आ बसने पर उनके पिता रत्नाकर यहीं उनके साथ चले आये थे।

इस मढ़िया के दोनों ओर दो ग्राम बसे बतलाये जाते हैं जो पुर व बनपुर के नाम से प्रसिद्ध थे। वे इस समय बिल्कुल उ दशा में हैं। केवल कुछ खँडहर उन गाँवों की प्राचीन स्मृति रूप में भी उनकी साक्षा दे रहे हैं। कालिदास त्रिवेदी नामक कवि निवासी थे। जिसका उल्लेख उन्होंने अपने एक कवित्त "रन व तन्न भुजलतिका पैचढ़ो" में किया है।

तीसरी यात्रा रीवां राज्य की इसी भूषण विषयक खोज के थी। राज्य के दीवान पं० जानकीप्रसाद चतुर्वेदी ने मुझे रेकर्ड आदि से भूषण विषयक कागज पत्र देखने के लिये हर प्रकार कर दी थी। और पटेहरा (जहांपर बसन्तराय के वंशज रहते

लम्बी यात्रा का भी पूरा प्रबन्ध राज्य की ओर से ही कर दिया था। रींवा राज्य के इतिहास में हृदयराम की जागीर का वर्णन भी दिया हुआ है जिनसे मतिराम को भूषण की उपाधि मिली थी। यही विवरण रेकर्ड से भी प्राप्त हुआ था जिसे महाराजा अवधूतसिंह रीवाँ नरेश (भूषण के आश्रयदाता) के पुत्र अजीतसिंह ने संग्रह कराया था। पटेहरा में वसंत-राय सुरकी के वंशज राजा रामेश्वर प्रतापसिंह व कुंवर अवधेशप्रतापसिंह से सुरकियों की छन्दबद्ध एक वंशावली, एक महजरनामा और कई अन्य कागज पत्र मिले जिनसे भूषण के उपाधि दाता हृदयराम व आश्रयदाता वसंतराय सुरकी के समय पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस यात्रा में पं० अम्बिकाप्रसाद जी भट्ट 'अम्बिकेश', राजकवि रींवा व टीकमगढ़ से अधिक सहायता मिली थी।

मुझे पञ्जाब में भी कई मास तक अन्वेषण करने का अवसर मिला था। वहां से भी भूषण-मतिराम-चिन्तामणि संबंधी अच्छी सामिग्री मिली थी। पटियाला स्टेट लाइब्रेरी से मतिराम कृत 'अलंकार पंचाशिका' और नारनौल में चिन्तामणिकृत पिङ्गल की अत्यन्त प्राचीन प्रति तथा मतिराम कृत वृत्तकौमुदी (छन्दसार पिंगल) की दूसरी प्रति जो अधिक शुद्ध, परिष्कृत तथा प्राचीन थी, प्राप्त हुई। इनसे मुझे भूषण और मतिराम के बारे में अनेक नवीन बातें ज्ञात हुईं जिनका उपयोग व उल्लेख यथा स्थान किया गया है। चित्रकूट की यात्रा भी मैंने दो बार की। वहाँ पर कुछ उल्लेखनीय सामग्री तो नहीं मिली परन्तु हृदयराम के वंशज गंगासिंह नामक एक वृद्ध सज्जन ने बतलाया कि राजा हृदयराम सुरकियों की भागलपुर वाली शाखा के पूर्वज थे। वहाँ से यह भी

पता चला कि भूषण चित्रकूट नरेश वसन्तराय सुरकी के भी दरबार में गये थे, जो कि हृदयराम के भतीजे थे।

खोई (चित्रकूट) के प्रसिद्ध ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी ने बतलाया कि "वसन्तराय सुरकी की कहूँ न बाग मुरकी।" पद्यांश महाकवि भूषण का ही रचा हुआ है। परन्तु उक्त पद्यांश का पूरा छन्द आज तक नहीं प्राप्त हुआ।

शिवसिंह सरोज के रचयिता ठाकुर शिवसिंह सेंगर के पुस्तकालय का भी मैंने कई मास तक निरीक्षण किया। ये सेंगर महोदय कांथा जिला उन्नाव निवासी थे। इस पुस्तकालय में रतन कविकृत फतहप्रकाश ग्रंथ मिला जिसमें भूषण के दो नवीन छन्द उद्धृत मिले जिनकी चर्चा भी इस ग्रंथ में आचुकी है। शिवसिंह सरोज की रचना ही भूषण-मतिराम के ऐतिहासिक विवरण को शुद्ध करने के लिये हुई है। इससे यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि जनता में भूषण-मतिराम सम्बन्धी भ्रांतियां उस समय तक पर्याप्त मात्रा में भर चुकी थी।

भिनगा राज (जिला बहराइच) में भी कई मास तक पुस्तकों के अन्वेषण के लिये रहना पड़ा था। वहां से एक छंद भूषणकृत मिला जो भगवन्तराय खीचीं की मृत्यु पर उन्होंने लिखा था। इसी प्रकार असनी के श्रीलाल जी महापात्र के संग्रह से भी भूषण का दूसरा छंद भगवंतराय खीचीं की मृत्यु पर मिला था।

हरदोई के एडीशनल जज शंकर कवि तथा गोपालचंद्र जी सिन्हा से परेलिया (जिला हरदोई) में भूषण के वंशजों का पता लगा था जो शाहाबाद स्टेशन से १८ मील पर है। सन् १९४२ ई० में मुझे परेलिया

जाने का अवसर मिला। वहां पर पाठकों के कुछ घर हैं वे लोग भूषण को पाठक बतलाते हैं तथा एक वंश वृक्ष भी उनका मिला जिसमें भूषण के ८ भाई और पाठक वंश दिखलाया गया है। इन लोगों से ज्ञात हुआ कि यशोहरा (जिला मेरठ) भूषण को दिल्ली के बादशाह की ओर से मिला था जिसकी १४५०) रु० वार्षिक आय का आज भी ये पाठक लोग उपभोग कर रहे हैं। संभव है उक्त गांव के वाजिवुल अर्ज से भूषण सम्बन्धी कुछ और भी विश्वस्त प्रकाश डाला जा सकेगा। उक्त जज महोदय तथा पं० शीतलाचरण जी बाजपेयी एडवोकेट से ज्ञात हुआ कि उक्त गांव मनिराम को दिल्ली नरेश से प्राप्त हुआ था। इस प्रकार से मुझे भूषण सम्बन्धी खोज में भिन्न-भिन्न स्थानों से अनेक प्रकार की सामग्रियाँ प्राप्त हुई थी जिनका आधार लेकर नागरी प्रचारिणी पत्रिका माधुरी, सुधा, हिन्दोस्तान, मनोरमा, गङ्गा, भारत, प्रताप, साहित्य, आज सैनिक इत्यादि अनेक पत्र पत्रिकाओं में भूषण विषयक पक्ष विपक्ष में सैकड़ों लेख समय-समय पर प्रकाशित हुए थे। इनमें भूषण सम्बन्धी भिन्न-भिन्न घटनाओं और विचारों को लेकर विवेचन किया गया है। जिनसे साहित्यिक ज्ञान में अच्छी वृद्धि हुई तथा जीवन चरित्र पर नया प्रकाश पड़ा था। इन लेखों में से सबसे उत्कृष्ट सामग्री पं० मया शंकर जी याज्ञिक के अन्वेषणों से मिली थी। पं० कृष्णविहारी जी मिश्र द्वारा सम्पादित समालोचक पत्र से भी पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई थी। यद्यपि ये दोनों सज्जन भूषण विषयक मेरे विचारों से सहमत नहीं थे। फिर भी मैं इन दोनों महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मराठा इतिहास सभासद बखर में भी भूषण विषयक उल्लेख

ता है। उसमें लिखा है कि भूषण कवि कुमाऊँ इत्यादि पहाड़ी राज्यों भ्रमण करने के पश्चात् दक्षिण में शिवाजी के पास पहुँचे थे। ये यरें पेशवाओं के समय में एकत्रित की गई थीं। अतः इनमें ावदन्तियों का सहारा लेने के कारण कुछ भूल हो जाना स्वाभाविक है। सी प्रकार गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान् लेखक स्वर्गीय गोविन्द गिल्ला भाई ने भी अपने 'शिवराज शतक' नामक ग्रंथ में लिखा है कि भूषण ने पहले कुमाऊँ इत्यादि पहाड़ी राज्यों की यात्रा की थी फिर वे राजपूताने के जयपुर इत्यादि राज्यों में घूमकर दक्षिण की ओर गये थे। इन सबका समय शिवाजी से न मिलकर शाहू से ठीक ठीक मेल खा जाता है। उनकी रचनाएँ भी इसी बात की साक्षी देती हैं। शाहूजी से मिलने के साथ ही भूषण ने बाजीराव पेशवा से भी भेंट की थी जिसका उल्लेख इस ग्रंथ में यथावसर विस्तार से किया गया है।

दक्षिण की एक यात्रा भूषण ने उस समय की थी जब छत्रपति छत्रशाल पर मोहम्मद खां बंगस ने आक्रमण किया था तब उन्होंने भूषण को बाजीराव पेशवा की सहायता प्राप्त करने के लिए भेजा था। इसी समय वे पेशवा के भाई चिमना जी (चिन्तामणि) से भी मिले थे। कुछ लोगों ने लिखा है कि ये शिवाजी के पार्षदों में थे पर यह भ्रमात्मक बात है। भूषण ने शिवाजी के किसी सरदार की न तो प्रशंसा ही की है और न उसका उल्लेख ही किया है। ऐसी दशा में अपने से पूर्वकालीन किसी साधारण व्यक्ति की प्रशंसा शिवाजी के समान करना कभी संभव नहीं है।

शिवराज भूषण के निर्माणकाल का दोहा तथा आश्रय दाताओं का

उल्लेख उक्त कथन की स्पष्ट साक्षी हैं कि भूषण छत्रपति शाहू के दरबार में ही गये थे। शिवाजी की प्रशंसा तो उनके आदर्श पर राष्ट्र को संगठन करने के लिये ही ईश्वरावतार रूप में की गई है। भूषण का जन्म ही शिवाजी की मृत्यु के एक वर्ष बाद हुआ है तब उनके दरबार में जाने की बात ही व्यर्थ हो जाती है। भूषण की योग्यता के विषय में भी लोगों ने अनेक प्रकार के आक्षेप किये हैं। ये दोषारोपण नितान्त अनुचित, असंगत और व्यर्थ हैं। मतिराम को भूषण की उपाधि ही आलंकारिक विशेषता, सामाजिक सुधारवाद, राजनीतिक उत्कृष्ट योग्यता, तथा धार्मिक परिष्कृतताके कारण ही मिली थी। भूषण की भावना वैदिक आधार पर अवलंबित थी। अतः भूषण शब्द में भी हमें यही ध्वनि निकलती जान पड़ती है जो कि उनकी आलंकारिकता, समाज सुधारकता तथा राजनीतिक कार्यकुशलता की परिचायिका है। वे वास्तव में भारतीय समाज के भूषण थे।

भूषण की रचनाएँ भी पर्याप्त मात्रा में थी। परन्तु उसमें से अधिकांश लुप्त प्रायः हो चुकी है। केवल थोड़ी सी रचनाएँ ही प्रकाश में आ सकी हैं। इसका मुख्य कारण भूषण विरोधी भावनाओं का विस्तार होना ही मानना पड़ेगा। मुसलमान शासकों ने तो भूषण की भावना का औरंगजेब विरोधी होने के कारण विरोध किया ही था, अंग्रेज भी इस विचारधारा को बढ़ने नहीं देना चाहते थे। क्योंकि इन्हें भय था कि कहीं शिवाजी का आदर्श क्रान्ति का रूप न धारण करले। अन्त में यह भय सत्य ही प्रमाणित हुआ और अंग्रेजों को अपना डेरा डंगर लेकर सात समुद्र पार जाने के लिये बाध्य ही होना पड़ा

क्रान्ति की थी, वह समाज का मस्तक आज भी उन्नत किये हुए है। उसने हिन्दू जाति में एक विलक्षण स्फूर्ति, नवजीवन-ज्योति, अपूर्व उत्साह एवं सामाजिक जागृति उत्पन्न कर दी थी। वरन् यह कहना अनुचित न होगा कि तुलसी और सूर दोनों की अपेक्षा भूषण का कार्य अधिक महत्वपूर्ण एवम् देश के लिए कल्याणकर था। जिसने देश और समाज की सारी जीवन-प्रणाली ही बदल दी। इसकी राजनीति भारत के बच्चे-बच्चे के हृदय में ऐसा घर किए हुए है कि लेखनी से यथार्थ चित्र खींचना संभव ही नहीं है। मुख्यतः मानसिक निम्नता का भय (Inferiority complex) दूर करने में भूषण ने जैसा प्रभावशाली कार्य किया है वैसा भारत के इतिहास में बहुत कम देखने को मिलेगा। जब ऐसे महान् व्यक्तियों का जीवन-चरित्र ही भ्रमपूर्ण बातों से परिपूर्ण है, तब दूसरों के विषय में तो कहना ही क्या!

ठाकुर शिवसिंह जी सेंगर ने अपने शिवसिंह सरोज की भूमिका के प्रारम्भ में ही लिखा है :—

"मैंने सम्वत् १९३३ विक्रमी में भाषा-कवियों के जीवन-चरित्र सम्बन्धी एक-दो ग्रन्थ ऐसे देखे, जिनमें ग्रन्थकर्ता ने मतिराम इत्यादि ब्राह्मणों को लिखा था कि वे असनी के महापात्र भाट हैं। ये सब बातें देखकर मुझसे चुप न रहा गया। मैंने सोचा, अब कोई ऐसा ग्रन्थ बनना चाहिए जिसमें प्राचीन और अर्वाचीन कवियों का जीवन-चरित्र सन्, संवत्, जाति, निवासस्थान, कविता के ग्रन्थों व उदाहरणों समेत विस्तारपूर्वक लिखा हो।"※

इससे स्पष्ट है कि आज से पचास-साठ वर्ष पूर्व से ही नहीं वरन् भूषण की मृत्यु के कुछ काल पश्चात से ही उनके संबंध में

※ शिवसिंह सरोज की भूमिका पृ० १

अनेक भ्रान्तियाँ फैलने लगी थीं। जिससे भूषण और मतिराम-विषयक बहुत ही अशुद्ध एवम् भ्रान्तिपूर्ण भावनायें समाज में भर गई थीं। जिन्होंने हमारे इतिहास को भी मलिन बना दिया है। अनुसन्धान द्वारा इन भ्रान्तियों के निराकरण का प्रयत्न तो दूर रहा, इधर कई लेखकों ने तो भूषण के चरित्र पर भी भिन्न-भिन्न प्रकार के घृणित आक्षेप आरोपित करके उन्हें जातीय विद्वेष फैलानेवाला, कामुक और लोलुप तक कह डाला है। भूषण-सम्बन्धी अनेक किंवदन्तियाँ ऐसी फैली हुई हैं, जो उनके जीवन-चरित्र को और भी अन्धकार में डाले हुए हैं। एक ही बात भिन्न-भिन्न रीति से कही जाती है। एक सज्जन निज सम्पादित शिवराज-भूषण की भूमिका पृष्ठ ८ पर, बंगवासी प्रेस में छपी शिवाबावनी का आधार लेकर चिन्तामणि का जन्म संवत् १६५८ और भूषण का संवत् १६७२ वि० मानते हैं, किन्तु हिन्दी नवरत्न में उन्हीं महानुभाव द्वारा भूषण का जन्म सं० १६९२ वि० लिखा गया है।

एक दूसरे सज्जन भूषण का छत्रपति साहू के दरबार में जाना तक स्वीकार नहीं करते। शिवराजभूषण के निर्माण काल पर भी विद्वानों में गहरा मतभेद है। इसी प्रकार उनके भाइयों के सम्बन्ध में भी हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कोई उन्हें जाति से भाट मानता है तो कोई शिवाजी का दरबारी कवि मान कर भाट के रूप में प्रतिपादन करता है। कोई भूषण का दो भाई होना बतलाता है, तो कोई तीन, कोई चार, कोई पाँच और कोई तो उन्हें आठ भाई कहने में भी नहीं हिचकिचाते। परेलिया (जिला हरदोई) से प्राप्त शिजरे में भूषण आठ भाई दिखाये गये हैं। किसी ने भूषण को औरंगजेब के दरबार में जाना और उन्हें भड़ौआ सुनाकर तथा कबूतरी घोड़ी पर बैठकर ऐसी तेजी से भाग जाना बतलाया है कि औरंगजेब का कोई सरदार और सिपाही भी

उन्हें न पकड़ सका। किसी ने भूषण को बड़ी अवस्था तक अपढ़ मूर्ख मानकर देवी के वरदान से कविता करना सिखलाया है।

किसी ने भाभी के ताने पर एक लाख रुपये का नमक भिजवाया है, तो किसी ने शिवाजी के सामने एक ही छंद अठारह या बावन बार सुनाने की बात कही है। इसी प्रकार भूषण-विषयक असम्बद्ध और अशुद्ध किंवदंतियों का एक लम्बा ताँता-सा बँध गया है। जिनका निराकरण करना साहित्यकों, ऐतिहासिकों और विद्वानों का एक प्रधान कर्तव्य है।

लोगों को महाकवि भूषण के असली नाम तक का पता नहीं है। उनका मूल निवास किस स्थान पर था; उनका जन्म-काल क्या था, उनके कौन-कौन भाई थे; किन-किन परिस्थितियों में रहकर उन्होंने अपनी रचना द्वारा देश में नवजीवन-सञ्चार किया था, उनका शिवाजी से क्या सम्बंध था; साधारण जनता पर उनकी रचना का क्या प्रभाव पड़ा था; राजाओं को किस प्रकार प्रोत्साहित करके उन्हें सङ्गठित किया था; शिवाजी को ही उन्होंने अपना आदर्श क्यों माना था? उनके कौन-कौन आश्रय-दाता थे तथा सङ्गठन में पूर्णरूप से सफलता प्राप्त करने के लिए, इस महाकवि को क्या-क्या भगीरथ प्रयत्न करने पड़े थे? इन बातों की विवेचना का प्रयत्न वैज्ञानिक ढङ्ग से अब तक विद्वानों ने किया ही नहीं। और न उनके जीवन चरित्र सम्बंधी खोज ही पर्याप्त रूप से की गई है। जिन व्यक्तियों ने भूषण के चरित्र-विषयक कुछ नवीन बातें जनता के सम्मुख लाकर रक्खीं भी तो उनका तीव्र विरोध किया गया। ऐसी खोज के लिए प्रोत्साहन मिलना तो दूर रहा, उल्टा घोर विरोध हुआ। एक आध को छोड़-कर शेष हिन्दी संसार इस विषय में वितंडावादी के रूप में ही जनता के सम्मुख आया है।

भूषण का असली नाम

'भूषण' कवि का मूल नाम नहीं है, उपनाम है। जैसा कि शिवराज भूषण के इन दोहे से प्रकट होता है :—

कुल सुलंक चित्रकूट पति, साहस सील समुद्र।
कवि भूषण पदवी दई, हृदयराम सुत रुद्र॥

—शि० शिव० भू० छंद २८

संवत् १९८७ वि० के श्रावण मास के 'विशालभारत' के एक लेख में इनका नाम 'पतिराम' बताया गया है, जो कि मतिराम के वजन पर ही लिखा गया प्रतीत होता है। मतिराम वास्तव में भूषण के सहोदर भाई न थे, जैसा कि आगे चल कर प्रमाणित किया गया है। अतः इनके नाम का ठीक-ठीक अनुसंधान करना समीचीन और युक्ति युक्त प्रतीत होता है। अब तक विद्वानों ने जो अनुमान लगाये हैं उनसे ऐतिहासिकों को कुछ भी समाधान नहीं हुआ है। इस समय तक प्राप्त अन्वेषणों पर एक विवेचनात्मक दृष्टि डालना असंगत नहीं प्रतीत होता।

किसी ने इनका नाम कन्नौज बतलाया है और किसी ने 'भूषण' ही इनका मूल नाम कहा है।

मेरा अनुमान है कि भूषण का असली नाम "मनिराम" था। पहले मेरा विचार यह था कि जटाशङ्कर ही भूषण का असली नाम है, जैसा कि मैंने जुलाई १९३२ ई० की हिन्दुस्तानी पत्रिका में संकेत किया था, परन्तु इधर पं० बद्रीदत्त जी पाण्डेय कृत कुमाऊँ के इतिहास में वर्णित एक घटना से मुझे अपना पूर्व अनुमान बदलना पड़ा। इस इतिहास में राजा उद्योतचन्द का वर्णन करते हुए लेखक ने लिखा है—

"कहते हैं सितारागढ़-नरेश साहू महाराज के राज-कवि

'मतिराम' राजा के पास अलमोड़ा आये थे। उन्होंने राजा की प्रशंसा में यह कवित्त बनाकर सुनाया था। राजा ने दस हजार रुपये तथा एक हाथी इनाम में दिया।"

वह छंद इस प्रकार है :—

पूरण पुरुष के परम दृग दोऊ जानि,
कहत पुराण वेद बानि जोरि रढ़ि गई।
.........दिन पति ये निशापति ज्यों,
दुहुन की कीरति दिशानि माँझि मँढ़ि गई।
रवि के करण भये एक महादानि यह,
जानि जिय आनि चिन्ता चित माँझि चढ़ि गई।
तोहि राज बैठत कुमाऊँ श्री उदोतचंद्र,
चन्द्रमा की करक करेजे हू ते कढ़ि गई।

—दे० कुमाऊँ का इतिहास पृ० २०३।

यही छंद शिवसिंह सरोज के पृष्ठ २३० प्रथम संस्करण पर मतिराम के नाम से दिया हुआ है। कुमाऊँ के इतिहास में यह छंद बहुत ही विकृत रूप में छपा है। अतः यहाँ हमने सरोज का ही रूप लिया है। क्योंकि वह अधिक शुद्ध है। यद्यपि दोनों छंदों की वास्तविकता में कोई अंतर नहीं है। इतिहास वाले छंद की दूसरी पंक्ति में कई अक्षर न्यून हैं। जिसमें से कवि का नाम भी उड़ा हुआ है। इसकी अन्य पंक्तियों में भी अक्षरों की न्यूनाधिकता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। अतः सरोज का यह छंद निर्विवाद रूप से अधिक शुद्ध है। हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि सरोज में वह छंद मतिराम के नाम पर लिखा हुआ है।

उक्त इतिहास के पूर्वापर तारतम्य पर विचार करने से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलता है।

१. मतिराम कभी छत्रपति साहू के दरबार में नहीं रहे। और न वहाँ उनका जाना ही पाया जाता है।

२. मतिराम स्थायी रूप से कुमाऊँ-नरेश उद्योतचंद्र के दरबारी कवि थे। अतः उक्त पुरस्कार की बात मतिराम के लिए लागू नहीं हो सकती।

३. साहूजी के दरबारी कवि हिन्दी के महाकवि भूषण ही थे। अन्य कोई हिन्दी का कवि उस दरबार में नहीं पहुँचा।

४. इस विषय में यह भी एक बात ध्यान देने योग्य है कि उक्त पुरस्कार में कुमाऊँ-नरेश के अभिमान की मात्रा अधिक होने से भूषण ने उस धन का परित्याग कर दिया था। जिसका संकेत उन्होंने उस घटना के बाद ही श्रीनगर-नरेश फतहशाह की प्रशंसा के लिए कहे छंद में "संपति कहा सनेह न गथ गाहियो मन, सुम्र कहूँ निरखियोई मुकुति न मानियो" कहकर किया है।

५, छंद की रचना-शैली और शब्दविन्यास पर ध्यान देने से भी यही प्रतीत होता है कि उक्त छंद भूषण का ही है।

हमारे चरितनायक महाकवि भूषण वैदिक संस्कृति तथा भावना के प्रबल पक्षपाती थे। साथ ही ऐतिहासिक विवेचन-पद्धति भी उनकी रचना की एक विशेषता है। इसी प्रकार पौराणिक विचारों को भी वे सदैव नवीन रूप में ही उपस्थित किया करते थे। तुलना के लिये महाकवि भूषण का एक दूसरा छंद फतह प्रकाश नामक ग्रन्थ से यहाँ उद्धृत है जो कि श्रीनगर-नरेश फतहशाह की प्रशंसा में ऊपर लिखे कुमाऊँ-नरेश की प्रशंसा के छंद से कुछ दिन बाद ही कहा गया था। महाकवि भूषण कुमाऊँ

से प्रस्थान कर श्रीनगर, (गढ़वाल) नरेश के दरबार में जी पहुँचे थे वह छंद यह है :—

देवता को पति नोंको, पतिनी शिवा को हर,
श्रीपति न तीरथ विरथ उर आनियो।
परम धरम को है सेइयो न व्रत नेम,
भोग को सँजोग त्रिभुवन जोग मानियो।
भूषण कहा भगति न कनक मनि ताते,
विपति कहा वियोग सोग न बखानियो।
संपति कहा सनेह न गथ गाहिरो मन,
सुख कहँ निरखियोई मुकुति न मानियो।

इन दोनों छंदों पर विचार करने से स्पष्ट विदित होता है कि दोनों में पौराणिक भावना एक सी है। इन्द्र और शिव की महत्ता दिखलाते हुए तीर्थों का भ्रमण, व्रत, नेम, तथा विष्णु की उपासना को निरर्थक कहा गया है। इस छंद के अंतिम चरण द्वारा यह भी प्रकट कर दिया गया है कि अगर गहरा प्रेम नहीं है तो संपति व्यर्थ की वस्तु है। केवल सुख ही मोक्ष नहीं है। इन दोनों छंदों में वैदिक भावना स्पष्ट झलकती है। साथ ही उनका संकेत उद्योतचंद्र के दिए हुए दान को त्यागने की ओर भी है। जैसा कि किंवदन्ती के रूप में हिन्दी जगत में प्रसिद्ध है। इन दोनों कवित्तों द्वारा ऐतिहासिक उक्त दोनों राजचरित्रों का भी दिग्दर्शन करा दिया गया है। इस प्रकार से ये छंद एक दूसरे के उत्तर-प्रत्युत्तर से प्रतीत होते हैं। विवेचनात्मक शैली, वैदिक संस्कृति एवम् विचारधारा को देखकर बलपूर्वक कहा जा सकता है कि

उक्त दोनों नरेशों की प्रशंसा के छंद महाकवि भूषण कृत ही हैं। जो कि भूषण की विशेषता को भली प्रकार व्यक्त करते हैं।

यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना असंगत न होगा कि भूषण के अनेक छंद दूसरे कवियों के नाम पर धर दिए गए हैं जिनकी संख्या बीसियों तक पहुँचती है।

शिवसिंह सरोज और शृंगार संग्रह में ही ढूँढ़ने से ऐसे कई छंद मिले हैं जिन पर एक अलग अध्याय में विचार किया गया है। अतः निश्चित है कि इसे भी किसी ने भूषण के नाम से हटाकर मतिराम के नाम पर रख दिया है। परन्तु भूषण की रचना ऐसी विशेषता रखती है कि वह सरलतया अन्यों से अलग की जा सकती है। अतः यह भी निर्धारित करना युक्ति युक्त जान पड़ता है कि 'मनिराम' भूषण का ही असली नाम है। और 'भूषण' उनकी उपाधि है।

भूषण का जन्मकाल

भूषण के जन्मकाल पर हिन्दी संसार में घोर मतभेद है। किसी ने इनका जन्मकाल सं० १६७२ वि०, तो किसी ने सं० १६६२ वि० माना है। मिश्रबन्धु महोदय हिन्दी नवरत्न तथा मिश्रबन्धु विनोद में इनका समय सं० १६७२ वि० ही मानते हैं। परन्तु ठाकुर शिवसिंह सेंगर अपने "सरोज*" में चिन्तामणि का जन्म समय सं० १७२९ वि० और भूषण का जन्मकाल सं० १७३८ वि० लिखते हैं। काँथा (ठा० शिवसिंह सेंगर की जन्मभूमि) तिकमापुर (भूषण के निवासस्थान) और वनपुर (भूषण के जन्म स्थान) से १५, २० मील के ही अन्तर पर है। साहित्य के इतिहासों में वर्णित भूषण, मतिराम सम्बन्धी

* शिवसिंह सरोज पृ० ४६७

इनके अतिरिक्त मतिराम के निम्नलिखित ग्रन्थ और पाये जाते हैं: (१) रसराज (२) ललित ललाम (३) मतिराम सतसई (४) साहित्य सार (५) लक्षण शृङ्गार (६) छन्द सार पिंगल (वृत्त कौमुदी) (७) अलंकार पंचाशिका।

इनमें से नं० १, २ व ३ के ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं। इन ग्रन्थों में से ललित ललाम बूँदी नरेश भाऊसिंह के आश्रय में संवत् १७१५-१६ वि० के बीच किसी समय और मतिराम सतसई जम्बू के राजा भोगनाथ के लिए संवत १७३०-४० के बीच रची गई है। अलंकार पंचाशिका का निर्माण कुमाऊँ के राजकुमार ज्ञानचन्द्र के लिए संवत् १७४७ वि० में और छन्दसार पिंगल का निर्माण कुण्डार पति स्वरूपसिंह बुन्देला के अर्थ संवत् १७५८ वि० में हुआ था; शेष ग्रन्थों का रचना काल अज्ञात है।

पं० कृष्णविहारी जी मिश्र ने मतिराम का एक छन्द भगवंतराय खीची के लिए भी रचा हुआ प्रकाशित किया है।

वह छन्द यह है :—

दिल्ली के अमीर दिल्लीपति सों कहत वीर,
दक्खिन की फौज लैके सिंहल दबाइहौं।
जड़ाती जमेंसन की जेर कै सुमेर हू लौं,
सम्पति कुबेर के खजाने ते कढ़ाइहौं।
कहै 'मतिराम' लङ्कपति हू के धाम जाइ,
जङ्ग जुरि जमहूँ कौं लोह सौ चनाइहौं।

आगि में गिरेंगे कूदि कूप में परेंगे एक,
भूप भगवंत की मुहीम पै न जाइहौं।*

असोथर-नरेश भगवन्तराय खीची का समय संवत् १७७० वि० से संवत् १७६२ वि० तक माना जाता है। इनमें से उनका मृत्यु समय संवत् १७६२ निश्चित है, क्योंकि इसी संवत् में वे सहादत खाँ से युद्ध करते हुए मारे गये थे।÷ भगवन्तराय खीची एक साधारण जमींदार के लड़के थे और अपने बाहुबल द्वारा एक विशाल राज्य के अधिपति हो गये थे। अतः उक्त छन्द में वर्णित दशा संवत् १७८५ वि० के पश्चात् की ही हो सकती है, जब उन्होंने कोड़ा जहानाबाद के सूबेदार को मारकर वहाँ का राज्य हस्तगत कर लिया था। इसी अनुमान पर उक्त छन्द का समय निर्धारित किया जा सकता है। मतिराम ने ललित ललाम में एक छन्द यह भी लिखा है।

औरङ्ग दारा जुरे दोऊ जुद्ध,
भए भट क्रुद्ध विनोद विलासी।
मारू बजै 'मतिराम' बखानै,
भई अति अस्त्रनि की बरखा सी।
नाथ तनै तिहि ठौर भिर्यो,
जिय जानि कै छत्रिन कौं रन कासी।

---

* माधुरी ज्येष्ठ, संवत १६८१ वि०

÷ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ५, अङ्क १

। भयो हर हार सुमेरु,
छता भयो आपु सुमेरु कौ वासी ।*

प्रकार ललित ललाम के छन्द नं० १६५, २६० आदि
म्मान के साथ बूँदी-राजकुमार गोपीनाथ को 'नाथ'
सम्बोधन किया गया है। इनके अतिरिक्त ललित ललाम
नम्बर ३० में गोपीनाथ की जो प्रशंसा की गई है, उससे
नुमान होता है कि ये कवि महाशय महाराजा छत्रशाल के
महाराजकुमार गोपीनाथ के आश्रय में भी रहे होंगे।
राजा छत्रशाल के समय में मतिराम का बूंदी में रहने का
प्रमाण नहीं मिलता। सम्भव है, इस समय सम्मान
ने अथवा अन्य किसी कारण से वे वहाँ से जम्बू दरबार में
गये हों और भाऊसिंह के सिंहासनारूढ़ होने पर फिर
चले आये हों।

'छन्द सार पिंगल' में अपने आश्रयदाताओं का वर्णन करते
मतिराम ने एक छन्द लिखा है जो नीचे दिया जाता है:—

दाता एक जैसो शिवराज भयो तैसो अब,
फतेसाहि सीनगर साहिबी समाज है।
जैसो चितौर धनी राना नरनाह भयो,
तैसोई कुमाऊँ पति पूरो रजलाज है।
जैसे जयसिंह जसवन्त महाराज भए,
जिनको मही में अजौं बढ्यो बल साज है।

---

* ललित ललाम, छन्द ३६

मित्र साहिनन्द श्री बुन्देल कुल चन्द जग:

गैयाँ अब उदित स्वरूप महाराज हैं।*

इस छन्द में मतिराम ने अपने तीन आश्रय-दाताओं का उल्लेख किया है।—(१) श्रीनगर (गढ़वाल) नरेश फतहशाह, (२) कुमाऊँ पति उद्योतचन्द या ज्ञानचन्द और (३) कुंआर के अधीश्वर स्वरूपसिंह बुन्देला। इस प्रकार मतिराम के आश्रय-दाता निम्नलिखित ठहरते हैं :—

(१) अब्दुलरहीम खानखाना (रहीम कवि) सं० १६१३ वि० से १६८२ वि० तक।

(२) बादशाह जहाँगीर, सं० १६६२ वि० से १६८४ वि० तक।

(३) राजकुमार गोपीनाथ बूँदी, सं० १६८८ वि० से पूर्व।

(४) महाराज भावसिंह (बूँदी-नरेश) सं० १७१५ वि० से १७३८ वि० तक।

(५) राजा भोगनाथ सं० १७२० वि० से १७४० वि० तक।

(६) फतहशाह (श्रीनगर नरेश) सं० १७४१ से सं० १७७३ वि० तक।

(७) उद्योतचन्द्र व ज्ञानचन्द्र (कुमाऊँ-पति) सं० १७४५ वि० से १७६५ वि० तक।

(८) कुंआर-पति स्वरूपसिंह बुन्देला, सं० १७५८ वि० के लगभग।

(९) भगवन्तराय खीची (असोथर-नरेश) सं० १७७० वि० से १७९२ वि० तक।

ऊपर के आश्रयदाताओं की सूची और छन्दों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि मतिराम का कविता-समय सं० १६६०

* वृत्त कौमुदी, सर्ग ४

सीस भयो हर हार सुमेरु,
छता भयो आपु सुमेरु कौ बासी ।*

इसी प्रकार ललित ललाम के छन्द नं० १६५, २६० आदि में बड़े सम्मान के साथ बूंदी-राजकुमार गोपीनाथ को 'नाथ' कह कर सम्बोधन किया गया है। इनके अतिरिक्त ललित ललाम के छन्द नम्बर ३० में गोपीनाथ की जो प्रशंसा की गई है, उससे यही अनुमान होता है कि ये कवि महाशय महाराजा छत्रशाल के पिता महाराजकुमार गोपीनाथ के आश्रय में भी रहे होंगे। परन्तु हाड़ा छत्रशाल के समय में मतिराम का बूंदी में रहने का कुछ प्रमाण नहीं मिलता। सम्भव है, इस समय सम्मान कम होने अथवा अन्य किसी कारण से वे वहाँ से जम्बू दरबार में चले गये हों और भाऊसिंह के सिंहासनारूढ़ होने पर फिर बूंदी चले आये हों।

'छन्द सार पिंगल' में अपने आश्रयदाताओं का वर्णन करते हुए मतिराम ने एक छन्द लिखा है जो नीचे दिया जाता है :—

दाता एक जैसो शिवराज भयो तैसो अब,
फतेसाहि सीनगर साहिबी समाज है।
जैसो चित्तौर धनी राना नरनाह भयो,
तैसोई कुमाऊँ पति पूरो रजलाज है।
जैसे जयसिंह जसवन्त महाराज भए,
जिनको मही में अजौं चल्यो बल साज है

* ललित ललाम, छन्द ३६

से प्रारम्भ होकर सं० १७६० वि० तक पहुँचता है। इस १३० वर्ष के दीर्घ काल तक एक कवि कदापि रचना नहीं कर सकता। अतः अवश्य दो मतिराम मानने पर हमें बाध्य होना पड़ता है। ललित ललाम ग्रन्थ भाऊसिंह के आश्रय में रह कर रचा गया है; वह अधूरा है। उसमें सं० १७१८-१७१६ वि० तक की ही घटनाएँ आई हैं। अतः अनुमान होता है कि प्रथम मतिराम का संबंध इस समय बूँदी से टूट चुका था। इसके पश्चात वे जम्बू-नरेश भोगनाथ के दरबार में मतिराम सतसई रचते हुए दिखाई देते हैं। यह समय संवत् १७२० और ३० वि० के बीच का होना चाहिए। अतः प्रथम मतिराम का समय सं० १६३५ वि० से लेकर १७२५ वि० तक ६० वर्ष का और द्वितीय मतिराम का संवत् १७२० वि० से १७६५ वि० तक ७५ वर्ष का ठहरता है।

रसराज, ललित ललाम, और मतिराम सतसई के छन्द एक दूसरे में ओतप्रोत हैं। भाषा और शैली भी मिलती हुई है। अतः ये तीनों ग्रंथ एक ही कवि की रचना हैं, इसमें सन्देह नहीं।

(मतिराम ग्रन्थावली के सम्पादक महोदय ने उक्त ग्रन्थ की भूमिका पृष्ठ २२३ पर फतहशाह का समय सं० १७०० से १७१० वि० तक माना है। ज्ञात नहीं, इसका उनके पास क्या आधार है। गढ़वाल-पति* फतहशाह का समय गढ़वाल गजेटियर में सं० १७४१ वि० से १७७३ वि० तक निश्चित् है। इस पर हम आगे चलकर विशेष रूप से विचार करेंगे)।

सं० १७२५ तथा १७४७ वि० के बीच का कोई ग्रन्थ मतिराम का रचा नहीं मिला, इससे यही प्रतीत होता है कि प्रथम पाँच सज्जन रहीम, जहाँगीर, गोपीनाथ, भाऊसिंह और भोगनाथ

* गढ़वाल गजेटियर, पृ० ११८

ये प्रथम मतिराम के आश्रयदाता थे और ज्योतचन्द्र, ज्ञानचन्द्र, फतहशाह, स्वरूपसिंह बुन्देला और भगवन्तराय खीची ये पाँच आश्रयदाता दूसरे मतिराम के। इनमें से प्रथम चार का उल्लेख वृत्तकौमुदी के उक्त छन्द में भी आ गया है। भगवन्तराय खीची के दरबार में मतिराम वृत्तकौमुदी के रचनाकाल सं॰ १७५८ वि॰ के पीछे गये थे, अतः उनका उल्लेख इस छन्द में नहीं किया गया है। यहाँ इस बात की चर्चा करना भी असंगत नहीं है कि दोनों कवियों की रचनाओं में महान् अन्तर है। भाषा और शैली दोनों में ही विभिन्नता दिखलाई देती है। इस प्रकार दो भिन्न मतिरामों का होना निश्चित और प्रमाण-सिद्ध प्रतीत होता है।

भूषण और मतिराम की सामयिकता

महाकवि भूषण और मतिराम के आश्रयदाताओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि प्रथम मतिराम के आश्रयदाताओं (रहीम, जहाँगीर, गोपीनाथ, भाऊसिंह और भोगनाथ) में से भूषण का एक भी आश्रयदाता नहीं है और न इनकी प्रशंसा में उनका कोई छन्द ही मिलता है। इसके विरुद्ध दूसरे मतिराम के पाँच आश्रयदाताओं—(१) ज्योतचन्द्र, (२) ज्ञानचन्द्र, (३) फतहशाह, (४) स्वरूपसिंह बुँदेला और (५) भगवंतराय खीची—में से ज्योतचन्द्र, ज्ञानचन्द्र फतहशाह और भगवंतराय खीची ये चार भूषण के भी आश्रयदाता हैं। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि द्वितीय मतिराम ही भूषण के समकालीन थे, प्रथम नहीं; जैसा कि मतिराम के पंती बिहारीलाल कवि ने भी इन दोनों को सम-सामयिक लिखा है। यथा—

भूषण चिन्तामणि तहाँ, कवि-भूषण मतिराम ;
नृप हमीर सम्मान तें, कीन्हें निज-निज धाम ।

—देखिये विक्रम-सतसई की रसचन्द्रिका टीका ।

इससे यह स्पष्ट है कि ये तीनों कवि साथ-साथ रहते थे ।

भूषण और मतिराम का बन्धुत्व

मतिराम-कृत 'छन्दसार पिंगल' (वृत्त कौमुदी) की हस्त-लिखित प्रतियाँ लाल कवि महापात्र (नरहरि कवि के वंशज) असनी*, जिला फतहपुर निवासी और पं० भवानीप्रसाद शर्मा नारनौल, राज्य पटियाला निवासी के पास प्रस्तुत हैं, जिनका उल्लेख खोज-रिपोर्टों में भी आ चुका है । इनमें मतिराम का वंश-परिचय इस प्रकार दिया है :—

तिरपाठी वनपुर बसैं, वत्स गोत्र सुनि गेह ;
विबुध चक्रमणि पुत्र तहँ, गिरिधर गिरिधर देह । २१
भूमि देव बलभद्र हुव, तिनहिं तनुज मुनि मान ;
मंडित पंडित मंडली, मंडन मही महान । २२
तिनके तनय उदार मति, विश्वनाथ हुव नाम ;
दुतिधर श्रुतिधर को अनुज, सकल गुननि को धाम । २३
तासु पुत्र मतिराम कवि, निज मति के अनुसार ;
सिंह स्वरूप सुजान को, बरन्यो सुजस अपार । २४

इन्हीं प्रतियों में आश्रयदाता के सम्बन्ध में यह दोहा भी मिलता है :—

---

* खोज रिपोर्ट सन् १९२०-२२ नं० ११५

कश्यपगोत्री वछई के तिवारी कहते हैं। उनके यहाँ से जो कान्यकुब्ज वंशावली प्राप्त हुई है, उसमें भी वछई के तिवारी कश्यप गोत्र के अन्तर्गत हैं। इससे स्पष्ट है कि मतिराम और उनके वंशज वास्तव में कश्यप गोत्री हैं। मतिराम कवि पर विचार करते हुए एक सज्जन ने वछई शब्द का शुद्ध रूप "वत्सस्थराज" माना है। और लिखते हैं कि वंशावली में इसका मूल नाम यही है। अतः वत्सस्थ का अपभ्रंश वछई है वत्स्य का नहीं। यहाँ पर उक्त छपी वंशावली में स्पष्ट भूल प्रतीत होती है। क्योंकि मतिराम के वंशजों से प्राप्त प्राचीन हस्तलिखित वंशावली में उन्हें वछई के ही तिवारी लिखा है। वत्सस्थराज अथवा वत्स के तिवारी नहीं। अतः निश्चित है कि मूल नाम वछई ही है। वत्सस्थराज नहीं। वछई के ही आधार पर कान्यकुब्ज वंशावली के सम्पादक महोदय ने वत्सस्थराज और मतिराम ने वत्स बनाया प्रतीत होता है। इस परिवर्तन-भावना से स्पष्ट हो जाता है कि वास्तविकता की अनभिज्ञता कितनी अनर्थकारिणी है। प्रकृति-नियमानुसार वछई का शुद्ध रूप वत्स होता है। वत्सस्थ कदापि नहीं। अतः वछई को कश्यपगोत्र के अन्तर्गत मानना ही युक्तियुक्त है। भूषण और मतिराम पर विचार करते हुये पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र त्रिनेत्रजी ने आश्रयदाता के समय पर निम्नलिखित भाव व्यक्त किये :—

"त्रिनेत्रजी अपनी नई सूझ प्रमाणित करने के लिये भूषण और मतिराम की पुस्तकों के रचनाकाल पर विचार न कर इन दोनों कवियों के आश्रयदाताओं के जीवनकाल पर विचार करने लगते हैं। यदि चार-पांच आश्रयदाताओं के नाम मिल गये तो सब में पूर्ववर्ती का जन्म-काल और परवर्ती का राज्यावरोहण या मृत्यु-काल सामने लाया जाता है। इस प्रकार कवियों के कविता-

काल का विस्तार दिखाया जाता है। मतिराम का कविता-काल १३० वर्ष इसी प्रकार से दिखलाया गया है और उसके साथ ही किसी परवर्ती मतिराम कवि के आश्रयदाता का भी जीवन-काल मिला दिया गया है। अब बतलाइये इसे कवि का कविता-काल मानें अथवा उन आश्रयदाताओं के जीवन काल का विस्तार !"
देखिये — साप्ताहिक 'आज', ८-७-४० ।

यह एक आक्षेप है जो त्रिनेत्रजी द्वारा भूषण और मतिराम की ऐतिहासिकता पर किया गया है। अब हमें विचारना यह है कि आपके आक्षेपों में तत्त्व कितना है ? और यह दोषारोपण कहाँ तक युक्ति-संगत है ? मतिराम के इन आश्रयदाताओं में से सबसे प्रथम अब्दुलरहीम खानखाना का जन्म १६१३ वि० में हुआ था। अन्तिम आश्रयदाता भगवन्तराय खीची का मृत्यु-काल अवध के इतिहास में सं० १७९२ वि०, भगवन्तराय रासा में सं० १७९७ वि० और इम्पीरियल गजेटियर में सं० १८०३ वि० दिया हुआ है। यदि त्रिनेत्रजी के कथनानुसार मतिराम का कविताकाल रहीम के उद्भव-समय संवत् १६१३ वि० से लेकर खीची की मृत्यु संवत् १८०३ वि० तक लेते, तो यह समय १९० वर्ष तक जा पहुँचता है। यदि इसमें उनके जन्म से लेकर कविता का अभ्यास होने तक २५, ३० वर्ष और जोड़ दिया जाय तो उनका जीवन-काल २२० वर्ष तक लम्बा जा पहुँचता है। परन्तु हमने दोनों मतिरामों का कविता-काल केवल १३० वर्ष ही माना है। इससे यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि त्रिनेत्रजी ने ये आक्षेप विचारपूर्वक नहीं किये हैं। यह १३० वर्ष का समय निर्धारित करने में एक विशेष प्रणाली का अनुगमन किया गया है वह यह है :—

रहीम खानखाना के आश्रय में मतिराम के जाने का समय

संवत् १६६० वि० लिखा गया है। उस समय रहीम की अवस्था ४७ वर्ष की थी। रहीम-कृत 'वरवै नायिका भेद' पर मतिराम ने लक्षण लिखे हैं। यह रचना अत्यन्त शृङ्गारिक होने से रहीम की युवावस्था के उमंग-काल में ही रची जा सकती है। अतः उक्त समय युक्तियुक्त जान पड़ता है। उसके कुछ समय पीछे ही मतिराम ने उस पर लक्षण लिखे होंगे। अतः मतिराम का यह समय संवत् १६६० वि० के कुछ पीछे का ही हो सकता है। इसी प्रकार भगवंतराय खीची की प्रशंसा में जो छन्द मतिराम-कृत मिलता है, वह खीची के पूर्ण उत्कर्ष का द्योतक है। यह दशा सं० १७६० वि० के आसपास ही हो सकती है। जब कि उन्होंने कोड़ा जहानाबाद के सूबेदार को मारकर उसका सारा राज्य अधिकृत कर लिया था। अतः मतिराम का यह कविता-काल सं० १६६० वि० से सं० १७६० वि० तक १३० वर्ष लम्बा हो जाता है। इसमें तीस वर्ष आरम्भ के जोड़ देने पर मतिराम की अवस्था १६० वर्ष की हो जाती है। प्रथम तो इतनी बड़ी अवस्था सम्भव ही नहीं है। तिस पर इतनी वृद्धावस्था में राजदरबारों के चक्कर काटते फिरना तो और भी असम्भव है। अतः इस विस्तृत काल में निश्चित रूप से एक मतिराम न होकर अवश्य दो मतिराम मानने पड़ेंगे। जिसका उल्लेख पूर्व ही किया जा चुका है। यहाँ पर एक बात का उल्लेख करना असंगत न होगा कि त्रिनेत्रजी ने 'साथ ही किसी परवर्ती मतिराम कवि के आश्रयदाता का भी जीवन-काल मिला दिया है,' कहकर यह स्वीकार कर लिया है कि दूसरे मतिराम अवश्य थे। त्रिनेत्रजी आश्रयदाताओं के आधार पर कवि-समय का विचार करना उचित नहीं समझते। यद्यपि आश्रयदाताओं के आधार पर किसी कवि का समय निर्धारित करने में अत्यधिक सहायता मिलती है। क्योंकि इतिहास में

राजाओं का समय निरूपण तो मिलता है, परन्तु कवियों का समय नहीं दिया गया। अतः उक्त सहायता लेना स्वाभाविक है। जब कि मतिराम के दो-एक ग्रन्थों को छोड़कर किसी ग्रन्थ में निर्माण-काल ही नहीं दिया हुआ है। ऐसी दशा में आश्रय-दाताओं का सहारा लेना अनिवार्य हो जाता है। परन्तु त्रिनेत्रजी ने अपने लेखों तथा भूषण ग्रन्थावली की भूमिका में कहीं भी भूषण व मतिराम के आश्रयदाताओं का उल्लेख नहीं किया और न विवेचनात्मक ढंग पर विचार करने का ही कष्ट उठाया। उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि महाकवि मतिराम को भूषण की उपाधि कब और किसने दी? साथ में इसपर भी विचार नहीं किया कि 'शिवराज भूषण' के निर्माण-काल के अनेक दोहे, अनेक रूप में क्यों मिलते हैं? उनमें से सबसे प्राचीन और शुद्ध रूप कौन सा है? उस दोहे का यथार्थ भावार्थ क्या है? जो दोहा आपने लिया है वही ठीक क्यों है? भूषण और मतिराम के कौन-कौन से आश्रयदाता हैं? और उनका समय क्या है? भूषण का जन्म कब हुआ और शिवाजी का उनसे क्या सम्बन्ध था? इत्यादि बातों पर यदि त्रिनेत्रजी विवेचनापूर्वक विचार करते तो उन्हें सरलतया पता लग जाता कि भूषण का महत्व क्या है? तथा उनकी विशेषता का स्वरूप क्या है?

भूषण और मतिराम के बन्धुत्व के विषय में आपने एक नवीन खोज का भी उल्लेख किया है। मथुरा के पण्डों की बही में मतिराम के वंशज शिवसहाय का अपने परिवार समेत मथुरा जाने का उल्लेख है। उस बही में मतिराम के पिता का नाम रत्नाकर लिखा हुआ है। त्रिनेत्रजी को यह सूचना अब से ८-९ वर्ष पूर्व श्री पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी ने दी थी, इस पर ता० २३-६-४० के 'आज' में मैंने श्री जवाहरलाल जी

संवत् १६६० वि० लिखा गया है। उस समय रहीम की अवस्था ४७ वर्ष की थी। रहीम-कृत 'बरवै नायिका भेद' पर मतिराम ने लक्षण लिखे हैं। यह रचना अत्यन्त शृङ्गारिक होने से रहीम की युवावस्था के उमंग-काल में ही रची जा सकती है। अतः उक्त समय युक्तियुक्त जान पड़ता है। उसके कुछ समय पीछे ही मतिराम ने उस पर लक्षण लिखे होंगे। अतः मतिराम का यह समय संवत् १६६० वि० के कुछ पीछे का ही हो सकता है। इसी प्रकार भगवंतराय खीची की प्रशंसा में जो छन्द मतिराम-कृत मिलता है, वह खीची के पूर्ण उत्कर्ष का द्योतक है। यह दशा सं० १७६० वि० के आसपास ही हो सकती है। जब कि उन्होंने कोड़ा जहानाबाद के सूबेदार को मारकर उसका सारा राज्य अधिकृत कर लिया था। अतः मतिराम का यह कविता-काल सं० १६६० वि० से सं० १७६० वि० तक १३० वर्ष लम्बा हो जाता है। इसमें तीस वर्ष आरम्भ के जोड़ देने पर मतिराम की अवस्था १६० वर्ष की हो जाती है। प्रथम तो इतनी बड़ी अवस्था सम्भव ही नहीं है। तिस पर इतनी वृद्धावस्था में राजदरबारों के चक्कर काटते फिरना तो और भी असम्भव है। अतः इस विस्तृत काल में निश्चित रूप से एक मतिराम न होकर अवश्य दो मतिराम मानने पड़ेंगे। जिसका उल्लेख पूर्व ही किया जा चुका है। यहाँ पर एक बात का उल्लेख करना असंगत न होगा कि त्रिनेत्रजी ने 'साथ ही किसी परवर्ती मतिराम कवि के आश्रयदाता का भी जीवन-काल मिला दिया है,' कहकर यह स्वीकार कर लिया है कि दूसरे मतिराम अवश्य थे। त्रिनेत्रजी आश्रयदाताओं के आधार पर कवि-समय का विचार करना उचित नहीं समझते। यद्यपि आश्रयदाताओं के आधार पर किसी कवि का समय निर्धारित करने में अत्यधिक सहायता मिलती है। क्योंकि इतिहास में

राजाओं का समय निरूपण तो मिलता है, परन्तु कवियों का समय नहीं दिया गया। अतः उक्त सहायता लेना स्वाभाविक है। जब कि मतिराम के दो-एक ग्रन्थों को छोड़कर किसी ग्रन्थ में निर्माण-काल ही नहीं दिया हुआ है। ऐसी दशा में आश्रय-दाताओं का सहारा लेना अनिवार्य हो जाता है। परन्तु त्रिनेत्रजी ने अपने लेखों तथा भूषण ग्रन्थावली की भूमिका में कहीं भी भूषण व मतिराम के आश्रयदाताओं का उल्लेख नहीं किया और न विवेचनात्मक ढंग पर विचार करने का ही कष्ट उठाया। उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि महाकवि मतिराम को भूषण की उपाधि कब और किसने दी? साथ में इसपर भी विचार नहीं किया कि 'शिवराज भूषण' के निर्माण-काल के अनेक दोहे, अनेक रूप में क्यों मिलते हैं? उनमें से सबसे प्राचीन और शुद्ध रूप कौन सा है? उस दोहे का यथार्थ भावार्थ क्या है? जो दोहा आपने लिया है वही ठीक क्यों है? भूषण और मतिराम के कौन-कौन से आश्रयदाता हैं? और उनका समय क्या है? भूषण का जन्म कब हुआ और शिवाजी का उनसे क्या सम्बन्ध था? इत्यादि बातों पर यदि त्रिनेत्रजी विवेचनापूर्वक विचार करते तो उन्हें सरलतया पता लग जाता कि भूषण का महत्व क्या है? तथा उनकी विशेषता का स्वरूप क्या है?

भूषण और मतिराम के बन्धुत्व के विषय में आपने एक नवीन खोज का भी उल्लेख किया है। मथुरा के पण्डों की बही में मतिराम के वंशज शिवसहाय का अपने परिवार समेत मथुरा जाने का उल्लेख है। उस बही में मतिराम के पित का नाम रत्नाकर लिखा हुआ है। त्रिनेत्रजी को यह सूचना अब से ८-९ वर्ष पूर्व श्री पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी ने दी थ इस पर ता० २३-९-४० के 'आज' में मैंने श्री जवाहरलाल ज

के सहोदर भाई न थे। द्वितीय मतिराम ने 'वृत्त कौमुदी' (छंद-र पिंगल) में अपने आश्रयदाताओं का स्पष्ट उल्लेख किया है। तः निश्चित है कि प्रथम पाँच आश्रयदाताओं का इन दूसरे तिराम से कुछ भी संबंध न था।

चिन्तामणि और नीलकंठ

यह बात प्रसिद्ध है कि भूषण चार भाई थे। 'शिवसिंह सरोज' और 'मिश्रबन्धु विनोद' दोनों इस विषय में एकमत हैं। मतिराम के सम्बन्ध में हम देख चुके हैं कि वे भूषण के समकालीन होते हुये भी उनके सहोदर भाई न थे। अब यह प्रश्न उठता है कि अन्य दो भाई—चिन्तामणि और नीलकण्ठ—के सम्बन्ध में उक्त कथन कहाँ तक सत्य हैं।

चिन्तामणि-कृत पिंगल की एक प्रति मुझे नारनौल, राज्य पटियाला से प्राप्त हुई थी। उसमें निर्माण-काल का दोहार्द्ध इस प्रकार दिया हुआ है :—

"कहत अंक मनि दीप द्वै जानि बराबर लेहु।"*

इसके अनुसार पिंगल का निर्माण काल सं० १७७६ वि० ठहरता है। यह पिंगल ग्रन्थ मकरन्द शाह भोंसला के लिए रच गया था।

जिस प्रकार भूषण ने शिवाजी की प्रशंसा में शिवराज-भूषण उनके मरने के पीछे सं० १७७३ वि० में रचा था, उसी प्रक चिन्तामणि ने इस पिंगल ग्रंथ की रचना शिवाजी के पिता मकरंदशाह के लिए सं० १७७६ वि० में की थी। इस पिंगल में शाह का नामोल्लेख होने से उक्त विचार की ओर भी हो जाती है। सं० १७७६ वि० में पिंगल निर्माणकाल के स

---

* [illegible] हस्तलिखित प्रति, पृ० १

छत्रपति शाहू का राज्यकाल होने से इस विचार में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता।

चिन्तामणि-कृत 'रामाश्वमेध' के भी कुछ पृष्ठ अन्वेषण में मिल चुके हैं, जिनसे इनका कश्यपगोत्री, मनोह के तिवारी होना सिद्ध होता है। इसमें से निर्माण काल का वर्णन फट गया है।❀

चिन्तामणि ने बिजौरा-नरेश बाबू रुद्रशाह की प्रशंसा में यह छन्द कहा था—

प्रबल प्रचंड महाबाहु बाबू रुद्रसाहि,
तो सों बैर रचि न बचत खलकत है।
गहि करवाल काटि काढ़त दुवन दल,
सोनित समुद्र छिति पर छलकत है।
चिन्तामनि भनत भखत भूतगन मांस,
मेद गूद गीदर औ गीध गलकत हैं।
फाटे करि कुम्भन में मोती दमकत मानों,
कारे लाल बादल में तारे झलकत हैं।=

इन वर्दी-नरेश रुद्रशाह के विषय में 'रीवाँ राज्य दर्पण' के पृष्ठ ३३४ पर लिखा है—

"रञ्जीत देव की बीसवीं पीढ़ी में हरिहरशाह नामक अगोरी का राजा हुआ और रुद्रशाह नाम का उसका छोटा भाई था, जिसको अपने हिस्से में बिजौरा इलाका मिला था। उसने अपनी

❀ माधुरी, वर्ष २, खंड २

= माधुरी, वर्ष २, खण्ड २, अंक ६, पृष्ठ ७४२

राजधानी गढ़वा गाँव में स्थापित की थी और उसके दो उत्तराधिकारी भी वहीं रहे। अठारहवीं शताब्दी में राजा मयूरशाह ने जो परमाल से २४वीं पीढ़ी पर था, गढ़वा परित्याग कर अपनी राजधानी सोन और गोहद नदियों के सङ्गम पर वर्दी नामक ग्राम में बनवायी।"

रीवाँ गजेटियर में लिखा है :—

Bodh Raj, the younger brother of Rao Ratan, 40th in descent from Ranjit Deo, received as his share the village of Bhopari. ....Bodh Raj had two sons, Sarnam Singh and Fojdar Singh. In 1810, Dalganjan Singh, a step-brother of the Raja Manda, who lived in the Mirzapore district, committed a heinous offence. To escape arrest, he took refuge with Sarnam Singh.

Rewa State Gazetteer, pp. 80-8

प्रथम अवतरण से ज्ञात होता है कि रुद्रशाह परमाल से २१वीं पीढ़ी पर था। परमाल का समय संवत् १२४० वि० निश्चित है। रुद्रशाह से दो पीढ़ी पश्चात् मयूरशाह ईसवी सन् की अठारहवीं शताब्दी में था। अतः रुद्रशाह का समय संवत् १७५० वि० के आसपास पड़ता है। शिवसिंह सेंगर ने चिन्तामणि का जन्म संवत् १७२९ वि० माना है। इससे भी उक्त मिलान ठीक बैठ जाता है।

यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना असङ्गत न होगा कि रीवां गजेटियर में वर्णित रणजीत देव से बोधराज तक ४० पीढ़ियाँ बतलाना अशुद्ध है, क्योंकि इससे प्रत्येक पीढ़ी का साधारण औसत

ठीक नहीं बैठता और न निश्चित व्यक्ति के निर्धारित समय का मिलान ही ठीक-ठीक ज्ञात पड़ता है। अतः यह समय नितान्त अशुद्ध है। इसके मुकाबिले में 'रीवाँ राज्य दर्पण' का कथन बिलकुल सत्य प्रतीत होता है क्योंकि इसका आसन्न अन्य ऐतिहासिक घटनाओं से ठीक-ठीक मिलान खा जाता है और निश्चित समय में भी कुछ अन्तर नहीं पड़ता।

चिन्तामणि के एक आश्रयदाता सैयद रहमतुल्ला बिलग्रामी थे। इनका समय संवत् १७४५ वि० के पश्चात् पड़ता है।*

इन अवतरणों से प्रतीत होता है कि इन चिंतामणि का समय भी वही है, जो महाकवि भूषण का था। इसके विपरीत 'प्रबोध रस सुधासर' नामक ग्रन्थ में अन्य कवियों के साथ दूसरे चिंतामणि का भी उल्लेख आया है। इनके आश्रयदाता बूँदी-नरेश भाऊसिंह, बादशाह शाहजहाँ का पुत्र शाहशुजा और शाह-शुजा का पुत्र जैनुद्दीन मोहम्मद बतलाया गया है।

जयपुर नरेश रामसिंह की प्रशंसा में भी इनका एक छंद प्राप्त हुआ है।+

इन चारों आश्रयदाताओं का समय सं० १७०० वि० से सं० १७३८ वि० तक पड़ता है। अतः चिंतामणि प्रथम का समय भी इसी बीच में होना चाहिये।

चिंतामणि द्वितीय की रचना सं० १७४५ वि० से प्रारम्भ होती है। महाकवि भूषण का भी यही समय है, अतः ये दूसरे चिंतामणि और भूषण समकालीन ठहरते हैं।

मतिराम के पंती विहारीलाल कवि ने अपने ग्रंथ विक्रम-सतसई की रसचंद्रिका नामक टीका में भूपण, चिंतामणि और मतिराम के वनपुर से तिकमापुर में साथ-साथ आ वसने का उल्लेख किया है। इस वर्णन में भूपण और चिंतामणि का एक साथ कथन होने से इन दोनों के पारस्परिक सम्वन्ध अथवा भ्रातृत्व का अनुमान होता है। साथ ही साथ भूषण और चिंतामणि का गोत्र आदि एक होने तथा साथ साथ रहने से भी यही प्रतीत होता है कि ये दोनों भाई-भाई थे। यह वात अनेकों ग्रन्थकारों ने स्वीकार भी की है। इसके विरुद्ध कुछ भी प्रमाण न मिलने से हम भ्रातृत्व को स्वीकार करते हैं। तज़किरए सर्व आज़ाद, और वंश भास्कर भी इसी वात का समर्थन करते हैं।

अव रहे नीलकंठ कवि। इन्होंने पौरच-नरेश अमरेश के लिये 'अमरेश विलास' की रचना सं० १७९८ वि० में की थी ※। ये महाशय श्रीनगर-नरेश फतहशाह के दरवार में भी रहे थे+, जिनका समय सं० १७४१ वि० से १७७२ वि० तक था।

श्रीनगर-नरेश की प्रशंसा में फतहप्रकाश नामक ग्रन्थ रतन कवि ने वनाया था, जिनमें नीलकंठ के अनेकों छन्द उद्धृत हैं। अतः निश्चित है कि नीलकंठ का समय भी यही है। इससे ये भूपण और मतिराम के समकालीन भी ठहरते हैं। परन्तु विहारीलाल कवि ने वनपुर से तिकमापुर वसनेवालों में इनका उल्लेख नहीं किया और न तज़किरए सर्व आज़ाद और वंश-भास्कर में ही इन्हें भूपण, चिन्तामणि अथवा मतिराम का भाई वतलाया गया है।

※ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की खोज रिपोर्ट, सन् १९०२, नं० १
+ गढ़वाल गजेटियर, पृष्ठ ११८

शिवाजी नामक ग्रन्थ के लेखक ने भी इन्हें उक्त तीनों कवियों का भाई नहीं कहा। इसलिए हम भी नीलकंठ को भूषण का भाई मानने में असमर्थ हैं। इस प्रकार बन्धुत्व की इस विचार-धारा में केवल भूषण और चिन्तामणि ही सहोदर माने जा सकते हैं।

चूँकि भूषण, चिन्तामणि और मतिराम तीनों वनपुर से तिकमापुर में आ बसे थे, इसलिए इन तीनों के बन्धुत्व की वास्तविकता में अन्तर आ गया। वस्तुस्थिति का यथार्थ ज्ञान न होने से केवल किम्वदन्ती के आधार पर ही इनकी बन्धुत्व की भावना का प्रसार होता रहा, जो साहित्य के इतिहास को और भी अन्धकार की ओर बढ़ाती रही।

भूषण की जन्मभूमि तथा निवास-स्थान

भूषण का निवास-स्थान तो साधारणतया पाठकों को ज्ञात है, परन्तु उनकी जन्मभूमि का उन्हें पता नहीं है। अब तक हिन्दी-संसार तिकमापुर को ही उनकी जन्मभूमि और निवास-स्थान मानता चला आ रहा है, परंतु अन्वेषण से वे स्थान भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं।

भूषण ने अपने निवास-स्थान का इस प्रकार वर्णन किया है—

द्विज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर ;
बसत त्रिविक्रमपुर सदा, तरनितनूजा तीर।
(शि० भू०, २६)

महाकवि मतिराम अपने ग्रंथ छंदसार पिंगल (वृत्त-कौमुदी) में अपने निवास-स्थान का परिचय इस प्रकार देते हैं :—

तिरपाठी बनपुर बसै, वत्सगोत्र मुनि गेह ;
विबुध चक्रमणि पुत्र तहँ, गिरिधर गिरिधर देह ।❀

वृत्तकौमुदी ग्रंथ का निर्माण-काल यह है :—

संवत् सत्रह सौ बरस, अट्ठावन शुभ साल ;
कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी, करि विचार तिहि काल ।+

मतिराम के पन्ती कवि विहारीलाल ने भी अपने निवास-स्थान और पूर्वजों का वर्णन 'विक्रम सतसई' की 'रत्न-चन्द्रिका' नामक टीका में इस प्रकार किया है :—

बसत त्रिविक्रमपुर नगर, कालिन्दी के तीर ;
बिरच्यौं वीर हमीर जनु, मध्य देश को हीर ।
भूषन चिन्तामनि तहाँ, कवि भूषन मतिराम ;
नृप हमीर सम्मान ते, कीन्हों निज-निज धाम ।×

यह टीका संवत् १८७५ वि० में रची गई थी। इन तीनों उद्धरणों पर विचार करने से विदित होता है कि 'वृत्त-कौमुदी' की रचना के समय सं० १७५८ वि० तक मतिराम-भूषण आदि वनपुर में रहते थे। उसके पश्चात् भूषण, चिन्तामणि तथा मतिराम वनपुर से त्रिविक्रमपुर (तिकमापुर) में आ बसे थे, (जैसा कि विहारीलाल कवि लिखते हैं) और शिवराज-भूषण की रचना के समय सं० १७७३ वि० में तीनों कवि तिकमापुर

❀ वृत्त-कौमुदी, प्रथम सर्ग, छं० २१

+ छन्दसार पिंगल (वृत्त-कौमुदी) पृष्ठ १-२

× विक्रम सतसई की रस चन्द्रिका टीका, प्रथम शतक तथा माधुरी, ज्येष्ठ, सं० १९८१ वि० ।

में ही निवास करते थे (जैसा कि आगे चल कर सिद्ध किया जायगा)। अतः यह निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि भूषण कवि की जन्मभूमि वनपुर थी और निवास-स्थान त्रिविक्रमपुर, जिला कानपुर था। इस प्रकार अन्वेषण द्वारा भूषण विषयक अनेक बातें जो अन्धकार में विलीन हो रही थी प्रकाश में आ रही हैं तथा भ्रांतियाँ मिट कर देश व समाज का पथ प्रशस्त हो रहा है।

भूषण-कालीन परिस्थिति और उद्दीपन

महाकवि भूषण की महत्ता को ठीक-ठीक अनुभव करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि हम तत्कालीन परिस्थिति पर विचार करें। जिस समय भूषण (पतिराम) का वनपुर में जन्म हुआ था, उसके कुछ मास पूर्व ही छत्रपति शिवाजी का शरीरान्त हो चुका था। उस समय दिल्ली के तख्त पर औरङ्गजेब बादशाह था। वह अपनी साम्प्रदायिक कट्टरता के लिए बहुत प्रसिद्ध था। उसने ऐसी नीति का अवलम्बन किया था, जो मुगल बादशाहों की भावना के नितान्त प्रतिकूल थी। अकबर बादशाह* ने जिस दृढ़ नींव पर हिन्दू-मुसलमान ऐक्य रूपी भित्ति को स्थापित किया था, उसे औरङ्गजेब× ने साम्प्रदायिक पक्षपात रूपी डेनामाइट से भूमिसात् कर दिया था।

उसने हिन्दुओं पर ऐसे अत्याचार किये थे, कि सम्भवतः एक भी हिन्दू ऐसा न था जो उसे हृदय से चाहता हो। परन्तु उसके दबाव के कारण सम्पूर्ण हिन्दू राजा उसकी मातहती करना

अपना सौभाग्य मानते थे, यद्यपि उसने हिंदुओं पर जज़िया+ फिर जारी कर दिया था। उसने जोधपुर-नरेश जसवंतसिंह* को अफ़ग़ानिस्तान में अफ़ग़ानों को दवाने के लिए भेजा, परंतु उसे कोई सहायता न भेजकर तथा मुग़ल सरदारों से आश्रयहीन बनाकर कुत्ते की मौत मरने दिया और उसके लड़कों को विष देकर मरवा डाला। सौभाग्य से गर्भस्थित राजकुमार अजीतसिंह की माँ को स्वामिभक्त सरदार दुर्गादास किसी प्रकार बचा कर निकाल ले गया था। जोधपुर राज्य पर भी औरंगज़ेब ने अधिकार कर लिया था। उसे भी बड़े प्रयत्न से इसी वीर ने जीवन की बाजी लगाकर उसके जबड़े से निकाल लिया। दुर्गादास की इस महत्वपूर्ण मातृभूमि की सेवा का वहाँ आज भी बड़े आदर से गुणगान किया जा रहा है। जयपुर-नरेश मिर्ज़ा जयसिंह × को भी विष दिलवा कर, उस ने दक्षिण में ही उनकी अन्त्येष्टि क्रिया

+ हिन्दुओं पर जज़िया (हिन्दू होने का कर) लगाया गया। ग़ैर मुसलमानों से दूनी कस्टम लेने का हुक्म दिया गया। हिन्दू लोग सार्वजनिक दफ़्तरों से हटा दिये गये। मुसलमान बनाने के लिए रिश्वत दी जाती थी और यह फरमान निकाला गया था कि ग़ैर मुस्लिम नागरिक नहीं हो सकते; वे अछूत हैं। ग़ैर मुस्लिम होना सामाजिक और राजनीतिक अयोग्यता थी। [औरङ्गजेब, भाग २, पृ० २४१ और २६८-७८

* जसवन्तसिंह के ज्येष्ठ राजकुमार पृथ्वीसिंह को जहरीली पोशाक पहना कर औरङ्गजेब ने मरवा डाला। [टाड राजस्थान, जिल्द २, पृष्ठ ४०]

करवा दी थी गया उनके राजकुमारों को भी क्रूर काल के हवाले कर, वही दुर्दशा करवा डाली थी। इन अत्याचारों को पढ़कर मानव-हृदय एकबारगी ही सिहर उठता है, दिल दहल जाता है और अंतःकरण थर्रा जाता है।

इस प्रकार सहस्रों मंदिर+ ध्वस्त कर मसजिद के रूप में परिणत किये जा चुके थे। इतना ही नहीं, मथुरा में केशवराय का देहरा और काशी में विश्वनाथ का मंदिर तुड़वा कर क्रमशः जामा और ज्ञानवापी मस्जिदों के रूप में परिणत किये जा चुके थे। निरीह सतनामी* साधुओं का कत्लेआम करवा दिया गया था। बचे हुए लोगों को बलात् मुसलमान बनने पर बाध्य किया गया था। सिक्खों पर भी ऐसे अत्याचार हुए कि सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उनके गुरु तेगबहादुर+ को शूली दे दी गयी थी, गुरु गोविंदसिंह× के दो बच्चे लड़ाई में मारे गये और दो मासूम बच्चे दीवार में चुनवा दिये गये। गुरु बंदा÷ को पिंजड़े में बंद

लालच दिया गया था, पर अन्त में उन्हें कामा परगना दिया गया। इस प्रकार औरङ्गजेब ने अपनी प्रतिज्ञा भी तोड़ी थी। [टाड राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ३४२]

+ मन्दिर तोड़ने की आज्ञा ९ एप्रिल सन् १६६९ को दी गई थी। दे०—औरङ्गजेब, भाग ३, पृष्ठ २६७ व ६८२

*प्रसिद्ध इतिहासकार ख़फ़ी ख़ाँ लिखता है, सतनामी बड़े सदाचारी थे। दुराचार अथवा अनुचित रीति से धन लेना वे पाप समझते थे। [औरङ्गजेब, यदुनाथ सरकार कृत पृष्ठ ६६८]

+ औरङ्गजेब, भाग ३, पृष्ठ ३१२-३

× औरङ्गजेब, भाग ३, पृष्ठ ३१६-२०

÷ सिक्खों का इतिहास

उसका मांस नुचवाया गया। सम्पूर्ण हिंदू-जाति त्रस्त और भीत होकर अत्यंत कष्टमय जीवन व्यतीत कर रही थी। ये अत्याचार राजा लोग अपने चर्म-चक्षुओं से देख रहे थे परंतु किसी को कुछ कहने का साहस न होता था।

हिंदुओं में धर्म-कर्म, और पूजा-पाठ का अभाव-सा* हो चला था। शंख बजाना एक अक्षम्य अपराध माना जाता था। तिलक लगाकर नागरिकों को सड़क पर चलना कठिन हो गया था। बहू-बेटियों का सतीत्व खतरे में था। इसी के फलस्वरूप 'शीघ्रबोध' जैसे ग्रन्थों की रचना हुई थी, जिसमें सात-आठ वर्ष की लड़कियों का विवाह कर देना भी बड़ा भारी पुण्य-कर्म बताया गया था।

औरङ्गजेब ने केवल हिंदुओं पर ही अत्याचार नहीं किये, वरन् अपने परिवार वालों तथा शिया लोगों पर भी अमानुषीय कृत्यों की पराकाष्ठा कर दी थी। उसने सूफ़ी विचार रखने वाले अपने बड़े भाई दारा+ को पकड़ कर जान से मरवा डाला और उसके शव को शहर भर में घुमाया। उसके लड़के÷ की भी वही दशा की गई। उसने अपने छोटे भाई मुराद△ को पहले राज का लालच देकर अपनी ओर मिला लिया फिर उसे हाथी के पैर के नीचे कुचलवा दिया और तीसरे भाई शुजा√ को मार कर अराकान के जंगलों में भगा दिया, जहाँ उसे शेर द्वारा खा जाने की

---

* औरङ्गजेब, भाग ३, पृष्ठ २६७

\+ औरङ्गजेब, भाग २, पृष्ठ १२६-२२०

÷ औरङ्गजेब, भाग २, पृष्ठ २२६

△ औरङ्गजेब, भाग २, पृष्ठ ६३-१००

√ औरङ्गजेब, भाग २, पृष्ठ २८७-८८

फिरती है। उनके कार्यों का यहीं अंत नहीं हुआ। वह अपने बाप शाहजहाँ* बादशाह को गद्दी से उतार कर स्वयं गद्दी पर बैठ गया और उसे आगरे के किले में बंदी कर दिया। वह बेचारा वहीं सात वर्ष तक जेल की यातना भुगत कर और पानी के लिए तरस-तरस कर परलोक सिधारा। उसने शिया राज्यों (बीजापुर÷ और गोलकुंडा+) को नहस-नहस करने में कुछ भी कोताही नहीं की। आदिलशाही और कुतुबशाही खानदानों की इति-श्री कर दोनों राज्यों को अपने साम्राज्य में मिला लिया। उनके अन्य परिवार वाले इधर-उधर मारे-मारे फिरते थे। उसने मुसलमान फकीर शाहमोहम्मद की भी बड़ी दुर्दशा की और साधु सरमद को शूली दिलवा दी∫। इस प्रकार उसके अत्याचार एवं नृशंसता के कारण सर्वत्र प्रजा त्रस्त और दुखी थी।

दूसरी ओर हिंदू जाति में घोर नैराश्य और वैराग्य छाया हुआ था। उनके पिटने और पद-दलित होने पर भी संत कवियों की वाणी शांत रहने का आदेश देती थी। गोस्वामी तुलसीदास तथा महात्मा सूरदास की रचना भी इस विषय में हमारी अधिक सहायता न कर सकी। उनके द्वारा भक्ति के उद्रेक के कारण समाज से निराशा तो कुछ दूर हुई और उसका मन भी संसार से हटकर भगवद्भक्ति की ओर फिरा, परंतु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से संगठन और राष्ट्रीय-भावना का प्रसार न हो पाया। केवल राम और कृष्ण के सहारे सारे कार्यों की पूर्ति का भरोसा

---

* औरङ्गजेब, भाग ३, पृष्ठ ७,१२२ व १२६-१४१

÷ औरङ्गजेब, भाग ४, पृ० ३२२-३२९

+ औरङ्गजेब, ,, पृ० ३५६-३६६

∫ औरङ्गजेब, ,, ३ पृ० ६४-१००

किया जाता था। शत्रु को दबाने तथा अत्याचार से संरक्षण पाने के लिए किस प्रकार का साहस और अध्यवसाय चाहिए, इसका वहाँ नितांत अभाव था। श्रीराम ने रावण को मारने के लिये जो-जो प्रयत्न किये थे, उनमें मानवीय प्रयत्नों की चर्चा न करके भगवान् की अननुभूत और अलौकिक शक्तियों का ही आश्रय लिया गया है। इसके लिए गोस्वामी तुलसीदास जी समय-समय पर शक्ति-सम्पन्न राम को सर्व शक्तिमान् ब्रह्म के अवतार-रूप में पाठकों के सामने रखते व स्मरण भी दिलाते जाते हैं। इनके द्वारा राम-भक्ति के साथ अकर्मण्यता का प्रसार भी बहुत हुआ। क्योंकि वैराग्य और त्याग पर भी उन्होंने बहुत जोर दिया था। सूरदास की रचना में भी लोक-कल्याण और सामाजिक उत्थान की भावना राष्ट्रीय रूप में कहीं दिखलायी नहीं देती। इन संत कवियों के द्वारा वैराग्य, त्याग, जगत्-मिथ्या-भावना, सांसारिक-जीवन-दुःखमय आदि भावों को ही उत्तेजन मिल रहा था। केवल मोक्ष पाने की धारणा ही प्रबल थी। देश को मुक्त करने की ओर किसी का ध्यान न था। इन विचारों के कारण भारतीय समाज से उत्साह, जीवन, और उत्कर्ष का नितान्त तिरोभाव हो गया था। दुःखी, असमर्थ और अज्ञानी मनुष्य जिस प्रकार मृत्यु-काल में अपनी अंतिम घड़ियाँ पूर्ण करने का प्रयास करता है, वही दशा इस प्राचीन आर्य-जाति की हो रही थी। महाकवि-भूषण के जन्म-काल में ये ही भावनाएँ कार्य कर रही थीं।

इस दशा से स्पष्ट विदित होता है कि उस समय देश पर औरङ्गजेब का भय तथा आतङ्क छाया हुआ था। पालने में झूलते हुए भूषण के मानसपटल पर ये ही धारणाएँ अङ्कित हो रही थीं। ज्यों-ज्यों वे बड़े होते जाते थे, उनके चित्त में साम्राज्य-विरोधी भाव जागरित हो रहे थे। उनके प्रतिशोधार्थ उनमें उत्साह,

जोश, और उत्तेजना बढ़ती जा रही थी। औरङ्गज़ेबी अत्याचारों को देखकर उनके हृदय पर एक गहरी ठेस लगी और वे उनके प्रतिकार का उपाय सोचने लगे।

छत्रपति शिवाजी√ ने दक्षिण में औरङ्गजेब की अनीतिपूर्ण राज्य-प्रणाली एवम् अत्याचार परिवर्द्धित हिन्दू-शिवा-विरोधी प्रवाह का नितान्त अवरोध कर दिया था। उसका आतंक औरङ्ग-जेबी सूबेदारों ꣿ तथा सरदारों पर ऐसा छा गया था कि वे दक्षिण में जाने तक का साहस न करते थे। परन्तु उसकी मृत्यु हो जाने से औरङ्गजेब ने दक्षिण में भी वे ही ढङ्ग बरतने प्रारम्भ कर दिये थे जो उत्तरी भारत में चल रहे थे। शिवा जी का ज्येष्ठ पुत्र सम्भाजी× अपने पुत्र शाहू+ सहित बादशाही सेना के हाथ में पड़ गया था। बादशाह ने अत्यन्त निर्दयता के साथ उसका वध करा दिया÷। उस समय शाहू केवल आठ वर्ष का बालक था। औरङ्गजेब की मृत्यु तक वह क़ैद में ही रहा। शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् औरङ्गजेबी शासन अत्याचार एवं नृशंसता की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। साम्राज्य-विरोधी शक्तियाँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी थीं। सङ्गठन न होने से उनमें उस नृशंसता का प्रतिशोध और अत्याचारों का अवरोध करने का साहस ही न

√ मराठा पीपिल (Maratha People) भाग १ और २

ꣿ शिवाजी, यदुनाथ सरकार कृत

× औरङ्गजेब भाग ४, २६६-४०१

+ औरङ्गजेब, भाग ४, पृ० ४०६

÷ सम्भा जी को, एक-एक अङ्ग काट कर, बड़ी बेरहमी से मरवाया गया और उसका माँस कुत्तों को खिलाया गया। [औरङ्गजेब, भाग ४, पृ० ४०१]

था। इन्हीं भावनाओं के अंतर्गत रह कर भूषण ने अपने मन में यह निश्चय कर लिया था कि औरङ्गजेबी अत्याचारों से देश और समाज की रक्षा करने के लिए भारतीयों को सुसंगठित किया जाय और उत्तेजन देकर उद्‌बुद्ध कर दिया जाय। कुछ इतिहासकारों ने औरङ्गजेब के अत्याचारों को मजहबी रंग देकर हिंदू-मुसलमान द्वन्द्व एवं विरोध के रूप में प्रदर्शित किया है। यह धारणा भ्रमपूर्ण है। औरङ्गजेब ने हिंदू-मुसलमान सब पर जुल्म किए थे। उसमें मजहबी कट्टरपन तो था ही। परंतु इसकी भीतरी तह में साम्राज्य-लिप्सा पूर्णतया भरी हुई थी। उसकी वृद्धि के लिए उसे सबके साथ कल-बल-छल करने पड़े थे। जिनको छिपाने के लिए वह उनको धार्मिक रूप दे दिया करता था। इसी कारण उसके पुत्र भी सच्चे हृदय से उसका साथ नहीं दे रहे थे। वर्तमान मुसलमान लेखक बहुधा औरङ्गजेब की प्रशंसा करते हुए दिखाई देते हैं। वे यह नहीं सोचते कि तत्कालीन खफीखाँ आदि ऐतिहासिकों ने भी औरङ्गजेब की घोर निंदा और शिवा जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्हें चाहिए कि तास्सुब के स्तर से कुछ ऊँचे उठकर देखें कि औरङ्गजेब के कार्य किस कोटि में आते हैं। अकबर और औरङ्गजेब दोनों की तुलना करने से यह भावना और भी स्पष्ट हो जाती है।

२—शिवराज भूषण का निर्माण-काल

शिवराज भूषण अलंकार का ग्रन्थ है। इसमें शिवाजी की प्रशंसा फुटकर छन्दों द्वारा उदाहरणों के रूप में की गई है। यह ग्रन्थ शिवाजी के दरबार में रहकर कदापि नहीं लिखा गया। इसमें वह प्रणाली ही नहीं है, जिसे दरबारी कवियों ने प्रयुक्त किया है। विद्यापति-निर्मित 'कीर्तिलता', केशवदास कृत 'वीरसिंह देव चरित', लाल का रचा 'छत्रप्रकाश', सूदन का बनाया 'सुजान-चरित्र' तथा पद्माकर विरचित 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' आदि बीसों ग्रन्थ इस प्रणाली के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। शिवराजभूषण में न तो ऐतिहासिक क्रम है, न घटना-चक्रों का ही कोई सिलसिला है और न जीवनचरित्र का क्रम-विकास ही दृष्टिगोचर होता है। जनता में केवल उत्साह-वर्द्धन करने और संगठन तथा उत्तेजना फैलाने के लिए ही फुटकर छन्दों के रूप में इनकी रचना हुई है। फिर उन्हीं छन्दों में से कुछ अलंकारों के उदाहरणों में संगृहीत कर दिये गये हैं।

शिवराज भूषण का निर्माण-काल कुछ विद्वान संवत् १७३० वि० मानते हैं। इस सम्बन्ध में अब तक निम्नलिखित छन्द पाये गये हैं।

संवत् सतरह तीस पर, सुचि वदि तेरसि भान।
भूषण शिवभूषण कियो, पढ़ियो सुनो सुजान ॥१॥*

---

* काशीराज के पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति छंद नं० ३८० ।

भिड़ाने का भी प्रयत्न किया गया। परंतु सब व्यर्थ हुआ। इस प्रकार बड़े बड़े धुरंधर महारथियों का परिश्रम बेकार हो गया। हाँ, उस विवेचना, आलोचना और प्रत्यालोचना से कुछ तथ्य की बातें भी प्रकट हो गईं। इस ऊहापोह में भूषण-सम्बन्धी अनेक भ्रमपूर्ण भावनाओं का परिष्कार हो गया। भूषण की जन्मतिथि पर हम पहले ही विचार कर चुके हैं। अब देखना यह है कि इस दोहे के द्वारा निर्माण-काल किस प्रकार घटित होता है ?

'सम=समान। निर्माण-काल और जन्मकाल दोनों में ही श्लेष द्वारा एक सी भावना। सत्रह=सत्रह सै। पर=उल्टा, विरोधी। सैंतीस का उल्टा=७३ तिहत्तर। इस प्रकार उक्त दोहे से शिवराज भूषण का निर्माण काल सं० १७७३ वि० ठहरता है। अर्थात् असाढ़ बदी तेरसि रविवार सं० १७७३ वि० को महाकवि भूषण ने शिवराज भूषण की रचना की।

इस दोहे के परिवर्तन में किसी ने महीना उड़ाया, किसी ने वार हटाया तो किसी ने "पर" से रहित कर दिया, तो किसी ने श्लेष की भावना ही दूर कर दी। कभी सैंतीस के 'सैं' को निकाल कर केवल तीस ही रख छोड़ा गया। और कुछ नहीं तो अन्यों द्वारा अर्थ की गम्भीरता ही हटा दी गई। परंतु यथार्थता से अनभिज्ञ महानुभावों ने भूषण को शिवाजी के दरबार में रखने का दुराग्रह न छोड़ा। अब इस दोहे पर जो विवेचन किये गये हैं, उनकी भी बानगी लीजिये। सबसे प्रथम पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी के कथन पर विचार कीजिये। आप 'विश्वमित्र' नामक मासिक पत्र में लिखते हैं :—

"शुचि पाठ वाली प्रतियाँ ठीक हैं।" आगे चलकर वे लिखते हैं, 'संवत् १७३० वि० के आषाढ़ महीने के कृष्ण पक्ष में

त्रयोदशी रविवार को न थी—इस विषय में दो मत हैं:—एक यह कि शुचि का अर्थ ज्येष्ठ भी है और ज्येष्ठ संवत् १७३८ वि० में रविवार को त्रयोदशी पड़ी थी; और दूसरा मत मिश्र-बन्धुओं का है। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी जी ने जो पञ्चाङ्ग बनाकर उनके पास भेजा था, उसके अनुसार श्रावण और कार्तिक दोनों में त्रयोदशी रविवार को पड़ी थी। परन्तु यदि श्रावण में कृष्ण पक्ष को १३ रविवार को पड़ी हो तो उसे ही 'शुचि' मास मान सकते हैं। कारण, महाराष्ट्र में उत्तर भारत की तरह पूर्णिमान्त मास नहीं होते, वहाँ अमान्त मास होते हैं और शुक्ल पक्ष के पश्चात् कृष्ण पक्ष आता है। इसलिए हमारे यहाँ जो अगले मास का कृष्ण पक्ष है, वही महाराष्ट्र में पिछले मास का कृष्ण पक्ष कहलाता है। इस प्रकार यदि हमारी श्रावण कृष्णा त्रयोदशी को उनकी आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी होती है, तो कोई भूल नहीं है।"

श्री वाजपेयी जी ने पूर्वापर विचार कर पूर्णतया निर्णय कर डाला कि आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी को रविवार था। यह विचारा ही नहीं कि मिश्रबन्धु महोदय इस पाठ को शुद्ध नहीं मानते। उन्होंने "बुध सुदि तेरसि मान," पाठ लिया है। इसी के अनुसार महा महोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने श्रावण और कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को बुधवार (रविवार नहीं) होना बतलाया था।* रहा श्रावण कृष्णा त्रयोदशी का प्रश्न सो उस दिन बृहस्पतिवार था, रविवार नहीं। आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी को भी रविवार न था। उस दिन मङ्गल पड़ता है। अतः वाजपेयी जी का कथन युक्ति-युक्त नहीं है।

---

*नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित और मिश्रबन्धु द्वारा सम्पादित 'भूषण ग्रन्थावली' की भूमिका, पृष्ठ ५६।

त्रयोदशी रविवार को न थी—इस विषय में दो मत हैं:—एक यह कि शुचि का अर्थ ज्येष्ठ भी है और ज्येष्ठ संवत् १८३० वि० में रविवार को त्रयोदशी पड़ी थी; और दूसरा मत मिश्र-बन्धुओं का है। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी जी ने जो पञ्चाङ्ग बनाकर उनके पास भेजा था, उसके अनुसार श्रावण और कार्तिक दोनों में त्रयोदशी रविवार को पड़ी थी। परन्तु यदि श्रावण में कृष्ण पक्ष को १३ रविवार को पड़ी हो तो उसे ही 'शुचि' मास मान सकते हैं। कारण, महाराष्ट्र में उत्तर भारत की तरह पूर्णिमान्त मास नहीं होते, वहाँ अमान्त मास होते हैं और शुक्ल पक्ष के पश्चात् कृष्ण पक्ष आता है। इसलिए हमारे यहाँ जो अगले मास का कृष्ण पक्ष है, वही महाराष्ट्र में पिछले मास का कृष्ण पक्ष कह-लाता है। इस प्रकार यदि हमारी श्रावण कृष्णा त्रयोदशी को उनकी आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी होती है, तो कोई भूल नहीं है।"

श्री वाजपेयी जी ने पूर्वापर विचार कर पूर्णतया निर्णय कर डाला कि आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी को रविवार था। यह विचारा ही नहीं कि मिश्रबन्धु महोदय इस पाठ को शुद्ध नहीं मानते। उन्होंने "बुध सुदि तेरसि मान," पाठ लिया है। इसी के अनुसार महा महोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने श्रावण और कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को बुधवार (रविवार नहीं) होना बत-लाया था।* रहा श्रावण कृष्णा त्रयोदशी का प्रश्न सो उस दिन बृहस्पतिवार था, रविवार नहीं। आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी को भी रविवार न था। उस दिन मङ्गल पड़ता है। अतः वाजपेयी जी का कथन युक्ति-युक्त नहीं है।

---

*नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित और मिश्रबन्धु द्वारा सम्पादित 'भूषण ग्रन्थावली' की भूमिका, पृष्ठ ५६।

अब शुचि पर भी विचार कर लीजिये। कुछ सज्जनों ने ज्येष्ठ कृष्णा १३ को रविवार होने में शुचि का अर्थ ज्येष्ठ मान लिया है। इसके लिए हमें दूर जाने की आवश्यकता नहीं। महीनों के पर्याय देते हुए सब से प्रसिद्ध और प्रधान कोशकार अमरसिंह अपने अमरकोश में लिखते हैं:—

वैशाखे माधवो राधो ज्येष्ठे शुक्रः शुचिस्त्वयम्।
आषाढ़े श्रावणे तुस्यान्नभः श्रावणि कश्च सः ॥

इस श्लोक में आषाढ़ के अर्थ में स्पष्ट 'शुचि' शब्द दिया गया है। यदि कोई सज्जन खींचतान कर इसे ज्येष्ठ के अर्थ में लेना भी चाहें तो अमरकोश के "त्वन्ताथादि न पूर्वभाक्", नियमानुसार शुचि का अर्थ ज्येष्ठ लेने से स्पष्ट निषेध किया गया है फिर ज्ञात नहीं 'शुचि' शब्द का अर्थ ज्येष्ठ क्यों कर लिया गया है!

जब वर्ष में एक ही तिथि २४ बार और एक ही वार ५२ दफ़ा आता है तो वार और तिथि अवश्य कहीं न कहीं जाकर एकत्रित हो सकते हैं। अतः दोहे में वार या मास का अभाव किसी विशेष महत्व का द्योतक नहीं है, और न प्रमाण ही बन सकता है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि निर्माण-काल के उक्त दोहे बनावटी हैं, जिनके अनुसार भूषण को शिवाजी का दरबारी कवि बनाया जा रहा था। 'शिवराज भूषण' की रचना वास्तव में संवत १७७३ वि० में हुई है। जैसा कि इस दोहे के चौथे स्वरूप से व्यक्त है।

अब त्रिनेत्रजी के विवेचन पर भी विचार कीजिए। आप साप्ताहिक आज के ६-६-४० के अंक में लिखते हैं कि "यदि अमरकोश में शुचि शब्द आषाढ़ का द्योतक है जैसा कि अभी

प्रमाणित किया जा चुका है, तो मेदिनी कोश में शुचि शब्द ज्येष्ठ के अर्थ में भी माना गया है। और प्रमाण में निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है।

शुचिर्ग्रीष्माग्नि शृंगारेष्वाषाढ़े शुद्ध मन्त्रिणि।
ज्येष्ठे च पुंसि धवले शुद्धे अनुपहते त्रिपु।२९।११

फिर मिश्र जी फरमाते हैं।

अतः शुचि का अर्थ यहाँ ज्येष्ठ करना उस दशा में उचित प्रतीत होता है जब कि सं० १७३० वि० की जेठ वदी १३ को रविवार पड़ता है। इस प्रकार त्रिनेत्रजी कोश के अनुसार दोहे का अर्थ न कर अपने मतलब के अनुसार कोश को चलाने का प्रयत्न करते हैं। जब काव्य में निश्चयात्मकता नहीं होती, तभी निहितार्थत्व दोष की उद्भावना होती है।

(देखिए काव्यप्रकाश)

यहाँ पर भी शुचि शब्द आषाढ़ के प्रसिद्ध अर्थ में न लिया जाकर अप्रसिद्ध भाव में ही लिया गया है। यही नहीं वरन् अशुद्ध अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। क्योंकि शुचि शब्द ज्येष्ठ मास के लिए किसी कोषकार ने नहीं लिया है। जिस मेदिनी कोश का सहारा आपने लिया है, वहाँ भी ज्येष्ठ शब्द ज्येष्ठ महीने का द्योतक नहीं है, क्योंकि जेठ महीने का नाम ज्येष्ठा नक्षत्र के आधार पर पड़ा है। उसमें 'एव्' प्रत्यय लगाकर ज्येष्ठ महीने का नाम बना है। पूर्णिमा के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र होने से ही ग्रीष्म ऋतु में उक्त मास का नाम ज्येष्ठ हुआ है। परन्तु मेदिनी कोश में ज्येष्ठ बड़े के अर्थ में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। अतः निश्चित है कि मेदिनी कोश का ज्येष्ठ शब्द ज्येष्ठ मास नहीं बन सकता और न मास के लिए प्रयुक्त ही माना जा सकता है। संस्कृत में

ज्येष्ठ मास का रूप ज्येष्ठ्य होता है। परन्तु कोश में ज्येष्ठ्य न होकर ज्येष्ठ हुआ है। जो कि मास के अर्थ में अशुद्ध है।

जब कोश का सहारा आपको निर्बल दिखलाई पड़ने लगा तो आपने 'कुमारसंभव' का सहारा लिया। और:—

"शुची चतुर्णांज्वलतांस हविर्भुजाम्"

'कुमार संभव'

इसमें प्रयुक्त शुचि शब्द ज्येष्ठ मास के अर्थ में बतलाया परन्तु यह शब्द यहाँ स्पष्ट ग्रीष्म ऋतु के लिए आया है। मास के लिए नहीं। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता ज्येष्ठ मास के लिए शुचि शब्द न तो किसी कोशाकार ने ही और न साहित्य में ही इसका प्रयोग हुआ है। अतः उक्त नि काल का दोहा भी उसी रूप में शुद्ध और उचित अर्थ का है। 'शिवाबावनी' और 'शिवराज भूषण' के ऐतिहासिक वि से भी यही प्रमाणित होता है।

भूषण के वनपुर से तिकमापुर में आ बसने का स सं० १७५८ वि० और सं० १७७३ वि० के बीच में किस था, जिसका उल्लेख मतिराम के पन्ती बिहारीलाल 'विक्रम सतसई' की 'रस-चन्द्रिका' नामक टीका में किया

'शिवाबावनी' में भी जो ऐतिहासिक विवरण मि संवत् १७७३ वि० तक के हैं और 'शिवराज भूषण' में मृत्यु तक (सं० १७३७) तक ही नहीं वरन् उनकी म पीछे तक के भी वचन मिलते हैं।

संवत १७३० वि० में तो भूषण तिकमापुर में रा अतः यह निर्माण-काल कदापि शुद्ध नहीं कहा जा ही 'शिवराज भूषण' में कुछ ऐसे संकेत भी पाये ज

भूपण के वर्णन शाहू के समय से अधिक सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। यह बात आगे चलकर भली भाँति प्रमाणित की गई है। यथार्थ में यह दोहा 'शिवराज भूपण' के निर्माण-काल सं० १७७३ वि० तथा महाकवि मतिराम (भूपण) के जन्मकाल दोनों का ही दिग्दर्शन कराता है। जैसा कि यहाँ प्रतिपादन और जन्मकाल पर विवेचन करते हुए दिखलाया गया है।

अन्त में विद्वतसमाज को सावधान करते हुए महाकवि भूषण कहते हैं कि इस निर्माण काल के दोहे को समझ कर एवम् गंभीरता पूर्वक मनन करके ही पढ़ना चाहिए। सर्व साधारण की योग्यता से यह बाहर की वस्तु है। विशेष ज्ञानवान ही इसके मुख्य भावार्थ को समझने में समर्थ हो सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि भूषण ने जानबूझकर इस दोहे की रचना गूढार्थ भाव से युक्त की है और भली प्रकार विचार करने पर ही अच्छे विद्वान इसको समझने में समर्थ हो सकते हैं। इसमें शिव भूषण का अर्थ भी शिवराज भूपण और देवाधिदेव महादेव दोनों ही लिया गया है। इस प्रकार इस दोहे में श्लेष की पूर्ण व्याप्ति है।

पाठकों का ध्यान इस ओर भी जाने की बड़ी आवश्यकता है कि ऐसा निर्माणकाल लाने के लिए भूषण को कुछ प्रतीक्षा अवश्य करनी पड़ी होगी। फिर भी दोनों संवतों का मिलान कैसी सुन्दरता और योग्यता के साथ किया गया है कि इस महाकवि की प्रशंसा स्वयं ही मुख से निकल पड़ती है। ऐसे कितने ही रहस्य भूषण की रचना में भरे पड़े हैं। मेरे विचार से भूषण की रचना का दशांश भी अभी जनता के सम्मुख नहीं आया है। फिर भी जो प्राप्त है, उससे भूपण की महत्ता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। यथार्थ में भूषण की गूढ़ शैली का अभी भली प्रकार अध्ययन हुआ ही नहीं। इसमें न मालूम कितनी गुत्थियाँ उलझी पड़ी हैं, जिनके

द्वारा राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक एवं आध्यात्मिक कितने ही रहस्यों के उद्घाटन की संभावना है। साथ ही देश को जैसा पथ-प्रदर्शन भूषण से मिल सकता है, वैसा न तो सूर अथवा तुलसी से प्राप्त हो सकता है और न किसी अन्य हिन्दी कवि से ही संभावना है। आशा है विश्व विद्यालयों के योग्य विद्वान् साहित्यिक मंडल तथा विद्वत्समाज इस ओर शीघ्र तथा युक्तियुक्त ध्यान देकर समाज और देश को सर्वोत्तम मार्ग-प्रदर्शन करने में सफलीभूत होंगे।

शिवाबावनी

'शिवराज भूषण' के निर्माण-काल के सम्बन्ध में ऊपर लिखा जा चुका है। अब यहाँ पर 'शिवाबावनी' के निर्माण-काल के सम्बन्ध में विचार करना उचित प्रतीत होता है। 'शिवाबावनी' वास्तव में एक ऐतिहासिक ग्रन्थ होने के साथ-साथ वीर रसपूर्ण कविताओं का उत्कृष्ट संग्रह भी है। साथ ही इसके भीतर एक विशेष घटना की तथ्य-पूर्ण भावना भी निहित है, जिसने देश की शासन-प्रणाली में एक महान् परिवर्तन कर सारे भारत में राष्ट्रियता की लहर बहा दी थी।

बहुत काल से यह बात प्रसिद्ध है कि भूषण ने संयोग ही से, शिकार खेलते समय भेंट हो जाने पर, अपने फुटकर छन्दों में से 'शिवाबावनी' के ५२ छन्द शिवाजी (वास्तव में शाहू) को सुनाये थे। जब शाहू जी ने और सुनने की अभिलाषा प्रकट की, तब भूषण ने कहा, "अब महाराजा (शाहू) जी के लिए भी कुछ रख छोड़ें या आपको ही सब सुना दें।" यह सुनकर शाहू जी वहाँ से चले गये और भूषण को शाहू जी के दरबार में जाने के लिए कहते गये।

दूसरे दिन जब भूषण दरबार में पहुँचे और उन्होंने अपने

पूर्व परिचित व्यक्ति को सिंहासन पर बैठा देखा तो वे दङ्ग रह गये। शाहू जी ने उन्हें पास बुलाया और कहा, मैंने कल ही निश्चय कर लिया था कि आप मुझे जितने छन्द सुनावेंगे, उसी संख्या के अनुसार आप को पुरस्कार दूँगा।" अतः उन्हें ५२ गाँव (जागीर में), ५२ हाथी, ५२ लक्ष रुपये तथा ५२ शिरोपाव आदि पारितोषिक-स्वरूप दिये गये।

कुछ लोगों का कथन है कि भूषण ने ५२ छन्द नहीं सुनाये थे, केवल एक ही छन्द "इन्द्र जिमि जम्भ पर वाड़व सु अम्भ पर" इत्यादि ५२ वार सुनाया था। यहाँ पर यही कहना पर्याप्त है कि शाहू ने और छन्द सुनने की अभिलाषा प्रकट की थी और भूषण ने शेष शाहू के लिये बचा रखने का भाव व्यक्त किया था। अतः इस प्रश्नोत्तर से निश्चित है कि एक ही छन्द वार-वार नहीं सुनाया गया, वरन् भिन्न-भिन्न छन्द सुनाये गये थे।

अन्य कुछ सज्जनों का कहना है कि भूषण ने एक ही छन्द १८ वार सुनाया था, ५२ वार नहीं। इस विषय में लोकनाथ कवि के "भूषण निवाज्यो जैसे शिवा (साहू) महाराज जू ने वारन दै बावन धरा में जस छाव है"※ में भूषण का ५२ हाथी पाने अर्थात् ५२ कवित्त सुनाने का स्पष्ट वर्णन आया है। वे भूषण के समकालीन कवि थे, इससे उनके कथन की सचाई में भी सन्देह नहीं किया जा सकता।

लोकनाथ के छन्द में एक संशोधन अवश्य प्रतीत होता और वह यह कि शाहू के स्थान पर शिवा कर दिया गया है इस छन्द का वास्तव में क्या रूप है, यह तो प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त होने पर ही प्रकट हो सकेगा। यह अवश्य प्रतीत होता

※ देवीप्रसाद मुंशी कृत 'राजरत्नमाला' पृ० ४९

कि शिवा शब्द पढ़ने से छन्द की लय कान को खटकती है, इस लिए शिवा के स्थान पर शाहू शब्द होना अधिक सम्भव तथा युक्ति-युक्त है। शिवा "के स्थान पर" शाहू "शब्द लेने से छन्द के पढ़ने में सुगमता और प्रवाह में मनोहरता आती है। अतः अनुमान यह है कि किसी ने इस कवित्त के निर्माण के पीछे भ्रमवश "शाहू" के स्थान पर "शिवा" कर दिया है। क्योंकि भूषण की मृत्यु के पश्चात शिवाजी की प्रशंसा के छन्द पढ़कर लोग भूषण को शिवाजी का दरबारी कवि समझने लगे थे। और अब तक साहित्यिकों में यही धारणा न्यूनाधिक बनी हुई है। वास्तव में भूषण शिवाजी के दरबार में कदापि न थे। अतः उक्त कथन में साहू शब्द ही मानना पड़ेगा। यदि शिवा शब्द लिया जायगा तो हमें उसे 'भगवान् शिवाजी' के ही रूप में लेना पड़ेगा। गोस्वामी तुलसीदास जी को जिस प्रकार भगवान् राम ने "निवाज्यौ;" उसी प्रकार शिवाजी ने भूषण पर कृपा की थी, अर्थात् उन्हीं के नाम का आश्रय लेकर उत्कर्ष पाया था। भूषण का शाहू के दरबार में खूब सम्मान हुआ और वे बड़े ठाट-बाट से वहीं रहने लगे।

'शिवाबावनी' के ५२ छन्दों में से ४ छन्द शाहू जी, बाजी-राव पेशवा, सुरकी और अवधूतसिंह की प्रशंसा में कहे गये हैं। ये सब भूषण के समकालीन थे। शेष छन्द शिवाजी की प्रशंसा के हैं, परन्तु उनकी अनेक घटनाएँ शाहू से सम्बन्धित हैं। इसी कारण अनेक विद्वान् घबड़ा कर कहने लगते हैं कि 'शिवाबावनी' की घटना ठीक नहीं है और ये छन्द कालान्तर में संग्रह कर दिये गये हैं। अब तो लेखकों ने 'शिवाबावनी' के अनेक छन्द निकालकर नये छन्द मिलाना भी प्रारम्भ कर दिया है। इस प्रकार 'शिवाबावनी' का ऐतिहासिक महत्व प्रायः नष्ट किया जा रहा है।

भूषण को शिवाजी के आश्रय में माननेवाले विद्वान उनका

शिवाजी के दरबार में जाना संवत् १७२८ वि० में मानते हैं। कोई कोई सज्जन तो यह समय सं० १७२३ तक पीछे की ओर हटा ले जाते है। परन्तु वे 'शिवाबावनी' में शिवाजी के सम्बन्ध की संवत् १७३६ तक की घटनाएँ और शाहू आदि के सम्बन्ध की संवत् १७७३ वि० तक की घटनाओं का वर्णन देखकर चकित हो जाते हैं और किंकर्तव्य विमूढ़ होकर कहने लगते हैं कि भूषण ने एक ही छन्द शिवाजी को अनेकबार सुनाया था। इस प्रकार भूषण की कविता के साथ भी अन्याय किया जा रहा है। इसका मुख्य कारण वस्तु-स्थिति की अनभिज्ञता ही है। नवीन अनुसन्धान द्वारा भूषण की रचनाओं पर जो प्रकाश पड़ा है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि भूषण ने ये ५२ छंद शिवाजी के सामने नहीं, वरन् शाहू जी के सम्मुख कहे थे। भूषण का जन्म ही शिवाजी की मृत्यु के एक वर्ष पीछे हुआ था। ऐसी दशा में शिवाजी के दरबार में उनका जाना कैसा ?

अब 'शिवा बावनी' के ऐतिहासिक विवेचन पर दृष्टिपात कीजिये।

शिवाजी ने सितारा शहर को राजधानी कभी नहीं बनाया। शाहूजी सं० १७६५ वि० में गद्दी पर बैठे थे। तभी उन्होंने सितारा में अपनी राजधानी स्थापित की थी। भूषण ने 'शिवाबावनी' के अनेक छन्दों में इसका राजधानी के रूप में बड़ा ही विशद वर्णन किया है। उदाहरणार्थ—

"दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की,"

शि० बा० ३६।

"तारे लागे फिरन सितारे गढ़-धर के"

शि० बा० ७।

वाजत नगारे जे सितारे गढ़-धारी के,

शि० बा० २८।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि यद्यपि भूषण ने इन छन्दों में शिवाजी का ही वर्णन किया है, तथापि ऐतिहासिक आधार शाहू के साथ ही घटित होता है। शिवाजी की राजधानी रायगढ़ थी। उसका वर्णन 'शिवराज भूषण' के अनेक शब्दों में किया गया है। फुटकर छन्दों में रायगढ़ का कहीं वर्णन नहीं मिलता; उनमें सितारा का ही विशेष उल्लेख पाया जाता है। इसी प्रकार 'शिव-राज भूषण' में सितारा का वर्णन नहीं है। फुटकर छन्दों और 'शिवराज भूषण' में जो तारतम्य का अन्तर पाया जाता है, उससे स्पष्ट है कि 'शिवराज भूषण' में शिवाजी की प्रशंसा और उनकी राजधानी रायगढ़ का ही वर्णन मिलता है। परन्तु 'शिवा बावनी' व अन्य फुटकर छन्दों में राजधानी के रूप में सितारा का ही वर्णन किया गया है, रायगढ़ का नहीं। इन दोनों भावनाओं पर विचार करने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि शिवाजी की प्रशंसा आदर्श रूप में और शाहूजी व बाजीराव पेशवा आदि की प्रशंसा आश्रयदाता के रूप में की गई है।

सितारा शहर शिवाजी ने २५ अक्टूबर १६७४ ई० को लिया था। उससे पहले वे सितारे में पदार्पण भी न कर सके थे। ※यह समय भूषण के सितारा के कल्पित समय से बहुत पीछे का है। वास्तव में भूषण सं० १७७३ वि० में शाहू के दरबार में सितारा पहुंचे थे।

अब 'शिवाबावनी' के छन्द नं० १५ और ४६ पर दृष्टिपात कीजिये। उनमें वे लिखते हैं—

※ 'ग्रेट शिवाजी' (Great Shivaji) पृ० ३७४।

"मालवा उजैन भनि भूषन भेलास ऐन,
सहर सिरोंज लौं परावने परत हैं।"

और

"भूषन सिरोंज लौं परावने परत फेरि,
दिल्ली पर परत परिन्दन छौं-छार हैं।"

इनमें वर्णित मरहठा-सेनाएँ शाहू के समय से पूर्व [सं० १७६५ वि०] मालवा, उज्जैन, भेलसा और दिल्ली में कभी नहीं पहुँचीं। इसी समय सिरोंज में पहली लड़ाई बालाजी विश्वनाथ पेशवा के अपने पुत्र बाजीराव के नायकत्व में हुई थी * इसी प्रकार—

"गढ़ीभूत दुवन वरंको भूत दिवदंनी,
पड़ीभूत सबद गुरंबी के पयान ते।"

शि० बा० ५० ।

"जा दिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह,
ता दिन दिगंत लौं दुवन दाटियतु हैं।"

शि० बा० ५१ ।

"रूम रुँदि डारै खुरासान खूँदि मारै खाक,
खादर लौं झारै ऐसी साहू की बहार है।"

शि० बा० ४५ ।

"बाजीराव-बाज की चपेट चंगु चहूँ ओर,
तीतुर तुरक दिल्ली भीतर बचै नहीं।",

शि० बा० ४८ ।

---

* डफकृत 'मराठा का इतिहास' भाग २ ।

यह कवित्त 'शिवा बावनी' का है, परन्तु सरदार कवि-कृत, 'शृंगार संग्रह' में गंग के नाम पर दिया हुआ है। सरदार कवि भूषण से बहुत पीछे हुए हैं और गंग कवि भूषण से लगभग १०० वर्ष पूर्व हुए थे। यदि यह छंद किसी ऐसे संग्रह में मिलता, जो भूषण से पहले का होता, तो संदेह की गुंजाइश न थी; किंतु परवर्ती कवियों ने बादशाही कोप से बचने और अपनी रचना की प्रगल्भता दिखाने के लिए भूषण की रचनाओं को उपेक्षणीय कर दिया। जिससे वे लुप्तप्राय हो गईं। आज अत्यधिक अनुसन्धान करके भी हम उनमें से एक छोटा अंश ही प्राप्त कर सके हैं। पूरा मिलने पर उसका क्या स्वरूप होगा, इसका कुछ अनुमान 'भूषणविमर्श' के पढ़ने से किया जा सकता है। यह देश की कितनी अमूल्य निधि थी, इसका कुछ-कुछ आभास हमें उसी से हो जाता है। यह तो निर्विवाद है कि ये कवित्त भूषण के ही हैं। नहीं तो दक्षिण में इनकी पहुँच ही न होती और न वहाँ के चारणों एवं भाटों को ही इनका ज्ञान होता। इससे यह भी प्रकट हो जाता है कि भूषण की रचनाएँ भिन्न-भिन्न कवियों के नामों पर रख दी गई हैं। अथवा उन्होंने स्वयं अपना ली हैं। इसी प्रकार भूषण का एक छंद "ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहन-वारी ···नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं।" इन्दु के नाम पर पाया जाता है, जिसे किसी वली राजा की प्रशंसा में कहा गया है। तथा—"दाढ़ी के रखैयन की·····चकत्ता के घराने की।" नेवाज कवि के नाम पर छत्रसाल के लिए कहा गया बतलाया जाता है।

परन्तु वास्तव में ये छन्द भूषण के रचे हुए हैं, जो शिवा जी की प्रशंसा में कहे गये थे। इसी कारण भूषण-कृत छन्द 'शिवा बावनी' में पाये गये हैं, नहीं तो उसमें गिने ही न जा सकते थे। इन

समय निश्चित कर लें तो. भूषण का समय निर्धारित करने में अधिक सुगमता होगी। वह वर्णन इस प्रकार है—

"कुल सुलंक चित्रकूट पति, साहस सील समुद्र।
कवि भूषन पदवी दई, हृदयराम सुत रुद्र॥"

(शि० भू० २८।

'रीवाँ राज्य दर्पण' के पृष्ठ ४६८ पर पवैयों की सूची दी हुई है। उसकी तालिका नं० ४ में लिखा है—

"नं० ४ परगना गहोरा (बाँदा) के अधिकारी सुरकी राजा हृदयराम ग्राम संख्या १०४ ३२ बीस लाख का इलाका जो अंग्रेजी राज्य में शामिल हो गया है...... ।'

उपर्युक्त दोनों वर्णनों को पढ़कर कुछ सज्जनों ने यह प्रश्न उठाया है कि क्या सुरकी और सोलंकी एक ही हैं, अथवा भिन्न-भिन्न वंशों के।

बैस-वंशावली में क्षत्रियों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए लिखा है—

कनउज व्यास कीन्ह जब यज्ञा,
प्रकटे चारि नृपति अति अज्ञा।
चारि भुजा चौहान पँवारा।
सुरकी वीर बली परिहारा।॥

यही विषय 'रीवाँ राज्य दर्पण' के पृष्ठ ३६ पर इस प्रकार वर्णित है—

अग्निवंशी क्षत्रियों की चार शाखाओं में चौहान, पवाँर, परिहार और सोलंकी हैं।"

अतः निश्चित है कि सुरकी और सोलंकी एक ही हैं। रीवाँ राज्य के राजकवि पं० अम्बिकाप्रसाद जी भट्ट 'अम्बिकेश' ने एक पत्र का उत्तर देते हुए लिखा था—

"ये सुरकी और सोलंकी एक ही हैं। गुजरात में निवास करने के कारण ये अपने को सुरकी कहने लगे हैं। रीवाँ राज्य के ये करीवी भाई-बन्धु माने जाते हैं।"

इसलिए हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि 'रीवाँ-राज्य दर्पण' में वर्णित हृदयराम सुरकी ही 'मनिराम' कवि को भूषण की उपाधि देनेवाले सज्जन थे। ये ही चित्रकूटाधिपति कहलाते थे। इस सम्बन्ध में रीवाँ राज्य के दरबारी कवि, जागीरदार और नरहरि महापात्र के वंशज 'लालजी' कवि ने बतलाया था, कि सोलंकी चित्रकूट-पति कहे जाते हैं। क्योंकि उनके पूर्वज पहले पहल चित्रकूट में ही आये थे।

'रीवाँ राज्य दर्पण' के पृष्ठ ४५ पर लिखा है कि वहाँ की नीची और ऊँची भूमि तरहटी (तरौंहा) और उपरहटी के नाम से प्रसिद्ध है। गहोरा प्रांत घोड़पाडा के नाम से भी विख्यात था। इसी में तरौंहा का किला था। यह प्रान्त चित्रकूट के नाम से भी पुकारा जाता था।

अब्दुलरहीम खानखाना (रहीमकवि) ने भी एक दोहे में रीवाँ-नरेश को सम्बोधन कर ऐसा ही संकेत किया है। वह दोहा यह है—

"चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेश।
जापै बिपता परति है, सो आवत यहि देश॥"

जब रहीम आपत्तिग्रस्त दशा में चित्रकूट में निवास कर रहे थे, उस समय कुछ कवियों ने उन्हें आ घेरा था, उनके पास

देने को कुछ न था। उस समय रहीम ने उक्त दोहा रीवाँ-नरेश के पास भेजा था। उसे पढ़कर बाँधव-नरेश ने एक लाख रुपया उनके पास भेज दिया था, जिसे उन्होंने कवियों में बाँट दिया था। इससे भी यही ध्वनि निकलती है कि सोलंकी चित्रकूटपति कहे जाते थे।

फिर सोलंकियों की दूसरी शाखा (सुरकियों) को वह प्रदेश रीवाँ राज्य की ओर से जागीर में मिला था, जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

हृदयराम संबंधी अन्वेषण के लिए मैंने रीवाँ राज्य की यात्रा की थी। *वहाँ मुझे रेकार्ड आफिस (Record office) से पवैयों की एक सूची जो संवत १८१८ विक्रमी की लिखी हुई थी, प्राप्त हुई थी। उसमें उक्त हृदयराम के नाम गहोरा प्रान्त की जागीर (मुनाफा आदि समेत) दी हुई है। यह सूची महाराजा अवधूतसिंह के पुत्र महाराजा अजीतसिंह ने तैयार कराई थी। इन महाराजा साहब का समय सं० १८१२ वि० से १८६६ वि० तक था। मुझे यहाँ के कागजातों से और अधिक मसाला न मिल सका। क्योंकि राज्य के पुराने कागजात सं० १७६८ वि० में बुन्देलों ने नष्ट कर डाले थे। सं० १७६८ वि० में रीवाँ राज्य की जब पुनः स्थापना हुई, तभी उक्त जागीर हृदयराम को दी गई थी और उसी समय से फिर कागजात एकत्रित किये जाने लगे थे।

मैंने इसके बाद पटेहरा की यात्रा की ‡यहाँ पर हृदयराम

---

*राज्य के तत्कालीन मंत्री पं० जानकीप्रसाद चतुर्वेदी ने मेरे लिए राज्य की ओर से प्रत्येक प्रकार की सुगमता कर दी थी।

‡इस यात्रा का प्रबन्ध भी राज्य की ओर से था। यह स्थान पहाड़ी प्रदेश में लगभग १०० मील का मार्ग था। मार्ग में टॉस और पनासिन नदियों के जलप्रपात तथा आल्हाघाटी आदि मनोहर पहाड़ी दृश्य मिलते हैं।

के वंशज रहते हैं। सुरकी वंश के वर्तमान नरेश राजा रामेश्वर-प्रताप सिंह और उनके छोटे भाई महाराजकुमार अवधेशप्रताप सिंह से मिला था। ये दोनों भाई वसन्तराय सुरकी से आठवीं पीढ़ी में हैं और राजा रुद्रदेव से दसवीं पीढ़ी में। इनके पास सुरकी वंश की वंशावली, महज़रनामा तथा अनेक राज्य संबंधी पत्र हैं। जिनको देख कर भूषण के आश्रयदाता हृदयराम और वसंतराय के समय पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

इस स्थान पर सुरकियों की वंशावली पर विचार करना असंगत न होगा। इस वंशावली से उद्धृत अंश, महाराजकुमार लाल अवधेशप्रताप सिंह के हस्ताक्षर सहित मेरे पास प्रस्तुत हैं। इन्हें मैं ज्यों का त्यों उद्धृत किये देता हूँ—

"सिंहराव महाराज के, प्रगटे युगल कुमार।
व्याघ्रदेव महाराज में, श्री सुखदेव उदार ॥८॥
श्री सुखदेव नरेश को, बरणौं उत्तम वंश।
श्री सुखदेव नरेश के, रूपदेव जस हंस ॥९॥"

* * * *

भीमसेनी देव के कुमार विजैछत्र देव,
धेनु द्विज वृन्दनि पै कीन्हौं भुजा छाँह है।
विजैछत्र देव के हैं टोडर सुमल्ल देव,
विप्रन को दीन्हौं दान सहित उछाह है।
टोडर सुमल्ल के हैं महाराज रुद्रराव,
पाल्यौ जो प्रजान कौं सुजान के निगाह है।

रुद्रधर देव के हैं सागर सुगव देव,
जिनकी सुबाहु की पनाह गहे साह है ॥२६॥
"सागर सुगव देव भूप के बसन्तराय,
छाय दीन्हों यश को वितान जाने जंग में ।
लै कै समसेर जौन नेर सौं निसंक वीर,
कीन्हौं जेर शत्रुन कौं वीरता उमङ्ग में ।
चढ़ि कै तुरङ्ग शैल सोहत मतङ्ग यूथ,
संग चतुरङ्ग लै उछाह गहे अङ्ग में ।
अंकी अवनी को करि रंकिय गनीमन कौं,
भूपति सुलंकी भो निसंको, रण रंग में ॥२७॥

* * * *

श्री बसन्तराय के कुमार भे पहारसिंह,
भक्त हनुमन्त के दयालु भे अपार हैं।
श्री पहारसिंह के भये हैं रामसिंह ताके,
फतहबहादुर भे जंग जेतवार हैं ।
फतहबहादुर के भये हरिदत्त सिंह,
जिनको सुजस स्वच्छ मानों गंग धार हैं।
हरिदत्तसिंह के भये हैं छत्रसाल सिंह,
दानी भे बिसाल कल्पतरु से उदार हैं॥२८॥

इस वंशावली में वर्णित रुद्रराव ही भूषण कवि द्वारा कथित "हृदयराम सुत रुद्र" हैं, जिनका वर्णन 'शिवराज भूषण' में आया है। परन्तु इस वंशावली में हृदयराम का नामोल्लेख नहीं है। इसके सम्बन्ध में पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि रुद्रराव के पश्चात् राज-सूत्र सागरराव के स्थान पर हृदयराम के हाथ में था, वे पटेहरा से भिन्न भागलपुर की शाखा में से थे। ये हृदयराम सागरराव के छोटे भाई थे। सागरराव के पुत्र वसन्तराय ने हृदयराम के पश्चात् पुनः गहोरा प्रान्त अधिकृत कर लिया था। जिसकी प्रशंसा में भूषण ने भी एक छन्द कहा था। इसका एक पदांश यह है—

'वसन्तराय सुरकी की कहूँ न वाग मुरकी।'

गहोरा राज के सुरकियों के वंशज सीतापुर (चित्रकूट) में भी रहते हैं। ठाकुर गङ्गासिंह सुरकी ने बतलाया था कि पटेहरा, सीतापुर (चित्रकूट) भागलपुर, रेगाँव और पड़री में सुरकी राजाओं के वंशज रहते हैं।

पटेहरा के राजा साहब के पास एक सनद भी है। जिसमें सुरकियों को १४ परगने और पनासिन का किला, जो तरौहाँ से तीन कोस पर था, रीवाँ राज की ओर से दिए जाने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त उनके पास एक महज़रनामा की नकल है, जिसे वसन्तराय सुरकी के पौत्र रामसिंह ने सं० १८२० वि० में अँगरेजों की सेवा में सहायतार्थ भेजा था। इसमें शुजाउद्दौला द्वारा गहोरा राज्य के छीने जाने का उल्लेख है। गहोरा प्रांत सं० १७८१ वि० में लखनऊ के सूबेदार ने छीन लिया था। वसंतराय सुरकी की मृत्यु सं० १७८० वि० के लगभग बतलाई जाती है। उस समय बुंदेलखंड पर मोहम्मद खां बंगस का आक्रमण हुआ

उक्त आधार लेकर यह कल्पना कर ली गई है । व्याघ्रदेव ने दक्षिण से चित्रकूट आने पर उसके समीपस्थ मड़का दुर्ग पर अधिकार कर लिया था परन्तु उस समय के 'चित्रकूट के इतिहास' में किसी सुरकी का उल्लेख नहीं मिलता। गहोरा प्रांत पर व्याघ्रदेव का अधिकार होने से विदित होता है कि सुरकी और बघेलों में आधा-आधा राज्य बँटने की कल्पना नितांत निर्मूल है। सुरकियों को बघेलों की शाखा मानना तो और भी अशुद्ध है। सुरकी और बघेले दोनों सोलंकियों की शाखाएँ हैं। बघेलों के गहोरा में आने तक दोनों शाखाएँ सोलंकी नाम से पुकारी जाती थीं। तदुपरान्त सोलंकियों की जो शाखा गुजरात में जा बसी, वह 'सुरकी' कहलाई। और भाटवोड़ा में जो शाखा आई थी, उसे व्याघ्रदेव के नाम से बघेले कहने लगे।"

'माधुरी'-सम्पादक ने सुरकी और बघेलों की वंशावली की तुलना करते हुए बघेलों की ३४ पीढ़ियाँ और सुरकियों की १०-११ पीढ़ियाँ मानी हैं। उन्होंने इन दोनों के फलस्वरूप हृदयराम का समय संवत् १४५१ वि० निर्धारित किया है; परंतु यह समय अनुकूल न पड़ने से स्वयं ही उसे त्याज्य समझ लिया है। वे लिखते हैं—"ऐसी दशा में वंशावली की सूची हमारी बहुत कम सहायता करती है।"

परंतु सुरकी-वंशावली में सुखदेव से बसन्तराय तक ११ पीढ़ियाँ मानना नितांत असंगत है।

'मनोरमा' वाले लेख में मैंने नवें दोहे के पश्चात् २६वाँ छंद उद्धृत किया था। इन छंदों पर नम्बर भी पड़े थे। बीच के छंद अनावश्यक समझ कर छोड़ दिये गये थे। यथार्थ में सुखदेव से बसन्तराय तक २६ पीढ़ी का अन्तर है।

व्याघ्रदेव सं० १२६० वि० में किसी समय चित्रकूट आये थे। अतः सुखदेव का भी वही समय मानना पड़ेगा। सुखदेव से वर्तमान राजा रामेश्वरप्रताप सिंह तक ३५ पीढ़ियाँ होती हैं। सं० १२६० वि० से १९८२ वि० तक ६९२ वर्ष होते हैं। अतः एक पीढ़ी का औसत १९३ वर्ष हुआ। इस हिसाब से २५ पीढ़ियों के बाद वसन्तराय का समय सं० १७७७ वि० पड़ता है, जो इनके वंशजों के कथनानुसार तथा लिखित आधार पर भी ठीक बैठता है। इससे एक पीढ़ी पूर्व हृदयराम का समय सं० १७५५ वि० के पास मान लेना भी युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

अब सम्पादक महोदय के सबसे प्रबल प्रमाण पर भी विचार कर लेना चाहिए।

बाँदा गजेटियर के पृष्ठ के २६३ आधार पर पौष सं० १९-८५ वि० की 'माधुरी' के पृष्ठ ११०० पर लिखा है—"यह ख्याति है कि तिचकपुर नामक गाँव जहाँ पर स्थित था, वहीं संन १६२५ ई० के लगभग गहोरा के सुरकी राजपूत वसन्तराय ने तरौंहाँ का दुर्ग बनवाया।" इसका मूल उद्धरण इस प्रकार है।

Another tradition has it that the village formerly existing was called Tichakpura and that about 1634 A. D., one Basant Rai, Surki Rajput of Gahora came and built the fort.

इसमें केवल किंवदन्ती का आधार दिया गया है। फिर वसन्तराय ने बाहर से आकर किला बनवाया। यह बात उसके महत्व को और भी कम कर देती है।

इस किंवदन्ती के पहले उसी गजेटियर में एक और किंवदंती दी हुई है। जिसे 'माधुरी'-सम्पादक ने छोड़ दिया है। वह यह है—

One tradition says that in the remote past, a city called Salampur existed here but no ruins are extant.

इस कथन के बाद वसन्तरायवाली कहावत आने से उसकी महत्ता नाम मात्र को रह जाती है। परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के सामने तो ये कथन नगण्य ही हो जाते हैं।

गजेटियर बनाते समय ऐतिहासिक तथ्यों के साथ गलत किम्वदंतियाँ भी ले ली गई थीं। उनमें दिये गये संवतों के अनुमान तो और भी अशुद्ध हैं। नये अन्वेषण ने उन अशुद्धियों को निर्मूल कर दिया है। जिस बात का गजेटियर स्वयं विश्वास नहीं करता, उसी आधार पर सफलता पाने का भरोसा करना नितान्त असङ्गत है।

अब 'मिश्र बन्धु' महोदय के कथन पर विचार कर लेना चाहिए। आप 'हिन्दी-नवरत्न' के पृष्ठ ४०१ पर लिखते हैं—

"सोलंकियों का राज्य सं० १७२८ वि० के लगभग महाराजा छत्रसाल ने छीन लिया था। अतएव भूषण को यह उपाधि मिलने की घटना सं० १७२८ वि० से पूर्व की है।"

हृदयराम सोलंकी ने भूषण को यह उपाधि दी थी। 'मिश्र-बंधु' महोदय उपाधि देने का समय सं० १७२८ वि० से पूर्व मानते हैं और प्रमाण देते हैं कि सं० १७२८ वि० में तो उपाधि-दाता का राज्य ही नष्ट हो गया था। जब वे राजा ही न थे, तो उपाधि देना कैसा !!

'मिश्रबंधु' महोदय ने इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया कि सं० १७२८ वि० में तो छत्रसाल ने राज्य-संस्थापन प्रारम्भ किया था। उस समय उनको नाम मात्र का भी राज्य नहीं मिला था।

३ वर्ष वे कुल ३५० जवान एकत्रित कर सके थे। उनके सम्बन्ध : कवि 'लाल' अपने छत्र प्रकाश में लिखते हैं—

"सम्वत सतरह सैहि पर, आठ आगरे ओस।
लगत बरस बाईसवीं, उमहि परयें अवनीस।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि सं० १७०८ वि० में छत्रसाल ने राज्य संस्थापन का कार्य प्रारंभ किया था। इससे पूर्व उन्होंने कहीं पर एक चप्पा भर भूमि भी न ले पाई थी।

फिर नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका,' भाग १३, अंक १-२ में स्वर्गीय श्री कृष्ण बलदेव जी वर्मा लिखते हैं "अवधूतसिंह को हराने और बघेलखंड पर कब्जा करने के पश्चात् सं० १७६० वि० के अनन्तर महाराज छत्रसाल चित्रकूट में ठहरे थे। अतः स्पष्ट है कि संवत् १७६० वि० से पूर्व तरौंहा तथा बघेलखंड पर बघेलों का राज्य था और तरौंहा हृदयराम सुरकी की जागीर में था।

इस प्रकार साहित्य और इतिहास दोनों ही 'मिश्रबंधु' महोदयों के वर्णन का खंडन करते हैं और मेरे कथन का समर्थन।

हृदयराम का समय जब सं० १७५५ वि० के लगभग निश्चित है, तब भूषण का भी यही समय होना चाहिए। ऐसी दशा में वर्तमान विचारधारा बिलकुल उलट जाती है। वास्तव में भूषण शिवाजी के समकालीन न होकर शाहू के समकालीन थे। उन्हीं के आश्रय में उन्होंने 'शिवराज-भूषण' की रचना की थी।



३—ऐतिहासिक विवेचन

'शिवराज भूषण' में निर्माणकाल के पीछे की घटनाएँ

कर्नाटक की चढ़ाई—'शिवराज भूषण' की रचनाकाल १७३० वि० माना जाता रहा है। परन्तु उसमें अनेकों घटनाएँ इस समय के पश्चात् की वर्तमान हैं। इस पर कुछ सज्जन यह उत्तर देते हैं कि वे घटनाएँ फिर से रचकर मिला दी गई हैं। इस पर यह प्रश्न उठता है कि इन छन्दों के मिलाने से पूर्व की प्रतियों का रूप क्या कहीं मिलता है? यदि नहीं मिलता, तो मानना पड़ेगा कि भूषण ने पीछे से कोई छन्द नहीं मिलाये और सब छन्द पहले के ही रचे हुए हैं। फिर एकही घटना के अनेक छन्दों का भिन्न-भिन्न स्थानों पर होना इस बात का प्रमाण है कि ये कालान्तर में नहीं मिलाये गये।

कर्नाटक की चढ़ाई का वर्णन 'शिवराज भूषण' के तीनों छन्दों नं. ११६,२०७, और २६२ में है।

(१) छन्द नं० ११६ में वर्णित हबस और फिरंगियों से शिवाजी के युद्ध सं० १७३० वि० के पूर्व भी हो चुके थे; परंतु कर्नाटक में कोई युद्ध इससे पूर्व नहीं हुआ। कर्नाटक पर शिवाजी की चढ़ाई सं० १७३६ वि० में हुई थी।

"करनाट हबस फिरङ्गहू बिलायत,
बलख रूम अरि-तिय छतियाँ दलति हैं।"

शि० भू० ११६

यह दशा आक्रमण-काल में अथवा आक्रमण की पुनरावृत्ति के समय ही हो सकती है। जिसकी स्मृति स्त्रियों को अधिक भयभीत बना देती है।

'अरि' शब्द भी यही भाव प्रकट करता है कि आक्रमण की स्थिति एवं भावना उनके हृदय में अवश्य थी।

इस छन्द में गोलकुंडा का उल्लेख न होने से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है, क्योंकि वहाँ वालों ने कर्नाटक की चढ़ाई के पूर्व ही शिवाजी से मेल कर लिया था। नहीं तो हजारों मील दूर पर "अरि-तिय छतियाँ दलन लगं" और बीच के देशों में शत्रुओं पर कुछ भय न हो, यह संभव नहीं।

(२) छन्द नं० २०७ में तो स्पष्ट रूप से कर्नाटक की चढ़ाई का उल्लेख है। वह छन्द यह है—

"लै परनालो शिवा सरजा करनाटक लौं सब देश बिगूचै।
बैरिन के भगे बालक बृन्द कहै कवि 'भूषन' दूरि पहूँचै।
नाँघत-नाँघत घोर घने वन हारि परे यों कटे मनो कूँचै।
राजकुमार कहाँ सुकुमार कहाँ बिकरार पहार वे ऊँचै॥"

कर्नाटक-युद्ध पर विचार करने के पूर्व इस बात का निर्णय करना आवश्यक प्रतीत होता है कि कर्नाटक प्रान्त की उत्तरी सीमा क्या है? तथा दक्षिण में कहाँ तक फैला हुआ है? 'सोर्स बुक आफ़ मराठा' के पृष्ठ १२५ पर कर्नाटक का वर्णन करते हुए लेखक ने बतलाया है—"कर्नाटक प्रान्त तुंगभद्रा और कावेरी के बीच में बसा हुआ है।" तुंगभद्रा पूर्व की ओर बहती हुई कृष्णा नदी से जा मिली है। इसके पश्चात् कर्नाटक की उत्तरी

३—ऐतिहासिक विवेचन

'शिवराज भूषण' में निर्माणकाल के पीछे की घटनाएँ

कर्नाटक की चढ़ाई—'शिवराज भूषण' की रचनाकाल १७३० वि० माना जाता रहा है। परन्तु उसमें अनेकों घटनाएँ इस समय के पश्चात् की वर्तमान हैं। इस पर कुछ सज्जन यह उत्तर देते हैं कि वे घटनाएँ फिर से रचकर मिला दी गई हैं। इस पर यह प्रश्न उठता है कि इन छन्दों के मिलाने से पूर्व की प्रतियों का रूप क्या कहीं मिलता है ? यदि नहीं मिलता, तो मानना पड़ेगा कि भूषण ने पीछे से कोई छन्द नहीं मिलाये और सब छन्द पहले के ही रचे हुए हैं। फिर एकही घटना के अनेक छन्दों का भिन्न-भिन्न स्थानों पर होना इस बात का प्रमाण है कि ये कालान्तर में नहीं मिलाये गये।

कर्नाटक की चढ़ाई का वर्णन 'शिवराज भूषण' के तीनों छन्दों नं० ११६,२०७, और २६३ में है।

(१) छन्द नं० ११६ में वर्णित हबस और फिरंगियों से शिवाजी के युद्ध सं० १७३० वि० के पूर्व भी हो चुके थे; परंतु कर्नाटक से कोई युद्ध इससे पूर्व नहीं हुआ। कर्नाटक पर शिवाजी की चढ़ाई सं० १७३६ वि० में हुई थी।

"करनाट हबस फिरङ्गहू बिलायत,
बलख रूम अरि-तिय छतियाँ दलति हैं।"

शि० भू० ११६

सीमा कृष्णा नदी बन जाती है। अतः निर्णयात्मक रीति से यह कहा जा सकता है कि कर्नाटक का उत्तरी भाग तुंगभद्रा और कृष्णा के पूर्वी भाग तक फैला हुआ है। दक्षिण की ओर कावेरी नदी उसकी सीमा बनाती है।

कैलूस्कर, तकाखव, राजवाड़े आदि इतिहासकार भी कर्नाटक पर आक्रमण करने में इसी की पुष्टि करते है। किसो इतिहास-लेखक ने इसके पूर्व कर्नाटक के आक्रमण का उल्लेख नहीं किया। इसी 'लौं' पर त्रिनेत्र जी ने भी विचार किया है। उनकी विचार-सरणी सम्पादक 'माधुरी' से भिन्न हुई है। आपने 'लौं' का मर्यादा-भाव लेकर अपनी विवेचना का यह स्वरूप दिया है। आप लिखते हैं—

"हिन्दी ककहरा जाननेवाला भी 'कर्नाटक लौं' का अर्थ कर्नाटक-विजय या कर्नाटक की चढ़ाई न लेगा। इसका अर्थ तो 'कर्नाटक तक' होगा। अर्थात् कर्नाटक विगूँचे जानेवाले देशों से पृथक् है। पर ऐतिहासिक खोज करने वाले दीक्षित जी भला व्याकरण की परवाह क्यों करने लगे ?"—साप्ताहिक 'आज' ६-६-४० पृष्ठ २१।

यह है हिन्दू विश्वविद्यालय के हिंदी के एक प्रोफेसर की विचार सरणी !!! वास्तव में "करनाटक लौं सब देश विगूँचे" का भावार्थ 'कर्नाटक की दक्षिणी सीमा तक सारा देश रौंद डाला' ही लेना पड़ेगा। क्यों कि इतिहास और भूगोल दोनों ही इसके अनुकूल पड़ते हैं तथा व्याकरण से भी इसका समर्थन होता है।

'लौं' ब्रजभाषा में साधारण बोलचाल का शब्द है। जिसका अर्थ 'तक' होता है। यथा—

१—हमने सब तैयारी करली थी कि कपड़े तक पहन लिये।

२—पानी तक पी लिया।

क्या त्रिनेत्रजी के कथनानुसार कोई इसका अर्थ यह ले सकता है कि 'कपड़े नहीं पहने,' 'पानी नहीं पिया' शेष सब काम कर लिया। मेरे विचार से भारत भर में एक भी व्यक्ति ऐसा न मिलेगा, जो त्रिनेत्र जी का बनाया हुआ अर्थ स्वीकार करने को प्रस्तुत हो। इसका तो स्पष्ट अर्थ 'कपड़े भी पहन लिये' तथा 'पानी भी पी लिया' मानना पड़ेगा। इसी प्रकार "करनाटक लौं सब देश विगूँचे" का अर्थ 'कर्नाटक समेत बीच में पड़नेवाले सब देशों को कुचल डाला ही' लेना युक्ति-युक्त एवं न्याय-संगत है। ऐसी दशा में ककहरा का ज्ञान किस पर घटित होता है, यह विचारणीय है! फिर इस रूप में त्रिनेत्रजी के व्याकरण विषयक पाण्डित्य का अनुमान भी पाठकों को हो जाता है। हमें हर्ष है कि ६-१२-४० के साप्ताहिक 'आज' में मेरे लेख का जो उत्तर दिया है उसमें "आङ्, मर्यादाभि विध्यो" सूत्र का अर्थ लिखते हुए यह स्वीकार किया है कि 'लौं' का अर्थ 'तत्सहितो ऽभिविधि' के अनुसार उसके सहित भी लिया जाता है। केवल 'ते न विना मर्यादा' का ही रूप सर्वत्र नहीं होता। आइये पाठकगण इस 'ही' और 'भी' के झंझट पर भी कुछ विचार कर डालें कि आपका कथन कहाँ तक विवेचना की कसौटी पर ठहरता है। आपने इसके प्रमाण में दो-तीन उदाहरण भी दिये हैं। जो ब्रज-भाषाके काव्य से लिये गये हैं—

"सावन लौं आवन सुन्यौ है घनश्याम जू कौ,
आँगन लौं आय पायँ पटकि-पटकि जात।" ॥ १ ॥

—घनश्याम

"है सखि संग मनोभव सौ भट, कान लौं बान सरासन ताने।" ॥२॥

—पदमाकर

साप्ताहिक 'आज', ६-१२-४० पृ० २४

आपका कथन है कि ये दोनों उदाहरण 'लौं' के प्रयोग में मर्यादा का भाव देते हैं। यह कथन युक्तियुक्त नहीं वरन् अनभिज्ञता का द्योतक है। 'आँगन लौं आय पायँ पटकि-पटकि जात' में 'आँगन लौं' का अर्थ 'आँगन के बीच तक पहुँच जाना' ही होता है। उससे अलग रहकर किसी भिन्न स्थान को अभिव्यक्ति इससे कदापि नहीं होती। अतः स्पष्ट है कि यहाँ पर 'लौं' 'अभिविधि' भाव का ही द्योतक है। मर्यादा अर्थ को प्रकट नहीं करता। इसी प्रकार दूसरा उदाहरण भी अभिविधि का द्योतक है।

यहाँ पर आपका कथन उस ग्रामीण की जिद से टक्कर लेता है जो कहता है—'पंचों की आज्ञा सिर माथे, परंतु परनाला तो यहीं बहेगा।' अस्तु

कानलौं बान-सरासन तानेमें कान तक का अर्थ 'कान छोड़कर उसकी आँख की ओर की बाहरी सीमा' नहीं है। वरन् कान की पिछली सीमा से तात्पर्य है। ज्ञात होता है मिश्र जी ने कभी किसी धनुर्धारी को तीर चलाते नहीं देखा !! फिर भी मारीच के पीछे दौड़ते श्री रामचन्द्र के तीर-संचालन का चित्र-दर्शन तो अवश्य ही किया होगा। सम्यक गहरी दृष्टि न होने से जो मन में आया वही लिख दिया। जो सज्जन अपने दिये हुए उदाहरणों का भावार्थ भी नहीं समझते, वे उसी अशुद्धि का दूसरों पर आक्षेप करने का साहस कैसे कर बैठते हैं !! यह आश्चर्य है !! मेरे विचार से ऐसे व्यर्थ आक्षेप करने का कोई विद्वान तो साहस नहीं करेगा।

यह स्पष्ट है कि "करनाटक लौं सब देश बिगूँचे" का अर्थ कर्नाटक समेत सब देशों को रौंद डालना ही लिया जायगा। अन्य नहीं। इसी अर्थ में वास्तविक संगति बैठ सकती है।

'सोर्सबुक आफ मराठा' के पृष्ठ ५८-५९-६० में कर्नाटक पर आक्रमण होने का उल्लेख है। जिसे त्रिनेत्रजी ने बड़े गर्व से

प्रमाण में दिया है; परन्तु उपर्युक्त प्रसिद्ध इतिहासकारों में से किसी ने भी इस प्रमाण को स्वीकार नहीं किया। न अपने इतिहासों में इसका उल्लेख ही किया है। उक्त आक्रमण सन १६५८ ई० में हुआ बतलाया गया है। शिवाजी ने परनाले का किला पहली बार अफजल खाँ को मारने के पश्चात अक्टूबर सन १६५९ ई० में विजय किया था। अतः महाकवि भूषण द्वारा वर्णित 'परनाला जीतकर कर्नाटक की विजय' 'सोर्स बुक मराठा' में कथित आक्रमण से अवश्य भिन्न माननी पड़ेगी। इसलिए हम इस निश्चित परिणाम पर पहुँचने के लिए बाध्य हैं कि भूषण का कर्नाटक का उल्लेख अवश्य ही सं० १६७६ वि० का आक्रमण था। अन्य नहीं। इस आक्रमण के सिवाय अन्य कोई आक्रमण कर्नाटक पर हुआ ही नहीं। अतः भूषण का कथन स्पष्ट होने में कोई सन्देह नहीं रहता। उक्त भूल का मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि इस इतिहासकार ने 'चिदंनूर' को कर्नाटक प्रान्त में मान लिया है। इंगलिश रेकर्ड ऑन शिवाजी के पृष्ठ ३०४ पर भी यही भूल दिखलाई गई है। वास्तव में कोंकण के दक्षिणी भाग में ही उक्त 'चिदनूर'-राज्य अवस्थित था। इसे कर्नाटक प्रान्त में कहना सरासर भूल है। यदि यह भूल न होती तो सरकार, केलूसकर, राजवाड़े आदि इतिहासकार अपने इतिहास में इसका उल्लेख अवश्य करते। इसलिए 'रेकार्ड ऑन शिवाजी' के अनेक पत्रों में इस कर्नाटक की चढ़ाई का उल्लेख है। उदाहरण के लिए भाग २ पृष्ठ १३५ पत्र २४८।

२६ अगस्त सन् १६७७ ई० का एक पत्र मिला है। जिसमें लिखा है—"चूंकि गोलकुण्डा की कुतुबशाही ने शिवाजी को कर्नाटक जाने का मार्ग दे दिया इसलिए बेदरखाँ आदि जनरलों ने उससे युद्ध छेड़ दिया।"

द्वितीय भाग पृष्ठ १७८ पत्र ३२५—हुहानी से सूरत को पत्र भेजा गया है। ता० ३१ अगस्त १६७८ ई० के इस पत्र में लिखा है "मास दो मास में ही कर्नाटक शिवाजी के हाथ में आ जायगा। सिरजेखाँ व सिद्दी मसऊद का लड़का उन्हें रोक रहा है, परन्तु इससे क्या होगा!"

द्वितीय भाग पृ० १२७ पत्र २३५ ता० २७ जून १६७७ ई० —"शिवाजी गोलकुण्डा के किले में है। जाड़े के वाद कर्नाटक पर आक्रमण होगा।" साथ ही इसमें यह भी लिखा है-"दक्खिन के वहुत से उमरा शिवाजी से मिल गए हैं, इसीलिए इधर से सामान नहीं भेजा जा सकता।" (चाइल्ड का पत्र कारवार से सूरत को)।

'माधुरी' सम्पादक ने भी 'लौं' शब्द की व्याख्या करते हुए, पार्थक्य और अभिविधि समझाने के लिए अष्टाध्यायी के अनेक सूत्र लिख डाले हैं। फिर भी उन्हें दुविधा ने न छोड़ा। इसका अत्यन्त सरल मार्ग यह है कि हम इसको ऐतिहासिक कसौटी पर कसकर विवेचनापूर्वक विचार करें। छन्द में लिखा है कि शिवा जी ने परनाला का किला जीतकर कर्नाटक तक का सारा देश रौंद डाला। 'ग्रांट डफ कृत 'मराठों के इतिहास' भाग १ पृष्ठ २६६ पर लिखा है कि शिवाजी ने १६७६ ई० के अन्त में परनाला का किला तीसरी वार जीतकर कर्नाटक पर चढ़ाई की थी। श्रीयुत यदुनाथ सरकार भी पहले परनाले के आस-पास के स्थानों की विजय का वर्णन करके सन् १६७६ ई० के प्रारम्भ में कर्नाटक की चढ़ाई का उल्लेख करते हैं। केलूस्कर, तकाखव, राजवाड़े आदि इतिहासकार भी कर्नाटक पर आक्रमण करने में इसी की पुष्टि करते हैं। किसी इतिहास लेखक ने इसके पूर्व कर्नाटक के आक्रमण का उल्लेख नहीं किया।

अतः सब इतिहासकार इस सम्बन्ध में एकमत हैं। हम 'लों' का अर्थ मर्यादा के साथ पार्थक्य का ही मान लेते हैं। यद्यपि यहाँ उनका प्रयोग उस अर्थ में नहीं हुआ है, जैसा आगे चलकर प्रमाणित किया गया है। वास्तविक बात तो यह है कि मरहठे सन १६७७ ई० (१७३४ वि०) के पूर्व कर्नाटक की उत्तरी बाहरी सीमा पर भी न पहुँच सके थे। सीमा तो दूर की वस्तु है। वे तो वहाँ से सैकड़ों मील दूर 'तुंगभद्रा' नदी तक और उसके कृष्णा नदी में मिलने के पश्चात् 'कृष्णा' नदी के किनारे तक भी न पहुँच पाये थे जो कर्नाटक की उत्तरी सीमा पर है।

यह भी निर्विवाद सिद्ध है कि सन् १६७७ ई० से पूर्व शिवाजी की सेना कभी गोलकुंडा में नहीं घुसी थी, जहाँ से कर्नाटक कई सौ मील दूर है। इस पर यह विचार उत्पन्न होता है कि सम्पादक महोदय ने "लों" की तो इतनी गहरी छानबीन कर डाली, परन्तु ऐतिहासिक घटना-चक्रों पर क्यों ध्यान नहीं दिया। 'शिवराज भूषण' के २६१ वें छंद में लिखा है—

> "पेसकसैं भेजति विलायति पुरतगाल ,
> सुनि कै सहम जाति कर्नाटकथली है।"

इससे यह प्रतीत होता है कि इङ्गलैंड और पुर्तगाल के व्यापारी शिवाजी के पास अपने राजदूत और नजराने भेजने लगे थे। मद्रास, गोआ इत्यादि स्थानों पर मरहठों का अत्यधिक प्रभाव होने से कर्नाटक भयभीत हो गया था। यह दशा संवत् १७३१ (सन् १६७४) में शिवाजी की राजगद्दी होने के पश्चात हुई थी। अतः ये घटनाएँ 'शिवराज भूषण' के निर्माण-काल के पीछे की ही माननी पड़ेंगी। 'शिवा-बावनी' की घटनाएँ तो और भी पीछे की मानी जाती हैं। इसका छन्द १७ निम्नलिखित है—

"विज्ञपूर बिदनूर सूर सर धनुप न संधहिं ;
मङ्गल विनु मल्लारि नारि धम्मल नहिं बंधहिं ।
गिरत गब्भ कोटै गरब्भ चिंजी चिंजाउर ;
चालकुण्ड दलकुण्ड गोलकुंडा संका उर ।
भूपन प्रताप शिवराज तुव, इमि दच्छिण दिसि सञ्चरहि ।
मधुरा धरेश धकधकतसो, द्रविड़ निविड़ डरदविडरहि ।'

इस छन्द के अधिकांश भाग में कर्नाटक का वर्णन कि
गया है। चिंजी—चिंजाउर से जिंजी और तंजौर का आशय
जिंजी का किला एप्रिल सन १६७७ ई० में तथा तंजौर
पश्चात् जीता गया था।* मदुरा भी कर्नाटक प्रान्त में एक
स्थान है। विज्ञपूर और बिदनूर की धनुप उठाने योग्य न
की दशा तो सन् १६७८ ई० के बाद ही हुई थी। जब शि
कर्नाटक विजय करके लौटे थे।'शिवा बावनी' के २२ वें छन्द

भूपन भनत गिरि बिकट निवासी लोग,
बावनी बवंजा नव कोटि धुन्ध जोति हैं।

द्वारा बावनीगिरि का जो उल्लेख है, वह कर्नाटक
वर्णन है। श्रीयुत यदुनाथ सरकार ने 'शिवाजी' नामक
पृष्ठ ३८८ पर लिखा है—

The Khan (शेरखाँ) fled with a broke
ment of only 100 cavalry to the t
Bawani Giri, 22 miles south of Velur, st
sued by the enemy.

* यदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी,' पृ० ३०५

'मिश्रबन्धु' महोदय इस बावनी बवंजा को बजूना (फतहपुर सीकरी के समीप एक स्थान) मानते हैं। परन्तु वास्तव में 'बावनी गिरि' से भूषण का तात्पर्य कर्नाटक के उक्त नगर से ही है। यहीं पर शिवाजी ने शेर खाँ को हराया था। 'युक्त प्रान्त' के इस 'बजूना' स्थान से शिवाजी का कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा। न वे कभी वहाँ पहुँचे ही थे।

कुछ सज्जनों ने उक्त छन्द में वर्णित "नव कोटि" का अर्थ "मारवाड़" लिया है; परन्तु भूषण ने इस "नव कोटि" से मदुरा के राजा की नौ करोड़ की सम्पत्ति की ओर संकेत किया है। जिसे शिवाजी ने छीन लिया था। ॐ

'शिवा बावनी' के ७ वें छन्द में भूषण कहते हैं—

'भूषन' भनत बाजे जीत के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल कों सरके।"

कहींकहीं करनाटी के स्थान पर 'अरकाटी' पाठ भी मिलता है, जो कर्नाटक की चढ़ाई के पीछे की घटना है। यह तय है कि कोई शत्रु भय से इतनी दूर की साधारण घटनाएँ सुनकर नहीं भागेगा। वह तो अपने ऊपर आक्रमण होने अथवा होने की सम्भावना पर ही भागेगा।

प्रोफेसर यदुनाथ सरकार अपने शिवाजी नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ३६३ पर लिखते हैं—

Shortly before he had pillaged Porto Novo and made himself master of the South Arcot district in October 1677, army surrendered to

ॐ 'शिवाजी' नामक पुस्तक से कर्नाटक की चढ़ाई का वर्णन।

im and so also did some other forts in the orth Arcot district.

अतः यह निश्चित है—वह स्थान चाहे कर्नाटक हो या अर्काट—दोनों स्थानों की घटनाएँ सं० १७३० वि० से कई वर्ष पीछे की हैं।

इन स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए यह कभी संभव नहीं कि 'शिवराज भूषण' का निर्माण-काल सं० १७३० वि० माना जाय।

भड़ौच पर आक्रमण

'शिवराज भूषण' के छन्द नं० ३५४ में भूषण ने सूरत की लूट के पश्चात् शिवाजी के भड़ौच पर आक्रमण करने का उल्लेख इस प्रकार किया है—

"दिल्लिय दलन दबाय कर, शिव सरजा निरसंक;
लूटि लियो सूरत सहर, वंकक्करि अति डंक।
वंकक्करि अति डंकक्करि अस संकक्कुलिखल;
सोचच्चकित भड़ौच चलिय विमोचच्चखजल।
गद्दद्द मन कट्ठिक सोइ रट्ठ द्दिल्लिय;
सद्दद्दिसि दिसि भद्दवि भइ रद्दिल्लिय।

कुछ लोग इस वर्णन को एकमात्र सूरत की लूट के सम्बन्ध में ही मानते हैं। वे कहते हैं कि सूरत की लूट को देखकर भड़ौच चलायमान हो गया था। इसमें शिवाजी की सेना के भड़ौच पर किये गये आक्रमण का उल्लेख नहीं है।

यह कथन वास्तविकता से भिन्न है। इसकी केवल दूसरी पंक्ति में सूरत के लूटने का वर्णन है। तीसरी पंक्ति में उसके

प्रभाव का वर्णन करते हुए शत्रुओं में भय प्रदर्शित किया गया है।

सूरत की लूट के प्रभाव को सोचकर भड़ौंचवाले शत्रु आश्चर्य-चकित होकर घबड़ा गये और आँसू बहाने लगे। अंत में शिवाजी ने सूरत के समान ही भड़ौंच नगर के दरवाजे पर पहुँच कर "ढेर के ढेर" शत्रुओं को ढेलकर भगा दिया। इस कारण सब ओर से दुखकर स्थिति की भड़ हुई और वह बरबाद हो गई। भड़ौंच के सम्बन्ध में इतना स्पष्ट उल्लेख होते हुए भी यदि कोई विद्वान इससे असहमत हो तो आश्चर्य ही है! इस पर मिश्र जी का भाष्य देखिये। आप लिखते हैं

"पूर्वोक्त पद का सीधा अर्थ यह है कि सूरत के लोग चक-चकाये हुए, सोचते हुए और नेत्रों से जल गिराते हुए भड़ौंच की ओर चले (भागे)। पर आप 'भड़ौंचलिंग' का अर्थ 'भड़ौंच भी पलायमान हो गया, घबड़ा गया' लेते हैं। अपने चरण को सूरत की लूट से न जोड़कर भड़ौंच के आक्रमण से जोड़ लेते हैं। किन्तु सूरत की लूट के समय वहाँ के लोग भड़ौंच की ओर भागे थे।'

इस पद के 'चकित' शब्द का अर्थ मिश्र जी ने 'चकपकाये हुए' लिया है, जिसका भावार्थ 'सकपकाना' या सशंकित होना लिया है। चकित का अर्थ अचंभित होना होता है। 'चकपकाना' या 'सकपकाना' भयभीत होना नहीं। इसका 'अचंभित' अर्थ करने से ही मिश्र जी का भावार्थ विकृत हो जाता है, क्योंकि आश्चर्य किसी घटना के एकाएक घटित होने, आपत्ति आने अथवा नवीनता की उद्भावना होने के पूर्व ही होता है, पीछे नहीं। यह मनोविज्ञान का पक्का और साधारण नियम है। अतः सूरत की लूट होने के बाद आक्रमण का आश्चर्य सूरतवालों को

हो ही नहीं सकता। यह अचम्भा सूरत की लूट पर भड़ौचवालों को हुआ, जो युक्ति-युक्त है। त्रिनेत्र जी ने इस अर्थ की वास्तविकता न समझ कर 'चकित' शब्द का अशुद्ध अर्थ कर दिया है। जिससे वह सूरत पर घटित हो जाय। परंतु यह संभव ही नहीं है। इस परिस्थिति के कारण 'सोचत चकित और चलिय' का कर्ता भड़ौंच के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। अतः उक्त अमृतध्वनि का यह अर्थ होगा—"शेर शिवाजीने दिल्ली की सेना को निर्भयतापूर्वक दवाकर सूरत नगर को बड़े जोर से डंका बजाते हुए तीव्रता से आक्रमण करके लूट लिया। इस प्रकार लूट करने से औरंगजेब की सम्पूर्ण अत्याचारी सेना में आतंक भर गया। इसके विचारते ही भड़ौंचवासी अचम्भे में भर कर घवड़ाये तथा आँखों से आँसू बहाने लगे।" छन्द की अंतिम दो पंक्तियों ने उपर्युक्त कथन को और भी पुष्ट कर दिया है। अर्थात् "वैसा ही मन में निश्चय करके (शिवाजीने) भड़ौंच नगर के द्वार पर पहुँच कर ढेर के ढेर शत्रुओं को पीछे ठेल दिया। जिससे शीघ्र ही सब दिशाओं में बदनामी होने से दब कर दिल्ली बरबाद हो गई।" इसमें प्रयुक्तठिल्लिय का अर्थ त्रिनेत्र जी प्रबन्ध करना लेते हैं। रामलीला देखते हुए पुलिस द्वारा ठेले जाने और संगीन की नोकसे ठेलने के अंतर का ध्यान रखना चाहिए। यह समझ लेना चाहिए कि शत्रुको संगीनों द्वारा ठेल कर भी खाड़ी तक पहुँचाया जा सकता है। इसी प्रकार आपने 'कुलिखल' को कर्ता मानकर सूरत के साथ मिला दिया है, परन्तु यह शब्द स्पष्ट रूप से ही सम्बन्यन्त है और औरंगजेब की सम्पूर्ण सेना के लिए जो कि अत्याचार कर रही थी, उपयुक्त हुआ है।

इस आक्रमणका उल्लेख तकाखव और केलूस्कर ने अपने "लाइफ आफ शिवाजी महाराज" के पृष्ठ ४११ पर किया है। वे

लिखते हैं—"शिवाजी के सेनापति हमीरराव ने सन् १६७४ ई० में नर्मदा को पार किया और भड़ौंच में घुस गया।" फिर पृष्ठ ४१३ पर उक्तलेखक वर्णन करते हैं कि हमीरराव की सेना ने भड़ौंच के आस-पासका भाग दबाया। इसी कथनका यदि 'ग्रांट डफ' ने अपने इतिहासमें वर्णन कर दिया तो क्या पाप किया? इससे स्पष्ट है कि भूपण का कथन भड़ौंच विषयक ही है, अन्य कुछ नहीं। आशा है पाठकगण इस छन्दमें वर्णित वास्तविक भावना को समझ गये होंगे।

यह घटना सं० १७३० वि० के कई वर्ष पीछे की है, अतः निश्चित है कि 'शिवराज भूपण' का यह निर्माणकाल कदापि नहीं है। वरन् उसका समय सं० १७७३ वि० है। जैसा कि पिछले अध्यायमें दिखलाया गया है। कर्नाटक और भड़ौंचकी घटनाएँ ही नहीं हैं वरन् अन्य अनेक घटनाएँ भी इसी का समर्थन कर रही हैं।

भड़ौंचकी लूट सं० १७३२ विक्रमी में हुई थी। ❀ डफ महाशय का कथन है कि सं० १७३२ वि० के पूर्व कभी भी मराठा सेना नर्मदा नदी के उत्तर की ओर नहीं गई। जब तक सेना का आगमन नर्मदा नदीके दक्षिण किनारे तक न होता तबतक शत्रु पराजित होकर भागने का नाम भी न लेते। यहाँ तो प्रत्यक्ष ही भड़ौंचके दरवाजे पहुँचने अथवा उसकी सेना में घुसने का उल्लेख है।

यह घटना 'शिवराज भूपण' के कल्पित निर्माण-काल से दो वर्ष पश्चात्की है। यह निश्चित है कि 'शिवराज भूपण' के निर्माण-कालके अनन्तर की अनेक घटनाएँ उस ग्रन्थमें वर्तमान हैं। अतः उसमें दिया हुआ निर्माण-काल अशुद्ध है।

❀ डफ कृत 'मराठा इतिहास' भाग१, पृष्ठ २६७।

रामनगर-विजय

हम अभी बतला चुके हैं कि 'शिवराज-भूषण' की अनेक घटनाएँ उसके कल्पित निर्माण-काल के पीछे की हैं। इनमें एक घटना रामनगर-विजय की भी है। भूषण ने 'शिवराज भूषण' में इसका वर्णन इस प्रकार किया है।—

"जावलि बार सिंगार पुरी औ,
जवारि कौ राम के नेरि को गाजी।
भूषण भौंसिला भूपति तैं सब,
दूरि किये करि कीरति ताजी।"

—शि० भू० २०७.

   

"भूषण भनत राम नगर जवारि तेरे,
बैर परवाह बहे रुधिर नदीन के।

शि० भू० १७३

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शिवाजी की विजयों का ही इन छन्दोंमें उल्लेख है। उन्होंने रामनगर को जीतकर अपने यश को नवीन रूप से दिग-दिगन्त व्यापी कर दिया है। भूषण ने रामनगर की विजय को बहुत महत्वपूर्ण बतलाया है तथा इसके कारण शिवाजी को गाजी की उपाधि दे डाली है। शिवाजी ने रामनगर को मई सन् १६७६ ई० में जीता था। ❀

'शिवाजी' ग्रन्थ के पृष्ठ २९२ के फुटनोट में लिखा है—

❀ 'ग्रेट शिवाजी' (Great Shivaji) पृष्ठ ३५०

"Ram Nagar was not conquered even up to 1678."

शिवाजी के आक्रमण रामनगर पर जून सन् १६७२ ई० से ही प्रारम्भ हो गए थे, परन्तु उसकी विजय सन् १६७६ ई० में ही हुई थी। जो 'शिवराज भूषण' के निर्माण-काल (सं० १७३० वि०) से कई वर्ष पीछे की घटना है। ऐसी दशा में 'शिवराज भूषण' का निर्माण-काल सं० १७३० वि० मानना नितान्त अशुद्ध है। सर यदुनाथ सरकार ने अपने शिवाजी नामक ग्रन्थ के पृष्ठ २६२ पर शिवाजी द्वारा रामनगर विजय करने का उल्लेख अवश्य किया है। परन्तु तुरन्त ही वहाँ से भागने की चर्चा भी कर दी है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सन १६७२ ई० की इस विजय का कोई महत्व नहीं था। क्योंकि वहाँ से मरहठों को तुरन्त भागना पड़ा था। ऐसी दशा में इस घटना के एक वर्ष पश्चात् भूषण इस विजय का क्यों उल्लेख करने लगे? इस पर भूषण ने रामनगर की विजय पर शिवाजी को 'राम के नेट को गाजी' कहकर उन्हें महत्व दिया है।

'शिवराज भूषण' छंद २०७

इसीका उल्लेख 'सोर्सबुक आफ मराठा हिस्ट्री' भाग २, पृष्ठ ३२६ पर इन शब्दोंमें किया गया है—

"Shivaji made a second raid on Surat and now lately has taken the Raja Shiva of Ram Nagar."

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भूषण ने इस वर्णन में १६७२ ई० की घटना का कथन कदापि नहीं किया। वरन् १६७६ ई० के आक्रमण का ही उल्लेख आया है। जिसमें वहाँ के राजा को हटाकर रामनगर को अपने राज्य में मिला लिया था। इस पर त्रिनेत्र जी

लिखते हैं—' भूषण ने १६७६ ई० में 'शिवराज भूषण' समाप्त किया। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि उन्होंने जिस तिथि का उल्लेख किया है, उसी तिथि को सबकी सब रचनाएँ रच डालीं। क्या रामनगर की चर्चा सन् १६७२ ई० में नहीं की जा सकती थी? पर दीक्षित जी के लिए यह महत्वपूर्ण न होती।"

(साप्ताहिक आज, १६—१२—४० पृ० २४)

यह ठीक है कि भूषण ने अपना ग्रन्थ एक ही दिन में नहीं लिख डाला था। परन्तु जिस घटना का परिणाम अन्त में पलायन हो, उसे विजय के रूप में वर्णित करना भूषण जैसे मनस्वी कवि के लिए कदापि संभव नहीं। विशेषतः ऐसी दशा में, जब आवागमन की कठिनाइयाँ और परिस्थितियाँ समय-साध्य हों तथा ग्रन्थ-संशोधन का पूरा अधिकार ग्रन्थ समाप्ति तक लेखक के हाथ में हो। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि महाकवि भूषण ने रामनगर की जिस घटना का उल्लेख किया है, वह सन् १६७६ ई० की ही विजय का वर्णन है, अन्य नहीं।

बहादुर खाँ

भूषण ने बहादुर खाँ की चर्चा अपने अनेक छन्दों में की है और उसे भिन्न-भिन्न नामों से याद किया है। उसके लिए कहीं 'बहादुर खाँ' कहीं 'बादर खाँ' कहीं 'खान' और कहीं 'जहान' नामों का उल्लेख मिलता है। जैसे—

(१) "पीय पहारन पास न जाहु यों,
तीय बहादुर सों कहें सोपें;
कौन बचै है नवाब तुम्हें, भनि,
'भूषन' भौंसिला भूप के रोपें ? ॥१॥
शि० भू०, ७७।

(२) या पूना में मत टिको, खान बहादुर आय,
इहाँई साइत खान कों, दीन्हीं सिवा सजाय ॥
शि० भू० ३४०

(३) आजु सिवराज महाराज एक तुही सर—
नागत जनन कों दिवैया अभैदान कौ;
फैली महि मंडल बड़ाई चहुँ ओर तातें,
कहिये कहाँ लौं ऐसे बड़े परिमान कौं ॥
निपट गँभीर कोऊ लांघि न सकत वीर,
जोधन कों रन देत जैसे भाऊ खान कौं।
दिल दरियाव क्यों न कहैं कविराय तोहिं,
तो मैं ठहरात आनि पानिप जहान कौं ॥
शि० भू०, ३४८।

(४) गत बल खान दलेल हुव, खान बहादुर मुद्ध ॥
शि० भू० ३५७

(५) दीन्हों मुहीम को भार बहादुर,
छागो सहै क्यों गयंद को झप्पर ?

....

(६) काल्हि के जोगी कलींदे के खप्पर ।"
फुटकर छन्द ४५।

इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि बहादुर खाँ के विषय में भूषण की एक निश्चित राय थी। भूषण ने उसे शिवाजी के मुकाबिले में सर्वत्र अत्यन्त तुच्छ ठहराया है। ऊपर के छन्दों

में भूषण ने उसकी भिन्न—भिन्न परिस्थितियों का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। तीसरे उदाहरण में बहादुर खाँ के लिए 'खान' और 'जहान' नामों का उल्लेख आया है। 'खान-जहान' बहादुर खाँ की उपाधि थी।

'साहित्य सेवक कार्यालय' काशी से प्रकाशित तथा पंचवर्गीय विद्वान् सम्पादकों द्वारा सम्पादित 'भूषण ग्रन्थावली' के पृष्ठ ३२० पर 'खान' की व्याख्या में लिखा है—

"खान—मुसलमानों की एक उपाधि। खाँ जहाँ बहादुर (दे० बहादुर खान)।"

इसी ग्रन्थ के पृ० ३२६ पर 'जहाँ बहादुर' की व्याख्या करते हुए उन्हीं विद्वानों ने लिखा है—

"जहाँ बहादुर—खाँ जहाँ बहादुर (दे० बहादुर खाँ)।"

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'खान' और 'जहान' शब्द बहादुर खाँ के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

बहादुर खाँ जनवरी सन् १६७३ से १६७७ ई० तक पहली बार दक्षिण का गवर्नर रहा था। ❀

दूसरी बार सन् १६८० ई० में बहादुर खाँ फिर दक्षिण का सूबेदार होकर आया था। उसे इसी समय बादशाह औरंगजेब की ओर से 'खाने जहाँ' की उपाधि दी गई थी। †

इस पर त्रिनेत्र जीने 'आज' में जो टिप्पणी दी है, वह पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र की ही बात के विरुद्ध है। मिश्र जी स्व-संपादित भूषण-ग्रंथावली के पृष्ठ ३२० पर स्पष्ट रूप से उक्त दोनों शब्दों की व्याख्या 'खाने जहाँ बहादुर' (बहादुर खाँ) के लिए की है।

❀ 'औरंगजेब' जिल्द ४, पृष्ठ १३९।

† 'औरंगजेब' यदुनाथ सरकार कृत, जिल्द ४, पृष्ठ २४३।

[illegible]

"[illegible] ॥

[illegible] ॥"

[illegible]

[illegible]

[illegible] है।

द्वितीय वर्ग

भूषण के निवास-भूमि [illegible] विद्वानों ने [illegible] का उल्लेख किया है। [illegible] में [illegible] ये लिखते हैं—

गत बल खान दलेल हुव, खान बहादुर मुद्ध।"

इसी प्रकार अन्यत्र भी कई स्थानों पर इसकी चर्चा की गई है। दिलेर खाँ को शिवाजी ने जून सन् १६७४ ई० में हराया था। प्रोफेसर यदुनाथ सरकार अपनी शिवाजी की जीवनी के पृष्ठ ६२ पर लिखते हैं—

Defeat of Deler Khan, 1674. But Shivaji stopped the Pathans by breaking the roads and mountain passes, and keeping a regular guard at various points, where the route was most difficult and the mughals had returned baffled."

फिर अँगरेजी व्यापारियों के लेख का उद्धरण देते हुए प्रोफेसर सरकार आगे लिखते हैं—

"Deler Khan hath laterly received a route by Shivaji and lost 1000 of his Pathans."

इस युद्ध से पूर्व दिलेर खाँ और शिवाजी का कोई युद्ध नहीं हुआ। यदुनाथ सरकार ने मुख्यतः दोनों के आमने-सामने के युद्ध का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। सम्भवतः अन्य इतिहासकार भी इस विषय में सरकार महोदय से पूर्णतया सहमत हैं।

इस घटना से दिलेर खाँ की धाक उखड़ गई थी। उसकी शान में क्षीणता आ गई थी। इसी का उल्लेख भूषण ने "गतवल खान दलेल हुव" कहकर किया है।

उक्त अमृतध्वनि में भूषण ने 'दिलेर खाँ' और 'बहादुर खाँ' का वर्णन किया है। तथा सल्हेर के युद्ध में न तो दिलेर खाँ लड़ा था और न बहादुर खाँ। अतः इसमें दिलेर खाँ और बहादुर खाँ

किया था। वरन् बहुत पीछे शाहू के सामने उक्त कथन किया गया था। इसी से ये कथन तत्कालीन वास्तविक स्थिति से सर्वथा भिन्न । इसका प्रधान कारण कवि-प्रणाली नहीं, अपितु कल्पना है।

भूषण ने 'रायगढ़' की अपेक्षा 'सितारा' राजधानी का महत्व अधिक प्रदर्शित किया है और अनेकों छन्दों में उसका वर्णन भी आया है। 'शिवा-बावनी' के छंद नं० ७ में—

"मारे सुन सुभट पनारे वारे उदभट,
तारे लागे फिरन सितारे गढ़धर के।"

कहकर सितारा नगर का बहुत ही ओजपूर्ण वर्णन किया गया है।

शिवाजी ने सितारा नगर २५ अक्तूबर सन् १६७४ को लिया था। जो 'शिवराज भूषण' के कल्पित निर्माण-काल के एक वर्ष के अनन्तर होता है। उस समय सितारे का कोई महत्व नहीं था। शिवाजी तो सितारे में कभी रहे ही नहीं। वास्तव में सितारे की प्रसिद्धि शाहू के द्वारा राजधानी बनाये जाने पर सं० १७६१ से हुई* भूषण ने शिवा-बावनी के छन्द नम्बर २८ में—

"बाजत नगारे जे सितारे गढ़धारी के।"

तथा छन्द नं० ३६ में—

"दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की।"

कहकर शाहू का ही उत्कर्ष दिखलाया है और दिल्ली तथा सितारे की तुलनात्मक आलोचना तक कर डाली है। उन्होंने अन्तिम छन्द में सितारे को पति और दिल्ली को पत्नी-रूप में व्यक्त करके शाहू की राजधानी को ही महत्व दिया है। इसमें बड़ी

---

* 'ग्रेट शिवाजी' (Great Shivaji) पृ० ३४०।

ही सुन्दर तथा महत्त्वपूर्ण उक्ति द्वारा दिल्ली की दिल्लगी उड़ाई गई है।

रायगढ़ और सितारा के इस अन्तर को देखकर कुछ ऐतिहासिक चक्कर में पड़ जाते हैं और 'इति. वर्णन विरुद्ध' होकर 'शिवा बावनी' को ही जाली कहने लगते हैं। भूषण को शिवाजी के दरबार में माननेवाले महानुभावों के पास इस प्रश्न का कुछ उत्तर नहीं है। 'शिवा बावनी' में इसके अतिरिक्त अन्य कीर्तियों घटनाओं का उल्लेख है। जिनसे शिवाजी का कोई संबंध न होकर शाहू अथवा उनके समय से संबंध रखती हैं। जो 'शिवा-बावनी' से शाहू का संबंध निर्धारित करने में सबल प्रमाण हैं।

मरहठों की सत्ता को शिवाजी की सत्ता और उन्हीं के प्रताप का फल समझ कर भूषण ने इस प्रकार के वर्णन किये हैं। जो बातें शिवाजी के नाम पर कथन की गई हैं, वे वास्तव में शाहू के साथ यथातथ्य रूप में प्रतिफलित होती हैं। कवि ने शिवाजी को महाराष्ट्र की सत्ता के रूप में प्रतिपादित किया है। भूषण का ध्येय शिवाजी का आदर्श सामने रखकर सारे देश को संगठित करना था। इसके लिए उन्होंने अनेक प्रकार के प्रयत्न भी किये थे।

'शिवराज भूषण' में रायगढ़ का और फुटकर छन्दों में सितारा का वर्णन मिलने से हम दोनों के अन्तर को सरलता से समझ सकते हैं। ये कथन शिवाजी को वास्तविक रूप में हमारे सामने खड़ा कर देते हैं।

समालोचक मिश्र जी ने रायगढ़ और सितारा के इस अन्तर पर तो कुछ ध्यान नहीं दिया और बाग-बगीचों के वृक्षों तथा पौधों की आलोचना करने लगे। ऐसे वर्णनों से इतिहास पर कोई

प्रभाव नहीं पड़ता। हाँ, वास्तविक विवेचन दूर होकर वितंडावाद सामने आ जाता है, जो अवांछनीय है। ये सब वर्णन अवश्य ही सं० १७३० वि० के बाद मानने पड़ेंगे।

भूषण के सम्मुख घटित घटनाओं का अभाव

शिवाजी के दरबार में भूषण के जाने का जो समय माना जाता है, उस समय अनेक बड़ी-बड़ी घटनाएँ हुई थीं। परन्तु भूषण ने उनकी चर्चा न तो 'शिवराज भूषण' में की, न स्फुट छंदों में ही उनका वर्णन मिलता है। सं० १७२७ से सं० १७२९ तक की प्रमुख घटनाओं का विवरण इस प्रकार है*—

(१) शिवाजी-छत्रसाल की भेंट, सन् १६७१ ई० (सं० १७२७ वि०।)

(२) भूपतिसिंह पवाँर का पुरन्दर के किले में मारा जाना, सन् १६७० ई० (सं० १७२७ वि०)

(३) रजीउद्दीन खाँ को किले में कैद कर देना, सन् १६७० ई० (सं० १७२७ वि०)

(४) महावत खाँ की हार, सन् १६७१ ई० (सं० १७२८ वि०)

(५) विक्रमशाह से राज छीनना सन् १६७२ ई० (सं० १७२९ वि०)

'मिश्रबंधु' महोदय शिवाजी के दरबार में भूषण के जाने का समय पहले सं० १७२८ वि० मानते थे। परन्तु उन्होंने 'हिन्दी-नवरत्न' के नवीन संस्करण में यह समय सं० १७२४ वि० कर दिया है।+ इस संशोधन का आधार क्या है? यह एक रहस्य है। शिवाजी के दरबार में भूषण के जाने की तिथि सं० १७२४ मान

---

* 'शिवाजी' पृष्ठ १०७, १२८, १८८, २०७, २११ और ४२२।

+ 'हिन्दी नवरत्न' पृ० ४०२।

लेने पर तो ऐसी घटनाओं की संख्या और भी अधिक हो जायगी, जो भूषण के सामने थीं। परन्तु उन घटनाओं का वर्णन उन्होंने नहीं किया।

इसके अतिरिक्त भूषण ने 'शिवराज भूषण' में कई घटनाएँ अशुद्ध भी दी हैं, जिनकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता नहीं है। वे निम्नलिखित हैं—

(१) शिवाजी का मिर्ज़ा जयसिंह को २३ किले देना ऐतिहासिक बात है; परन्तु भूषण इनकी संख्या ३५ लिखते हैं।

(२) गुसलखाने का वर्णन भी इतिहास के अनुकूल नहीं है।

शिवाजी की मृत्यु के पीछे की घटनाएँ—

'शिवराज भूषण' में कुछ घटनाएँ ऐसी भी हैं जो उसके कल्पित निर्माण-काल के ही पीछे की नहीं हैं, वरन् शिवाजी की मृत्यु के भी बहुत काल पीछे की हैं, जिनका मेल वास्तविक निर्माण-काल से ठीक-ठीक बैठ जाता है।

'शिवराज भूषण' का छन्द नं० १४६ यह है—

"उत्तर पहार विधनोल खंडहर भार-
खंड हू प्रचार चारु केली है विरद की।
गोर गुजरात और पूरब पछाँह ठौर,
जंतु जंगलीन की बसति मार रद की।
'भूषन' जो करत न जाने बिन घोर सोर,
भूलि गयो आपनो उँचाई लखे कद की।
खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की॥"

—'शिवराज भूषण' २८९।

इस छन्द में भूषण ने मरहठों द्वारा गोर (बंगाल) और गुजरात प्रान्त के बरबाद किये जाने का वर्णन किया है। साथ ही इन पूर्व और पश्चिम के स्थानों की विजय का भी उल्लेख कर दिया है। हिमालय पहाड़, उड़ीसा और बिदनूर तक शिवाजी का यशोगान हो रहा है। जो औरंगजेब सदैव अपनी महत्ता का जोर शोर से प्रदर्शन किया करता था, वह भी अपनी शाहंशाही महानता को भूलकर भयभीत हो गया। ऐसा औरंगजेब रूपी हाथी सिंह रूपी शिवाजी से शत्रुता करके अपने मद को खो बैठा। इस छन्द की प्रथम दो पंक्तियों में शेर रूपी शिवाजी के यश-विस्तार, भय, आतंक तथा जंगली जीवधारियों के समूहों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिये जाने का उल्लेख है।

बिदनूर से औरंगजेब का कभी संबंध नहीं रहा और न उसने उसे कभी विजय ही किया। शिवाजी का बिदनूर पर आक्रमण एक प्रसिद्ध घटना है। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये छन्द शिवाजी रूपी सिंह के ही लिये कहे गये हैं। औरंगजेब रूपी हाथी के लिए नहीं। उन स्थानों में शेर अधिकता से पाये भी जाते हैं। एतदर्थ शिवाजी का सिंह से सम्बन्ध स्थापित करना युक्ति-युक्त है। सरजा (शेर) शिवाजी की उपाधि भी है, जिसका भूषण ने बहुत अधिक वर्णन किया है। इसीलिए उक्त कवित्त का ठीक अर्थ वही माना जा सकता है, जो ऊपर कहा गया है। साथ ही ये घटनाएँ शिवाजी के जीवन-काल से ही संबंधित नहीं हैं, वरन् उनकी मृत्यु (सं० १७३७ वि०) के पश्चात् शाहू, बाजीराव पेशवा तथा उनके भाई चिन्तामणि से भी संबंधित हैं।

इससे हम सरलता-पूर्वक भूषण की विचार-सरणी तथा उनके शिवाजी से संबंध का अनुमान कर सकते हैं। महाकवि भूषण महाराष्ट्र अभ्युदय को भगवान शिवजी की ही विभूति

मानते थे। इसीलिए उन्हें विष्णु के अवतार-रूप में प्रतिपादित किया है। उक्त छन्द की तीसरी पंक्ति में प्रयुक्त 'जो' शब्द भूषण के भाव को भली भाँति व्यक्त कर देता है। जो पहली दोनों पंक्तियों से प्रत्यक्ष तथा भिन्न है। "जंतु जंगलीन की वसति मार रद की" भाव सिंह के लिए ही कहा जा सकता है। हाथी तो शेर की माँद सूँघकर ही उसके पास फटकने का साहस नहीं कर सकता। शेर ही सम्पूर्ण जंगली जानवरों का शिकार करके उनके स्थानों को रिक्त कर सकता तथा उन्हें उजाड़ सकता है।

शिवाजी को दक्षिण के झंझटों से ही जीवन भर अवकाश नहीं मिला था। अतः उक्त परिस्थिति का सच्चा चित्र समय के अनुरूप लाने के लिए हमें शाहू के समय में गये बिना निस्तार नहीं हो सकता। साथ ही वे घटनाएँ 'शिवराज भूषण' के निर्माण काल सं० १७७३ वि० से भी भली भाँति मिलान खा जाती हैं।

जो सज्जन भूषण की वास्तविक विचार-धारा और शैली से अपरिचित हैं, वे ही ऐसे कथन पढ़कर चकरा जाते हैं। यथार्थ में भूषण की रचना-प्रणाली अन्य कवियों की रचना-प्रणाली से नितान्त भिन्न है। उसमें अन्योक्ति, रूपक, उपमा श्लेषादि अलंकारों की अधिकता होने से उसका भावार्थ समझने में कुछ कठिनाई अवश्य होती है। वैदिक भावना एवं ऐतिहासिक विवेचन होने से उसमें गंभीरता एवं विशिष्ट विचारों का दिग्दर्शन होना स्वाभाविक है।

इन जटिल बातों को ठीक-ठीक समझे बिना विद्वत्समाज भूषण की रचना को वास्तविक रूप में नहीं समझ सकता।

त्रिनेत्र जी ने इस छन्द की पहली दो पंक्तियों को भी औरंगजेब के विशेषण-रूप में मान लिया है, जो अशुद्ध एवं भ्रमपूर्ण है।

भूषण की रचना की यह विशेषता है कि उसका वास्तविक स्वरूप जाने विना विवाद करने से लज्जित होना पड़ता है। भूषण की रचना का एक ही निश्चित अर्थ कहना और मानना पड़ेगा। तब हम उसके समय का निरूपण भी सरलतापूर्वक कर सकेंगे।

इन सम्पूर्ण बातों पर विचार करने से यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि भूषण ने शिवाजी के दरबार में रह कर 'शिवराज भूषण' का प्रणयन कदापि नहीं किया था।

दक्षिण में जो महाराष्ट्र साहित्य उपलब्ध है, उससे भी इसी विचार की पुष्टि होती है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भूषण शिवाजी के दरबार में न रह कर शाहू के दरबार में ही थे।

शब्द-साक्ष्य

शब्द-शास्त्र का प्रमाण भी एक प्रबल प्रमाण माना जाता है। शब्दों का विकास और ह्रास सामाजिक जीवन में एक प्रधान स्थान रखता है। भूषण ने शिवाजी के लिए कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो शब्द-शास्त्र की दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने 'शिवराज-भूषण' के छन्द नं० २०१ में—

"सरजा सवाई कासों करि कविताई तब,
हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है।"

पद दिया है। इतिहासज्ञ भली भाँति जानते हैं कि 'सवाई' की उपाधि औरंगजेब ने सर्व प्रथम जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह द्वितीय को सं० १७५७ वि० में दी थी। †

भूषण औरंगजेब से बहुत घृणा करते थे। इसलिए उसकी दी हुई उपाधि सवाई का उन्होंने जयसिंह के लिए कभी प्रयोग नहीं

---

† 'राजस्थान' भाग १।

किया। इसके विपरीत वे 'सवाई' की उपाधि शिवाजी के लिए प्रयुक्त करते थे।

यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि इस सवाई शब्द का महत्व जयसिंह की उपधि-प्राप्ति से पूर्व कुछ भी न था। महाराज जयसिंह के सवाई जयसिंह कहलाने के कारण ही इस उपाधि को बड़प्पन मिला था।

'सवाई' शब्द का भूषण से पहले बहुत कम प्रयोग हुआ है। अतः 'शिवराज भूषण' में इसका वर्णन आने से स्पष्ट हो जाता है कि उसका निर्माण-काल अवश्य सं० १७५७ वि० से पीछे का है। तभी सवाई शब्द ढलकर उसमें आ सका था। इस 'सवाई' शब्द का प्रयोग महाकवि भूषण से पूर्व ही महाराष्ट्र के विद्वानों ने शिवाजी के लिए किया था। संभवतः वहीं से प्रभावित होकर भूषण ने अपने ग्रन्थ 'शिवराज भूषण' में इस शब्द का प्रयोग किया है। कुछ भी हो यह निश्चित है कि 'सवाई' शब्द की महत्ता जयसिंह के समय से ही बढ़ी थी।

इसी प्रकार का दूसरा शब्द 'बखत बुलन्द' भी है। भूषण के पूर्ववर्ती कवियों ने भी इसका प्रयोग किया है। मतिराम द्वितीय ने सं० १७४७ वि० में 'अलङ्कार पञ्चाशिका' नामक ग्रंथ रचा था। उसमें उन्होंने राजकुमार ज्ञानचन्द के लिए इस उपाधि का उल्लेख किया है। इसी प्रकार 'केशवदास' ने भी 'वीरसिंह देव चरित' में वीरसिंह देव के लिए इसका प्रयोग किया है। परन्तु भूषण ने यह उपाधि केवल शिवाजी के लिए ही प्रयुक्त की है, अन्य किसी के लिए नहीं। उदाहरण के लिए—

"वासव से बिसरत बिक्रम की कहा चली,
बिक्रम लखत बीर बखतबुलन्द के।"

—शि० भू० १०९

औरंगजेब ने यह उपाधि गोंड़ राजा को सं० १७४० वि० में दी थी। ❀

इसमें भी भूषण की वही भावना काम करती हुई प्रतीत होती है, जिसका वर्णन 'सवाई' शब्द के विषय में किया गया है। इसके प्रयोग की एक विशेषता यह भी है कि 'बखत बुलन्द' शब्द यहाँ विशेषण के रूप में नहीं रखा गया है; वरन् उपनाम की भाँति प्रयुक्त किया गया है। अतः ये दोनों शब्द 'सवाई' और 'बखत बुलन्द'—शब्द-साक्ष्य के रूप में भूषण की रचना पर अच्छा प्रकाश डालते हैं और उसके निर्माण-काल के यथार्थ स्वरूप के समझने में सहायक होते हैं।

इस प्रकार 'शिवराज—भूषण' के निर्माण-काल पर 'कर्नाटक-विजय' और 'शिवा-बावनी' में वर्णित घटनाएँ, भड़ौंच पर आक्रमण, रामनगर की जीत, दिलेर खाँ और बहादुर खाँ से शिवाजी के युद्ध, रायगढ़ और सितारे के वर्णन, गोर-गुजरात आदि स्थानों पर आक्रमण निश्चित रूप से शिवाजी की मृत्यु काल के पीछे की घटनाएँ हैं। 'सवाई' तथा 'बखत बुलन्द' आदि शब्दों के प्रयोग भी ऐसे प्रमाण और साक्षी हैं जिनसे 'शिवराज भूषण' का निर्माण-काल सं० १७३० वि० कदापि नहीं माना जा सकता। वरन् वह लगभग ४३ वर्ष पीछे हट जाता है, जैसा कि 'निर्माण-काल' के दोहे से ही व्यक्त हो जाता है अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'शिवराज भूषण' का निर्माण काल सं० १७७३ वि० ठीक और युक्ति युक्त है। इसके विरुद्ध सिद्ध करने के प्रयास मिथ्या और व्यर्थ हैं।

४—भूषण के आश्रयदाता

आश्रयदाताओं का उल्लेख

महाकवि भूषन ने 'शिवराज भूषण' के २५० वें छन्द में अपने आश्रयदाताओं का वर्णन किया है। जिससे विदित होता है कि वे उनके निर्माण-काल तक किन-किन दरबारों में भ्रमण कर चुके थे। यह छन्द निम्नलिखित है—

"मोरँग जाहु कि जाहु कुमाऊँ,
सिरीनगरै कि कवित्त बनाये।
बान्धव जाहु कि जाहु अमेरि, कि
जोधपुरै कि चितौरहि धाये।
जाहु कुतुब्ब कि एदिल पै, कि
दिलीसहु पै किन जाहु बुलाये।
'भूषन' गाय फिरो महि में,
बनिहै चित चाह सिवाहि रिझाये॥"

कुछ सज्जनों की राय है कि इस सवैया में भूषण के आश्रय-दाताओं का उल्लेख नहीं है; वरन् उन दरबारों का वर्णन है, जहाँ प्रायः कवियों का अच्छा सम्मान होता एवं उनको आश्रय दिया जाता था।

जो 'शिवराज भूषण' के रचना-काल तक भूषण को आश्रय दे चुके थे। इसीलिए बूँदी नरेश बुधसिंह, पन्ना-नरेश, छत्रपति छत्रसाल असोथर-नरेश भगवन्तराय खीची तथा मैंडू नरेश अनिरुद्धसिंह का उल्लेख इन सवैया में नहीं है। क्योंकि भूषण उस समय तक इन दरबारों में नहीं पहुँच सके थे।

भूषण ने इस छन्द में—"दिलीसहु पै किन जाहु बुलाये।" कहकर दिल्ली-नरेश का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है। जिसकी प्रशंसा का एक छन्द भी प्रचलित है।

अनुमान यह है कि दिल्ली के प्रधानामात्य 'बूँदी-नरेश, बुधसिंह द्वारा ही भूषण को बादशाह का निमंत्रण मिला था। कुमाऊँ, श्रीनगर, रीवाँ, जयपुर और दिल्ली के नरेशों की प्रशंसा में भूषण के कई-कई छन्द मिले हुए हैं। संभव है अन्य आश्रयदाताओं की प्रशंसा में भी भूषण के छन्द मिल जायँ। जिनका उन्होंने इस सवैया में वर्णन किया है परन्तु अब तक उनका कोई छन्द प्राप्त नहीं हो सका है।

'आदिल' और 'कुतुब' के उल्लेख से यही प्रतीत होता है कि 'आदिल' और 'कुतुब' के वंशधरों में से जो बच रहे होंगे, उन्हें भी अपने राष्ट्रीय संघटन में सम्मिलित करना भूषण का उद्देश्य था। इसीलिए वे सर्वत्र उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक राज-दरबारों का दौरा किया करते थे। नहीं तो शाहू और दिल्ली-नरेश का सम्मान पाकर मैंडू के साधारण राजा अनिरुद्धसिंह के दरबार में जाने की भूषण को कोई आवश्यकता न थी। भूषण के इन दरबारों में जाने का कारण धन-प्राप्ति ही न था वरन् छोटे-बड़े सब राजाओं का संघटन कर राष्ट्र का निर्माण करना ही उनका प्रधान लक्ष्य था; जिससे औरंगजेब के अत्याचारों से देश और समाज की रक्षा हो सके।

भूषण की इस महत्ता का बहुत थोड़े विद्वानों ने ही अनुभव कर पाया है। वे राष्ट्र के उन्नायक तथा समाज-सुधार के प्रबल समर्थक थे। उन्हें देश की संकुचित मनोवृत्तियाँ बहुत अखर रही थीं। इसीलिए वे समाज का भी नवनिर्माण करने की इच्छा करते थे। इसके लिए प्रयत्न भी कर रहे थे। परन्तु उनका असली लक्ष्य राजनीतिक युक्ति ही था और इसी में उनको अच्छी सफलता भी प्राप्त हो सकी थी।

यहाँ पर इस बात का वर्णन करना असंगत न होगा कि इस छन्द को दृढ़ प्रमाण-कोटि में कभी नहीं माना गया। हाँ, भूषण के आश्रयदाताओं पर विचार करने के पश्चात्, इसे सहायक प्रमाण-रूप में अवश्य लिया जा सकता है। आशा है विद्वत्समाज इसपर इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर विचार करने की कृपा करेगा।

मोरंग और कुमाऊँ नरेश

इस छन्द को ध्यानपूर्वक पढ़ने तथा ऐतिहासिक तारतम्य पर विचार करने से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि कथित दरबारों में भूषण के जाने का वही क्रम है, जो इस छन्द में वर्णित है। अर्थात् हृदयराम सुरकी से 'भूषण' की उपाधि प्राप्त कर यह महाकवि मोरंग (बिहार)—नरेश के दरबार में पहुँचे थे। वहाँ से कुमाऊँ, श्री नगर (गढ़वाल), रीवाँ, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, शाह के वंशज आदिलशाह के उत्तराधिकारी तथा दिल्ली के बादशाह के दरबार में भी पहुँचे थे। इन दरबारों में भूषण के जाने का उद्देश्य वही था, जो ऊपर वर्णित है। अर्थात् विशुद्ध राष्ट्रिय संघटन। नहीं तो रीवाँ और जयपुर-नरेश जैसे महाराजाओं का जीवन भर साथ रहने पर अन्य किसी दरबार में जाने की इच्छा हो ही नहीं सकती थी। अतः निश्चित है कि भूषण का

उद्देश्य राजनीतिक और लक्ष्य राष्ट्रिय संघटन था। वे इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे।

औरंगजेब के आक्रमणों ने मोरंग* और कुमाऊँ† के राज्यों को बरबाद कर दिया था। भूषण ने सर्वप्रथम इन्हीं स्थानों का भ्रमण किया और उन्हें शिवाजी का आदर्श बतला कर उनकी नीति पर चलने का उपदेश दिया। इन राज्यों पर इसका प्रभाव भी पड़ा और आगे चलकर उसी के अनुकरण से उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई। मोरंग राज कुछ समय तक तो सफलतापूर्वक विरोध करता रहा, परंतु आगे चलकर उसका पतन हो गया और वह मुग़लिया साम्राज्य में मिला लिया गया था। इससे स्पष्ट है कि भूषण की विचारधारा और कार्य-प्रणाली अन्य कवियों की अपेक्षा नितान्त भिन्न मार्गावलम्बिनी हो रही थी। कुमाऊँ राज्य भी औरंगज़ेब ने उद्योतचन्द्र से छीन लिया था। केवल शिवाजी का आदर्श ग्रहण करने से उसकी रक्षा हो सकी थी। भूषण ने इन राजाओं की प्रशंसा में कुछ छन्द भी रचे थे। कुमाऊँ-नरेश की प्रशंसा के तो कई छंद भी मिले हैं। परन्तु मोरंग-नरेश की प्रशंसा का कोई छन्द अब तक प्राप्त नहीं हुआ। कुमाऊँ-नरेश उद्योतचन्द्र के हाथियों की प्रशंसा का एक छन्द यह है।

"उलदत मद उनमद ज्यों जलधि जल,
चल हद भीमकद काहू के न आह के।

* 'चम्पारन गज़ेटियर और औरंगज़ेब' भाग ३, पृ० ४१।

† कुमाऊँ-नरेश ने दारा के पुत्र सुलैमान शिकोह को आश्रय दिया था, (कुमाऊँ का इतिहास पृ० २८४) इसलिए औरंगज़ेब ने कुमाऊँ पर कब्जा कर लिया था। 'औरंगज़ेब', भाग ३, पृ० ४१-४२।

प्रबल प्रचण्ड गंड मंडित मधुप वृन्द,
विंध्य से बिलन्द सिंधु सातहू के थाह के।
'भूषन' भनत भूल झंपति झपानि झुकि,
झूमत झुलत झहरात रथ डाह के।
मेघ से घमण्डित मजेजदार तेज पुञ्ज,
गुञ्जरत कुंजर कुमाऊँ-नरनाह के ॥"❀

कुमाऊँ-नरेश उद्योतचन्द्र और उनके राजकुमार ज्ञानचन्द्र के दरबार में रहकर मतिराम द्वितीय ने सं० १७४७ वि० में 'अलंकार पंचाशिका' † नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में उन्होंने भूषण की भाँति ही ज्ञानचन्द्र के हाथियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

"सहज सिकार खेलै पुहुमि पहार पति,
यार रह्यौ गढ़पति ढार सों लपटि के।
कहै 'मतिराम' नाद सुनत नगारन कौ,
नगन के गढ़पति गढ़ तें निकसि के।
सोहै दल वृन्द में गयन्द पर ज्ञानचन्द्र,
बखतबिलन्द ऐसी सोभा रही मढ़ि के।
मेरे जान मेघन के ऊपर अँबारी कसि,
मघवा मही को सुख लेन आयौ चढ़ि के।"

इन दोनों छन्दों की तुलना करने से स्पष्ट विदित होता है कि

आर्थिक स्थिति साधारण ही थी। ऐसी दशा में उनका यह उत्सर्ग अनुपम एवं प्रशंसनीय था।

श्रीनगर (गढ़वाल) नरेश फतहशाह

महाकवि भूषण के आश्रयदाता फतहशाह भी थे। कुमाऊँ से चलकर भूषण इन्हीं के दरबार में पहुँचे थे। इनकी प्रशंसा में 'फतहं-प्रकाश' में भूषण के दो छन्द पाये जाते हैं। जो निम्नलिखित हैं—

"लोक ध्रुव लोक हू तें ऊपर रहैगो भारो,
भानु तैं प्रभानि की निधान आनि आनैगो।
सरिता सरिस सुरसरितै करैगो साहि,
हरि तैं अधिक अधिपति ताहि मानैगो।
अरब परारब लौं गिनती गनैगो गुनि,
वेद तें प्रमान सो प्रमान कछू जानैगो।
सुयश ते भलो मुख 'भूषण' भनैगो बाढ़ि,
गढ़वार राज पर राज जो बखानैगो॥"*

इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि गढ़वाल-नरेश फतहशाह के प्रति जन-साधारण का भाव अच्छा न था। परन्तु भूषण ने अपनी उक्ति और युक्ति से वह भावना दूर कर दी थी।

इस छन्द में फतहशाह की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। साथ ही गढ़वाल को शत्रु-राज्य माननेवालों को अत्यन्त निन्दनीय कहा गया है तथा उनको यश की हानि का भय भी दिखलाया गया है। भूषण के कथन से यह भी प्रतीत होता है कि

---

* 'फतह प्रकाश', सर्ग ४, छन्द ५६।

गढ़वाल-नरेश ने गंगा की धारा को पहाड़ों में उचित मार्ग देकर सरल प्रवाहिनी बना दिया था।

इसी छन्द से यह ध्वनि भी निकलती है कि फतहशाह प्रबल समाज-सुधारक और राष्ट्रवादी व्यक्ति था। इसीलिए वह सर्वोत्कृष्ट माना जाने योग्य है।

दूसरा छन्द यह है—

"देवता को पति नीको पतिनी शिवा को हर,
श्रीपति न तीरथ विरथ उर आनियो।
परम धरम को है गेहचो न ब्रत नेम,
भोग को सँजोग त्रिभुवन जोग जानियो।
'भूषन' कहा भगति न कनक मनि तातें,
विपति कहा वियोग सोग न बखानियो।
सम्पति कहा सनेह न गथ गाहिगे जहँ,
सुख को निरखियोई मुकुति न मानियो॥ *

ऊपर के छन्द में शिवाजी की नीति और उनका प्रभाव बतलाते हुए इन्द्र और महादेव की प्रशंसा की गई है और विष्णु तथा तीर्थादि को व्यर्थ बतलाया गया है। विपत्ति और वियोग को अनिवारणीय बतलाते हुए सुख को मुक्ति न मान कर देश की स्वतंत्रता को ही यथार्थ मुक्ति कहा गया है।

इन छन्दों से स्पष्ट है कि फतहशाह के प्रति भूषण के हृदय में कितना सम्मान था। साथ ही "सम्पति कहा सनेह न गथ

* 'फतहप्रकाश' सर्ग ४, छन्द १६४।

गाहिरो" कहकर उन्होंने उद्योतचन्द्र की निन्दा की ओर संकेत भी कर दिया है। आगे शिवाजी की नीति के अनुसरण से फतहशाह का राज्य-विस्तार बहुत बढ़ गया था।

तदुपरान्त शिवाजी की नीति का प्रसार करते और राज्यों को संघटित करते हुए 'भूषण' बनपुर को लौट आये थे।

फतहशाह कहाँ का राजा था? इसका निर्णय करने में भी कुछ सज्जनों ने भयंकर भूल की है। 'मतिराम-ग्रंथावली' के सम्पादक महोदय ने इन्हें बुन्देलखंड-वासी बुंदेला राजा माना है * और इनका समय सं० १७०० से १७१० दिया है।

ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' के पृष्ठ ४८३ पर 'रतन कवि' को श्रीनगर (बुन्देलखण्ड) वासी और श्रीनगर-नरेश फतहशाह बुंदेला के आश्रित 'फतहप्रकाश' नामक ग्रन्थ का रचयिता माना है। गोविन्द गिल्ला भाई ने भी अपने 'शिवराज शतक' में 'शिवसिंह-सरोज' के आधार पर ही फतहशाह को बुंदेला लिखा है और इन्हीं के आधार पर अन्य साहित्यकारों ने भी उसे बुंदेला मान लिया है।

अनुसन्धान से ज्ञात हुआ है कि श्रीनगर-नरेश फतहशाह न तो बुंदेला था और न बुंदेलखंड का राजा ही था। यह श्रीनगर (गढ़वाल) का राजा था। जिसका समय सं० १७४१ से १७७३ वि० तक था। † वास्तव में 'रतनकवि'-कृत फतह प्रकाश श्री नगर (गढ़वाल)-नरेश फतहशाह की प्रशंसा में ही लिखा गया था। 'रतन कवि' इसी नरेश के आश्रित थे। इनके द्वारा प्रणीत 'फतह प्रकाश' शिवसिंह सेंगर के पुस्तकालय में वर्तमान

है। उसमें कहीं भी फतहशाह को बुंदेला नहीं लिखा है। इसके विपरीत इस ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से फतहशाह को श्रीनगर (गढ़वाल) का राजा लिखा हुआ है। ग्रन्थ के प्रथम उद्योत की समाप्ति पर इस प्रकार लिखा मिलता है—

"श्रीनगरवासी राजा फतहशाह मेदनीशाह आत्मजेन आलम।"

इससे विदित होता है कि श्रीनगर-नरेश फतहशाह, मेदनीशाह का पुत्र था। 'गढ़वाल गजेटियर' में लिखा है कि मेदनीशाह सन् १६८४ ई० (सं० १७४१ वि०) में मर गया और उसका पुत्र फतहशाह श्रीनगर (गढ़वाल) का राजा हुआ। जो सं० १७७३ तक राज्य करता रहा।

'फतह-प्रकाश' के दूसरे उद्योत में अद्भुत रस का उदाहरण देते हुए 'रतन कवि' ने एक छन्द लिखा है। जिसका अन्तिम चरण यह है—

"गढ़वाल नाह फतेशाह शैलगाह तोहि,
जग माँहि जोहि ऐसे ज्ञान गुनियतु है।*

भूषण ने भी एक छन्द में फतहशाह की प्रशंसा करते हुए गढ़वाल राज्य का उल्लेख किया है। इसी छंद को 'रतन कवि' ने 'फतह-प्रकाश' ग्रंथ में उद्धृत किया है। उसका एक चरण यह है—

"सुजस ते भलो मुख 'भूषण' भनैगो बाढ़ि,
गढ़नार राज पर राज जो बखानैगो।†

* 'फतह-प्रकाश', उद्योत २ छन्द ४२।
† 'फतह-प्रकाश', उद्योत ४, छन्द ५९।

ऊपर के उदाहरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि 'रतन कवि' का आश्रयदाता गढ़वाल-नरेश फतहशाह ही था। बुन्देला फतह-शाह कदापि नहीं। बुन्देलखण्ड के किसी श्रीनगर में किसी राजा फतहशाह का तो पता ही नहीं चलता। शिवसिंह सेंगर ने भी अन्य किसी 'रतन कवि' का उल्लेख नहीं किया जो फतह-शाह का आश्रित तथा 'फतह-प्रकाश' का रचयिता हो। अतः यह निश्चित है कि शिवसिंह सेंगर से अनजान में यह भूल हो गई। उसी भूल को गोविन्द गिल्ला भाई तथा मिश्र-बन्धुओं ने दोहरा दिया है। संभवतः इसी ग्रंथ में उद्धृत 'धुरमंगद' के छन्द को (जिसमें पंचम का उल्लेख है) फतहशाह के लिए समझकर ही शिवसिंह सेंगर ने उन्हें बुन्देला लिख दिया है। वह छन्द यह है।

"वीर मदछका पै न कबहूँ उछका जा कौ,
धर में धरका जस पारावार नका है।
जाकौ तेज तका सोई लका सम लका खरे,
खानन खरका जाके धौंसा को धमक्का है।
चाव ज्यों चबका त्योंही पंचम रबका जाइ,
ठौर ही ठबका गज याते जो दबका है।
सोई खोज बका अब लरने सों थका,
जब लागा रन पक्का धुरमंगद कौ धक्का है।"*

'फतह-प्रकाश' में केवल यही छन्द फतहशाह से भिन्न राजा की प्रशंसा में पाया जाता है। 'धुरमंगद' बुन्देला क्षत्रिय था।

शिवसिंह सेंगर ने भूल से इस छन्द को फतहशाह की प्रशंसा में समझ लिया है। 'पंचम' यहाँ कवि का नाम है। यह बुन्देलों की उपाधि भी थी। इसीलिए भ्रम से फतहशाह बुन्देला समझ लिया गया है। वास्तव में वह बुन्देला न था।

रीवाँ-नरेश अवधूतसिंह का दरबार

महाराजा अवधूतसिंह बान्धव-नरेश सं० १७५७* वि० में गद्दी पर बैठे थे। इसके कुछ दिन पश्चात् भूषण ने रीवाँ दरबार में पदार्पण किया था। रीवाँ-राज्य के जागीरदार और चित्रकूट-पति हृदयराम से भूषण की पूर्व ही घनिष्टता हो चुकी थी। उन्हीं के द्वारा रीवाँ की राजगद्दी के अवसर पर भूषण ने अवधूतसिंह के दरबार में प्रवेश किया था।

फिर सं० १७६८ वि० में पन्ना-नरेश छत्रसाल से युद्ध होने के अवसर पर भूषण के दर्शन होते हैं। इसके पश्चात् हृदयराम के साथ अवधूतसिंह के विजयोत्सव में भी वे फिर दिखलाई देते हैं।

हम बतला चुके हैं कि हृदयराम सुरकी की जागीर 'तरौंहा' के नाम से विख्यात थी। यह प्रान्त चित्रकूट के निकट होने के कारण सुरकी राजा चित्रकूट-पति कहे जाते थे। पन्ना-नरेश छत्रसाल ने सं० १७६० वि०† के लगभग रीवाँ राज्य तथा चित्रकूट पर अधिकार कर लिया था और सं० १७६४ वि० के लगभग वे चित्रकूट में ठहरे थे। अतः निश्चित है कि उस समय तक रीवाँ तथा चित्रकूट दोनों राज्यों पर उनका अधिकार था।

---

* 'इम्पीरियल गजेटियर' जिल्द २१, पृष्ठ १८२ और 'रीवाँ राज्य-दर्पण' का वंशवृक्ष, पृ० १।

† 'समालोचक' भाग ६, १, पृ० ६१।

सं० १७६८ वि० में दिल्ली-नरेश बहादुरशाह* की सहायता, हृदयराम और अवधूतसिंह की संयुक्त शक्ति और अवधूतसिंह के मामा प्रतापगढ़-नरेश के सहयोग से अन्त में रीवाँ-नरेश ने अपना राज्य वापस पाया था। इसी के परिणाम-स्वरूप हृदयराम को चित्रकूट की बीस लाख की जागीर रीवाँ राज्य की ओर से प्रदान की गई थी। 'रीवाँ राज्य दर्पण' में इस जागीर का स्पष्ट उल्लेख है।‡

संभव है कि महाकवि भूषण ने भी अपने उपाधिदाता के आग्रह से इस युद्ध में यथा-शक्ति सहायता प्रदान की हो। भूषण ने हृदयराम सुरकी को इस चढ़ाई के प्रस्थान-समय वीरों को शक्ति से भर देनेवाला और उनमें नवजीवन संचार करनेवाला निम्नांकित छंद सुनाया था—

"ग्राजि बंब चढ़ौ साजि बाजी जब कलाँ भूप,
    गाजी महाराज राजी 'भूषण' बखानते।
चंडी की-सहाय महि मण्डी तेजताई ऐन्ड,
    छन्डी रायराजा जिन दण्डी औनि आन ते॥
मंदीभूत रवि रजचंदीभूत हरधर,
    नन्दीभूत पति भौ अनन्दी अनुमान ते।
रंकीभूत दुवन करंकी भूत दिगदन्ती,
    पंकीभूत समुद सुलंकी के पयान ते।

इससे हम भूषण की प्रभावशालिनी रचना का अनुमान कर सकते हैं।

रीवाँ-नरेश के विजयोपलक्ष्य में जो दरबार हुआ था, उसमें भूषण ने यह छंद पढ़ा था—

"जा दिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह,
ता दिन दिगन्त लौं दुवन दाटियतु है।
प्रलै कैसे धाराधर धमकैं नगारा धूरि,
धारा तें समुद्रन की धारा पाटियतु है।
'भूषण' भनत भुवडोल को कहर तहाँ,
हहरत तेगा जिमि गज काटियतु है।
काँच से कचरि जात सेस के असेस फन,
कमठ की पीठि पै पिठी सी बाँटियतु है ॥१॥

कैसा ओजपूर्ण कवित्त है! इसे सुनकर कायरों के हृदय में भी उमङ्ग भर जाती है। भूषण की भाषा और भाव-व्यंजना अत्यन्त ओजस्विनी और उत्साहवर्द्धक तथा उनका शब्द-विन्यास वीर-रस के नितांत अनुकूल है। उनकी वर्णन-शैली भी अत्यंत प्रभावशालिनी थी। ऊपर की कविता में वीर-रस का जैसा परिपाक हुआ है, वैसा अन्यत्र शायद ही दृष्टिगोचर हो सकेगा।

राजपूताने का भ्रमण

बांधव दरबार से लौटने पर भूषण ने राजपूताने की यात्रा की थी। इस यात्रा का उद्देश्य राजपूत राज्यों को औरंगजेब के विरुद्ध उभाड़ना तथा उन्हें पारस्परिक सहानुभूति द्वारा

संघटित करना था। सर्वप्रथम भूषण जयपुर पहुँचे। वहाँ उन्होंने सवाई जयसिंह से भेंट की। उनके चित्त में स्वदेश-प्रेम, जात्युत्थान, मातृभूमि-उद्धार आदि भावों का उद्भावन करने के लिए उन्होंने कुछ दिन वहीं निवास किया। जयपुर-नरेश इसके पूर्व से ही राज्योद्धार में संलग्न थे। उन्होंने इनकी भावनाओं से प्रेरित होकर राजपूताने का नेतृत्व स्वीकार किया और वे राष्ट्रिय संघटन के लिए सतत उद्योगशील रहे।

भूषण ने सवाई जयसिंह के पूर्वजों तथा उनकी प्रशंसा में जो छन्द कहे हैं, उनमें से एक यहाँ उद्धृत है—

"अकबर पायो भगवन्त के तनै सों मान,
बहुरि जगतसिंह महा मरदाने सों।
'भूषण' त्यों पायो जहाँगीर महासिंह जू सों,
शाहजहाँ पायो जयसिंह जगजाने सों।
अब अवरङ्गजेब पायो रामसिंह जू सों,
औरो दिन-दिन कूरम के माने सों।
केते रावराजा मान पावैं पातसाहन सों,
पावै बादसाह मान मान के घराने सों॥"

इस छन्द में भूषण ने सवाई जयसिंह के पूर्वजों* की वीरत्वपूर्ण घटनाओं और उनके द्वारा मुगल वंश की महान् सेनाओं का बड़ा ही विशद स्पष्टीकरण किया है। साथ ही रावराजा बुधसिंह से जयपुर-नरेश की शत्रुता होने तथा औरंगजेब की दासता स्वीकार

करने के कारण उनकी निन्दा भी की गई है। इसमें हम भूषण के राजनीतिक चातुर्य, व्युत्पन्न-मतित्व एवं कार्य-कुशलता का अनुमान कर सकते हैं। महाराज मानसिंह का इसलिए भी उनके हृदय में सम्मान था कि वे हिन्दू-मुसलमान मेल के प्रबल पक्षपाती थे। सबसे प्रथम मुगल वंश से संबंध करने में वे ही अगुआ थे। साथ ही मुगल वंश को इनके आश्रित भी बतला दिया है। इसी शैली से उन्होंने राजाओं को अपने पक्ष में कर लिया था। सवाई जयसिंह की प्रशंसा में उन्होंने यह छन्द रचा था। अवलोकन कीजिये—

"भले भाई भासमान भासमान भान जाको,
भानत भिखारिन के भूरि भय जाल है।
भोगन को भोगी भोगी राज कैसी भाँति भुजा,
भारी भूमि भार के उबारन को ख्याल है।
भाव तो सभानि भूमि भामिनी को भरतार,
'भूषण' भरतखंड भरत भुआल है।
विभौ को भंडार औ भलाई को भवन भासै,
भाग भरे भाल जयसिंह भुवपाल है॥"

भूषण ने इस छंद में सवाई जयसिंह के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कार्यों, उनके प्रताप तथा ऐश्वर्यपूर्ण समृद्धि का बड़ा ही मार्मिक चित्र अंकित किया है।* वहाँ की वेधशालाओं, नगर-निर्माण, भिक्षुओं पर धन-राशि की अटूट वर्षा करना तथा रावराजा बूँदी-नरेश द्वारा दबा लिये गये जयपुर राज्य के पुनरुद्धार का उल्लेख कर भूषण ने सवाई जयसिंह की महत्ता को भली भाँति प्रदर्शित किया

* 'टाड राजस्थान' भाग २, पृ० ३४३-५।

है। उसकी सभाओं की शोभा आनन्द का उपभोग तथा शेषनाग से समता करनेवाली प्रबल भुजाओं का बड़ा ही विशद वर्णन है। साथ ही भरतखंड के संस्थापक शाकुन्तल भरत से उनकी तुलना कर छन्द की सार्थकता बहुत ही स्पष्ट कर दी है। कैसी प्रतिभा-सम्पन्न सार्थक रचना है! इन्हीं रचनाओं द्वारा भूषण ने राजाओं में ओज भर कर देश में राष्ट्रियता की प्रबल धारा बहा दी थी।

कुछ दिन जयपुर में निवास करने के बाद भूषण जोधपुर चले गये। तत्कालीन जोधपुर-नरेश की मनोवृत्ति भूषण के भावों के नितान्त प्रतिकूल थी। वे उस समय मुगल-राज्य की दरबार-दारी कर रहे थे। उनकी मनोवृत्ति बदलते न देख भूषण वहाँ से उदयपुर चले गये। राणा उदयपुर * ने उन्हें पूर्ण आश्वासन दिया और जयपुर-नरेश का साथ देने की प्रतिज्ञा की जिसका उन्होंने भली भाँति पालन किया।

जोधपुर नरेश के राष्ट्रिय आन्दोलन में सम्मिलित न होने के कारण उनके पिता जसवन्तसिंह की 'शिवराज-भूषण' में कड़ी भर्त्सना की गई है। भूषण उन्हें गीदड़ की पदवी तक देने में नहीं चूके हैं। यद्यपि वे भूषण के इष्टदेव शिवाजी के घनिष्ट मित्रों में थे। और उन्होंने उन्हें यथाशक्ति सहायता भी दी थी। इन सब बातों के होते हुए भी भूषण ने उनकी निन्दा कर सामयिक भावना को ही अधिक स्पष्ट कर दिया है। यथा—

"जाहिर है जग में जसवंत लियो गढ़सिंह में गीदड़ बानो।"+

इसके विपरीत राणा जयसिंह के राष्ट्रिय आन्दोलन में भाग

लेने के कारण ही, राणावंश वालों के प्रति भूषण ने सहानुभूति दिखलाते हुए लिखा है।—

"हिन्दु बचाय बचाय यही अमरेस चँदावत लौं कोइ टूटै।'

शि० भू० २०६

इसी प्रकार 'शिवराज भूषण' के छन्द २२६ में भी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। यथा—

"शिव सरजा सों जंग जुरि, चन्दावत रजवंत।
राव अमर जो अमर पुर, समर रही रजतंत॥"

इन घटनाओं से हम भूषण की राष्ट्रिय भावनाओं के वास्तविक स्वरूप का अनुमान कर सकते हैं। शिवाजी भी राणा वंश के थे। इसलिए भूषण के हृदय में राणा वंश की प्रतिष्ठा और भी अधिक थी। भूषण ने राणा उदयपुर की प्रशंसा में कुछ छन्द अवश्य रचे होंगे। क्योंकि उन्होंने राणा के दरबार में जाने का स्पष्ट उल्लेख किया है। परन्तु वे छन्द अभी तक अप्राप्त हैं।

राजपूताने की यात्रा से भूषण अपनी जन्म-भूमि वनपुर को लौट आये। कुछ दिन तक वहीं रहकर तत्कालीन स्थिति का निरीक्षण करते रहे। परन्तु उन्होंने वहाँ रहना सुरक्षित न समझा इसलिए वे 'चिंतामणि' और 'मतिराम' सहित हमीरपुर-नरेश की संरक्षता में त्रिविक्रमपुर (तिकमापुर) चले गये और तीनों वहीं अपनी-अपनी हवेलियाँ बनाकर सपरिवार रहने लगे। इन हवेलियों के भग्नावशेष उन महाकवियों की स्मृतियों को आज भी ताजा कर देते हैं।

दक्षिण की यात्रा

भूषण १२-१३ वर्ष तक उत्तरी भारत में राष्ट्रियता और संघटन का कार्य करते हुए शिवाजी के आदर्श पर समाज को जाग्रत

करते रहे। अब उनका ध्यान दक्षिण की ओर आकृष्ट हुआ और वे संवत् १७७० वि० के लगभग थोड़े से अनुचरों के साथ गोलकुंडा पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने कुतुबशाही राजकुमारों से भेंट की और उन्हें औरंगजेबी अत्याचारों का स्मरण दिलाकर मुगल वंश के विरुद्ध उत्तेजित किया।

इसके पश्चात् गोलकुंडा जा पहुँचे। वहाँ भी उन्होंने उसी नीति का अनुगमन कर आदिलशाह के वंशजों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया।

बीजापुर और गोलकुंडा दोनों शिया-राज्य थे और औरंगजेब सुन्नी था। अतः वह इन दोनों शिया-राज्यों को नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुला हुआ था। अन्त में उन्हें समाप्त करके ही उसने दम लिया था। भूषण ने इन दोनों शिया राज्यों को भी अपने पक्ष में करके दिल्ली साम्राज्य के अन्त करने का प्रबल उद्योग किया था। दक्षिण की यात्रा में उनका एक लक्ष्य यह भी था कि इन मुसलमानी राज्यों को भी राष्ट्र-संघटन में लिया जाय।

छत्रपति शाहू से भेंट

बीजापुर और गोलकुंडा होकर भूषण सितारा पहुँचे। सितारा-नगरी उस समय मरहठों की राजधानी थी और उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रही थी। यहाँ पहुँचकर भूषण ने अपने अनुचरों सहित एक विशाल राजकीय मंदिर में निवास किया। उस समय शाहू महाराज शिकार खेलने गये हुए थे। शिकार से लौट कर रात के समय संयोगवश शाहू उसी मंदिर में आ पहुँचे, जिसमें भूषण टिके हुए थे। शाहू और भूषण में बातचीत होने लगी। परन्तु भूषण को यह विदित न हो सका कि यह शाहू महाराज हैं। उत्तरी भारत में बहुत काल तक रहने के कारण शाहू हिन्दी काव्य

और साहित्य के बड़े मर्मज्ञ हो गये थे। कवि का परिचय पाकर उन्होंने कविता सुनने की अभिलाषा प्रकट की। भूषण ने कुशल-समाचार के अनन्तर शिवाजी की प्रशंसा में यह छन्द सुनाया—

"इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज है।
पौन वारिवाह पर शंभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुमदंड पर चीता मृगझुंड पर,
'भूषण' वितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ बंश पर शेर शिवराज है॥"

—शि० बा० २।

भूषण ने इस प्रकार शाहू को क्रमानुसार ५२ छंद सुनाये। इनमें से अधिकांश शिवाजी की प्रशंसा में थे। केवल पाँच छंद शाहू, हृदयराम सुरकी, बाजीराव पेशवा तथा महाराजा अवधूत-सिंह की प्रशंसा में भी सुनाये थे। इनमें से एक छंद जिसमें बाजी-राव की प्रशंसा की गई है, शाहू महाराज के शिकार खेलने के सम्बन्ध में है। इस से यह भी विदित होता है कि शाहू किन जानवरों का शिकार करके लाये थे। उस समय शिकार खेलते हुए उनके साथ बाजीराव पेशवा के भी होने की ध्वनि निकलती है। वह छंद यह है—

"सारस से सूबा कर बानक से साहिजादे,
मोर से मुगल मीर धीर में धँचै नहीं।
बगुला से बंगस बलूचिए बतक ऐसे,
काबिली कुलंग याते रन में रचै नहीं।
'भूषण' जू खेलत सितारे में शिकार साहू,
संभा को सुअन जाते दुवन सँचै नहीं।
बाजीराव बाज की चपेटैं चंगु चहूँ ओर।
तीतर तुरुक दिल्ली भीतर बचै नहीं।

—शि० बा० ४८।

शाहू महाराज महाकवि भूषण की ओजस्विनी वाणी के प्रवाह में ऐसे निमग्न हो गये थे, कि कविता सुनने से उनकी तृप्ति ही नहीं होती थी। उन्होंने कुछ और छंद सुनने की इच्छा प्रकट की। तब भूषण बोल उठे—"अब महाराज शाहू के लिए भी कुछ बचाकर रख छोड़ूँ कि आपको ही सब सुना दूँ।" यह सुनकर छत्रपति शाहू वहाँ से चल दिये और भूषण से प्रातः काल शाहू के दरबार में पधारने के लिए कहते गये।

दूसरे दिन नियत समय पर जब सज-धज के साथ भूषण शाहू महाराज के दरबार में पहुँचे, तो वहाँ गद्दी पर रातवाले ही व्यक्ति को बैठे देखकर वे दंग रह गये। उन्हें चकित देखकर शाहू महाराज ने कहा—"मैंने कल ही निश्चय कर लिया था कि आप मुझे जितने छंद सुनावेंगे उसी के अनुसार आप को पुरस्कार दूँगा। अतः आपको ५२ गाँव, ५२ हाथी, ५२ शिरोपाव और ५२ लाख रुपये इत्यादि पुरस्कार में दिये जाते हैं।"

भूषण ने इस पुरस्कार से पूर्ण संतोष प्रकट किया और वे

दरबारी कवि की भाँति वहीं रहने लगे। बहुत दिन वहाँ रहकर राष्ट्रिय साहित्य का अध्ययन और विचार-विनिमय करते रहे। इस काल में ही भूषण ने 'शिवराज भूषण' नामक ग्रंथ रचा, तथा फुटकर रचनाएँ भी करते रहे थे।

बाजीराव से भेंट

शाहू महाराज के दरबार में रहते हुए, भूषण की पेशवा बाजीराव से भी घनिष्टता हो गई थी। भूषण ने उनकी प्रशंसा में कई छंद सुनाये थे। ये छंद शाहू और बाजीराव की संयुक्त प्रशंसा के रूप में ही रचे गये थे। यह बात 'शिवा बावनी' के छंद नं० ४८, ४९ से प्रमाणित हो जाती है। छंद नं० ४९ निम्नलिखित है—

"बलख बखारे मुलतान लौं हहर पारे,
　　काबुल पुकारै कोऊ धरत न सार है।
रूम रूँदि डारै खुरासान खूँदि मारै,
　　खाक खादर लौं झारै ऐसी साहू की बहार है।
सक्खर लौं भक्खर लौं मक्कर लौं चले जात,
　　टक्कर लेवैया कोऊ बार है न पार है।
'भूषन' सिरोंज लौं परावने परत फेरि,
　　दिल्ली पर परत परंदन की छार है।"

इसी प्रकार 'शिवा बावनी' के छन्द नं० १५ का वर्णन शिवाजी के नाम पर होते हुए भी वह वास्तव में शाहू और बाजीराव से ही सम्बन्ध रखता है। क्योंकि ये घटनाएँ उन्हीं दोनों महानुभावों के समय में घटित हुई थीं।

"मालवा उज्जैन भनि 'भूषन' भेलास ऐन,
सहर सिरोंज लौं परावने परत हैं।
गोंडवानो तिलगानो फिरंगानो करनाट,
रुहिलानो रुहिलन हिए हहरत हैं।
साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि,
गढ़पति वीर तेऊ धीर न धरत हैं
बीजापुर गोलकुण्डा आगरा दिल्ली के कोट,
बाजे-बाजे रोज दरवाजे उघरत हैं ॥"

इन छन्दों में वर्णित सिरोंज की छावनी बाजीराव के ही नायकत्व में पड़ी थी। कुछ अन्य घटनाएँ भी शाहू के समय से सम्बन्धित हैं, जो शिवाजी के जीवन से सम्बन्ध रखती हुई बतलाई गई हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि भूषण की दृष्टि में मरहठों का अभ्युदय एवं उत्कर्ष शिवाजी के प्रताप के कारण हुआ था। ऐतिहासिक तथ्य भी इसी भावना को दृढ़ करता है। यही कारण है कि भूषण ने शाहू के समय की घटनाओं को भी शिवाजी से सम्बन्धित कर दिया है। 'शिवराज भूषण' के छन्द नं० २५० में भूषण ने "दिलीसहु पै किन जाहु बुलाये" कहकर यह दिखला दिया है कि 'शिवराज भूषण' की रचना करते हुए भी दिल्ली-नरेश का निमंत्रण मंत्री-द्वारा प्राप्त हो चुका था। इसके कुछ दिन पीछे ही वे दिल्ली की ओर चल पड़े थे। उस समय बूँदी-नरेश बुधसिंह दिल्ली-नरेश के दीवान थे। उन्हीं के द्वारा ये दरबार में उपस्थित हुए और बादशाह जहाँदारशाह की प्रशंसा में यह छन्द सुनाया।

"डंका के दिये तें दल डम्बर उमंड्यो,
उडमंड्यो उडुमंडल लौं खुर की गरद है।
जहाँदरशाह बहादुर के चढ़त पैंड़,
पैंड़ पै मढ़त मारू राग बम्ब नद्द है।
'भूपन' भनत घने घुम्मत हरौल वारे,
किम्मत अमोल वहु हिम्मत दुरद है।
हद्दन छपद्द महिमद्द फरनद्द होत,
कद्द न मनद्द से जलद्द हल दद्द है।"*

'शिवराज भूषण' के छंद नं० २५० में बूँदी-नरेश का उल्लेख नहीं है। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक भूषण बूँदी-नरेश (जो जहाँदारशाह के मंत्री थे) के दरबार में नहीं पहुँचे थे। वे सितारा से लौटकर दिल्ली गये थे। तभी दिल्ली और बूँदी-नरेश से मिले थे।

दो-एक सज्जनों ने उपर्युक्त छन्द औरंगज़ेब के बड़े भाई "दाराशाह" की प्रशंसा में रचा हुआ बतलाया है। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि 'नवीन'-कृत 'प्रबोध-रस-सुधा-सर' में 'जहाँदारशाह' के स्थान में "जहाँदाराशाह" पाठ मिलता है। उक्त ग्रंथ मेरा देखा हुआ है। उसमें "जहाँदारा शाह" पाठ अवश्य है, परंतु इसमें मुझे लेखक की भूल प्रतीत होती है। लिपिकर्ता की भूल मानने के निम्नलिखित कारण हैं।

(१) दाराशाह दिल्ली का बादशाह कभी नहीं रहा, परंतु भूषण ने 'शिवराज भूषण' के छंद नं० २५० में "दिलीसहु पै किन जाहु बुलाये" कहकर जहाँदारशाह द्वारा बुलाये जाने का उल्लेख किया है।

* 'भूषण ग्रन्थावली' फुटकर छंद, पृष्ठ १२४।

(२) इस छंद में 'जहाँ' शब्द नाम के अंश रूप में साभिप्राय होकर व्यवहृत हुआ है। यदि जहाँ शब्द क्रिया-विशेषण के रूप में होता, तो वह वहाँ शब्द की अपेक्षा रखनेवाला होना चाहिए था। यथा—

"जहाँ जाय भूखा, तहाँ परै सूखा।"

तथा—

"जहँ-जहँ जाइँ कुवँर वर दोऊ,
तहँ-तहँ चितव चकित सव कोऊ।"

इससे स्पष्ट होता है कि यह 'जहाँ' शब्द नामवाचक रूप में ही प्रयुक्त हुआ है।

(३) कुछ महानुभाव इस 'जहाँ' शब्द को भरती का शब्द कहते हैं। परन्तु ऐसा कहते समय वे यह भूल जाते हैं कि भूषण की रचना में भरती के शब्द नहीं रहते। उनकी रचना बड़ी ओजस्विनी तथा सार्थक होती है।

समय सं० १७६९ वि० के निर्विवाद है। जहाँदारशाह हिन्दुओं के साथ पूर्ण सहानुभूति रखता था। दिल्ली का राज्य उसको हिन्दुओं की सहायता से ही मिला था। उसका प्रधान मंत्री राय-राजा बुधसिंह भी हिंदू ही था। अतः हस्त-लिखित 'प्रबोध रस-सुधासार' (जो छत्रपुर पुस्तकालय में सुरक्षित है) में वर्णित 'जहाँदारशाह' दिल्ली का बादशाह 'जहाँदारशाह' ही है। उसी की प्रशंसा में भूषण ने उक्त छन्द कहा था।

बूँदी-नरेश बुधसिंह

भूषण जिस समय 'शिवराज भूषण' की रचना कर रहे थे, उसी समय उन्हें दिल्लीपति जहाँदारशाह का निमंत्रण रावराजा बुधसिंह द्वारा मिला था। भूषण ने उस समय दो छंद 'बूँदी-नरेश' की प्रशंसा में भी कहे थे। वे ये हैं—

"जुद्ध को चढ़त दल बुद्ध को जगत नव,
लंक लौं अलंकन के पतरे पतारे से।
'भूषण' भनत भारे घूमत गयंद कारे,
बाजत नगारे जात अरि उर द्वारे से।
धँसि कै धरा के गाढ़े कोल के कड़ाके टाढ़े,
आवत लगारे दिगपालन तमारे से।

* 'माधुरी' आषाढ़, संवत् १९८२ और 'इलियट की हिस्ट्री' जिल्द ७ पृ० ४८२ और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' भाग ६, अङ्क १।

† 'टाड राजस्थान' भाग १ पृ० ३६०-३६४। बुधसिंह का समय १७६५ वि० से १७९८ वि० तक माना जाता है।

(२) इस छंद में 'जहाँ' शब्द नाम के अंश रूप में साभिप्राय होकर व्यवहृत हुआ है। यदि जहाँ शब्द क्रिया-विशेषण के रूप में होता, तो वह वहाँ शब्द की अपेक्षा रखनेवाला होना चाहिए था। यथा—

"जहाँ जाय भूखा, तहाँ परै सूखा।"

तथा—

"जहँ-जहँ जाइँ कुअँर वर दोऊ,
तहँ-तहँ चितव चकित सब कोऊ।"

इससे स्पष्ट होता है कि यह 'जहाँ' शब्द नामवाचक रूप में ही प्रयुक्त हुआ है।

(३) कुछ महानुभाव इस 'जहाँ' शब्द को भरती का शब्द कहते हैं। परन्तु ऐसा कहते समय वे यह भूल जाते हैं कि भूषण की रचना में भरती के शब्द नहीं रहते। उनकी रचना बड़ी ओजस्विनी तथा सार्थक होती है।

(४) 'जहाँ दाराशाह' में हाँ, दा, रा, और शा—ये चार अक्षर दीर्घ रूप में आये हैं। मनहरण दण्डक में चार दीर्घ अक्षर एक साथ आने से प्रवाह में बाधा पड़ती है और उच्चारण सुगमतापूर्वक नहीं होता। इस प्रकार दण्डक-पद्धति के अनुसार इसमें 'जहाँदारशाह' ही होना चाहिए। चार दीर्घ मात्राओं का प्रयोग कवित्त में दोष भी माना जाता है। अतः यह शब्द 'जहाँदारशाह' ही है।

(५) भूषण के सब आश्रयदाता 'दारा शाह' के बहुत पीछे हुए हैं। उनका एक भी आश्रयदाता दारा का समकालीन न था।

अतः यह निश्चित है कि भूषण ने उक्त छन्द दिल्ली-नरेश जहाँदारशाह की प्रशंसा में ही रचा था। मुगल इतिहास में उसका

समय सं० १७६१ वि० के निर्णीत है। जहाँदारशाह हिन्दुओं के साथ पूर्ण सहानुभूति रखता था। दिल्ली का राज्य इसको हिन्दुओं की सहायता से ही मिला था। उसका प्रधान मंत्री राव-राजा बुधसिंह भी हिन्दू ही था। अतः हस्त-लिखित 'प्रबोध रस-सुधाकर' (जो भरतपुर पुस्तकालय में सुरक्षित है) में वर्णित 'जहाँदारशाह' दिल्ली का बादशाह 'जहाँदारशाह' ही है। इसी की प्रशंसा में भूषण ने उक्त छन्द कहा था।

बूँदी-नरेश बुधसिंह

भूषण जिस समय 'शिवराज भूषण' की रचना कर रहे थे, उसी समय उन्हें दिल्लीपति जहाँदारशाह का निमंत्रण रावराजा बुधसिंह द्वारा मिला था। भूषण ने उस समय दो छंद बूँदी-नरेश * की प्रशंसा में भी कहे थे। वे ये हैं—

"जुद्ध को चढ़त दल बुद्ध को जगत नप,
नंद लौं अनंदन के पतरे पतारे से।
'भूषण' भनत मदि घूमत गयंद कारे,
बाजत नगारे जात अरि उर फारे से।
धँसि कै धरा के गाढ़ कोल के कराके डाढ़,
आवत नगारे दिगपालन तमारे से।

---

* 'माधुरी' आषाढ़, संवत् १९८१ और 'इलियट की हिस्ट्री' जिल्द ७ पृ० ५६२ और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' भाग ६, अङ्क १।

† 'टाड राजस्थान' भाग १ पृ० ३९०-३६४।

बुधसिंह का समय १७६५ वि० से १७९८ वि० तक माना जाता है।

फेन से फनीस फन फूटि विप छूटि जात,
उछरि उछरि सिंधु पुरवे फुआरे से ॥१॥
रहत अछक पै मिटे न धक पीवन की,
निपट जुनागी डर काहू तैं डरै नहीं।
भोजन बनावै नित चोखे खानखानन के,
श्रोनित पचावै तऊ उदर भरै नहीं।
उगलत आसौ तऊ सुकल समर बीच,
राजै राव बुद्ध कर विमुख परै नहीं।
तेग या तिहारी मतवारी है अछक तौलौं,
जौ लौं गजराजन की गजक करै नहीं ॥२॥

इन छंदों से स्पष्ट है कि उस समय दिल्ली के मुसलमान सरदारों से रावराजा का विरोध चल रहा था, तथापि बादशाह रावराजा जी के पक्ष में था।

रावराजा ज़ी बड़े कविता-प्रेमी थे और कवियों का उचित मान करते थे। उनका दरबार कवियों से भरा रहता था। अनेक कवियों ने उनका प्रशंसात्मक वर्णन किया है।

मैंडू-नरेश राजा अनिरुद्धसिंह

दिल्ली से लौटते हुए भूषण मैंडू (जिला अलीगढ़) के राजा अनिरुद्धसिंह ❀ से मिले थे। वहाँ भी उनका बहुत सम्मान हुआ था। उन्होंने अनिरुद्धसिंह की प्रशंसा में निम्नलिखित छंद बनाया था।—

(२) राष्ट्रिय सङ्घटन के लिए वे छोटे-बड़े सभी दरबारों में बराबर आते-जाते रहते थे। वे सब भूषण को अपने दरबार में बुलाने के लिए उत्सुक रहते थे।

(३) राजा अनिरुद्धसिंह के दरबारी कवि भूषण के संसार से चले जाने के १०० वर्ष पश्चात् भी उनकी महत्ता का अनुमान कर बड़े गौरव के साथ अपने काव्य में उनका उल्लेख किया करते थे।

असोथर-नरेश भगवन्तराय खीची

भूषण सं० १७७० वि० के लगभग असोथर-नरेश भगवंतराय खीची* के दरबार में पहुँचे थे। शिवाजी की नीति पर चलकर ही खीची ने अपने बाहु-बल द्वारा एक छोटी सी जागीर से एक बृहत् राज्य की स्थापना कर ली थी। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि इन्होंने ४८ युद्धों में विजय प्राप्त की थी। मध्य देश (युक्तप्रांत) में उस समय इनकी वीरता की धाक जमी हुई थी। इन्होंने कोड़ा-जहानाबाद के मुसलमान सूबेदार को मारकर उसकी लड़की से अपने पुत्र रूपसिंह का विवाह कर दिया था। भूषण के हृदय में खीची के प्रति अत्यधिक आदर और प्रेम था। वे उनके दरबार में बहुधा आया-जाया करते तथा समय-समय पर सलाह-मशविरा किया करते थे। भूषण की समाज-सुधारक राजनीतिक योजना को असली रूप देने में खीची भी सदैव अग्रसर रहता था। अतः भूषण और खीची में स्वाभाविक स्नेह-बंधन हो गया था। खीची के निधन † पर भूषण

---

* 'भगवन्तराय रासा' पृ० १ और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', भाग ५ अङ्क १।

† 'डिस्ट्रिक्ट गजेटियर' यू० पी० जिला फतहपुर, के पृष्ठ १५७ पर भगवन्तराय खीची की मृत्यु सं० १८०२ वि० (सन् १७४५) लिखी है, जो अशुद्ध प्रतीत होती है।

इन छंदों से हम खीची की भावना का कुछ परिचय पा सकते हैं। इनमें राष्ट्रियता का स्वरूप भी प्रत्यक्ष हो जाता है। संभव है भूषण ने भगवंतराय खीची की प्रशंसा में कुछ छंद और भी कहे हों, परंतु वे अभी तक अप्राप्त हैं।

'समालोचक'-सम्पादक पं० कृष्णविहारी मिश्र ने कल्पना के आधार तथा पोलियोग्राफी का सहारा लेकर दूसरे छंद को भूधर-कृत बतलाया है। उनका अनुमान है कि किसी लेखक ने लिपि-दोष के कारण इसे 'भूधर' के स्थान पर 'भूषण' पढ़ लिया होगा। उनके विचार में इसकी भाषा 'भूधर' से मिलती हुई है। उन्होंने पहले छंद को भी भूधर-रचित ही माना था और मिलान के लिए एक छंद भी उद्धृत किया था।❀ किंतु बाद में दूसरे छंद के सम्बंध में उन्होंने अपना मत बदल दिया। 'समालोचक' के दूसरे अंक में इस छंद को 'सारंग' कविकृत बतलाया है। आपका कथन है कि "सारंग" कवि भवानीसिंह खीची के आश्रित थे और उक्त छंद की रचना भगवंतराय के लिए नहीं, बल्कि उनके भतीजे भवानीसिंह के लिए हुई थी। आगे चलकर वे लिखते हैं—आज से ४० वर्ष पूर्व जिस 'शिवसिंह सरोज' की रचना हुई थी, उसके पृष्ठ ४६१ पर 'सारंग' कवि के लिए लिखा है "ये कवि राजा भवानी सिंह खीची, (भगवंतराय के भतीजे) के पास असोथर में रहा करते थे।" पृष्ठ ३२७–८ में विवादास्पद छंद भी दिया है, जो इस प्रकार है—

"तंगन समेत काटि विहित मतंगन सौं,
रुधिर सौं रंग रण-मण्डल में भरिगो।

❀ 'समालोचक' भाग १, अंक १ और २।

'पत्रिका' के पृष्ठ १११ पर लिखा है—"जब मोहम्मदशाह बादशाह ने अवध के नवाब बुर्हानुल मुल्क (सआदत खां) को इस परगने का अधिकार दे दिया, तब वह ससैन्य शांति-स्थापन के लिए आया। भगवन्तसिंह यह समाचार सुनकर तीस सहस्र सवारों के साथ गाजीपुर (फतहपुर) के दुर्ग से निकल कर नवाब की सेना के सामने जा डटे। नवाब के आक्रमण से कुछ क्षति उठाकर, उसका रुख बचाते हुए वे अबूतुराब खां के अधीनस्थ हरावल पर टूट पड़े। उस अफसर को मारकर तथा हरावल को छिन्न-भिन्न कर भगवन्तराय नवाब की शरीर-रक्षक सेना पर जा पड़े।"

उसी 'पत्रिका' के पृष्ठ ११४ के फुटनोट में लिखा है—सहादत खाँ (अवध के प्रथम नवाब बुर्हानुलमुल्क 'सआदत खाँ' का नाम 'सहादति खान' सादति खाँ आदि भी रखा गया है।)

यह तो हुआ मुसलमानी तवारीख का ऐतिहासिक वर्णन अब रासे में भी देखिये सदानंद कवि क्या लिखते हैं।—

"साह मोहम्मद छत्रपति, दान कृपान जहान।
सूबा कीन्हौं अवध कौ, विदित सहादति खान॥

और—

"चलि फौज सादति खान की गढ़ छोड़ि के गाजी भगे।
भजि जात दिग्गज डोल परवत सार सों अहि यों जगे।"
"तब जाइ कै तहहीं जुरे जहँ खेत बैरिन कौं रुचै।
उततैं चल्यौ भगवन्त जू रन आजु तो हमसौं सचै।"

इससे स्पष्ट है कि कल्पित भावनाएँ किस प्रकार सत्य के सामने छिन्न-भिन्न हो जाती हैं।

वास्तव में इस युद्ध का न तो भवानीसिंह से कोई सम्बन्ध था और न वे दोनों छन्द 'भूधर' तथा 'सारंग' कृत ही हैं। इसके विपरीत निश्चित रूप से वे दोनों छन्द भूषण-कृत ही हैं।

छत्रपति छत्रसाल की सहायता

महाराज छत्रसाल बुंदेला ने शिवाजी की शिक्षा मानकर स्वराज्य की स्थापना की थी। अनवरत युद्ध करते हुए उन्होंने एक छोटी सी जागीर से अपना राज्य बहुत विस्तृत कर लिया था। सं० १७८० वि० के लगभग मोहम्मद खाँ बंगस ने उक्त पन्ना-नरेश छत्रपति छत्रसाल पर बड़े वेग से आक्रमण कर दिया। महाराजा छत्रसाल उस समय बहुत वृद्ध हो गये थे। उनके पुत्रों में कोई भी सुयोग्य सेनापति न था, अतः वे इस आक्रमण को न सम्हाल सके। उन्होंने उस समय भूषण को बुलाया और उनसे परामर्श करके उन्हीं को बाजीराव पेशवा के पास सहायतार्थ भेजा। भूषण ने छत्रसाल की ओर से पेशवा से यह प्रार्थना की थी—

"जो गति ग्राह-गजेन्द्र की, सो गति मेरी आज।
बाजी जात बुँदेल की, राखौ बाजी लाज ॥"

अन्त में भूषण ने महाराज शाहू और बाजीराव पेशवा को सहायता देने के लिए राजी कर लिया। मरहठों की एक मँजी-मँजाई सेना लेकर पेशवा ने उत्तरी भारत की ओर प्रस्थान किया। इस चढ़ाई के अवसर पर भूषण ने छत्रपति शाहू और बाजीराव पेशवा की प्रशंसा में यह छन्द सुनाया था—

"साजि दल सहज सितारा महाराज चलै,
बाजत नगारा पड़ैं धाराधर साथ से।
राव उमराव राना देश-देश पति भागे,
तजि-तजि गढ़न गढ़ोई दसमाथ से।
पैग पैग होत भारी डावाँडोल भुवि गोल,
पैग पैग होत दिग्ग मैंगल अनाथ से।
उलटत पलटत गिरत भुकत उभकत
शेषफन वेद-पाठिन के हाथ से॥"

इसी दौरान में भूषण ने बाजीराव पेशवा के छोटे भाई चिमना जी (चिन्तामणि) से भेंट की थी और इनकी प्रशंसा में निम्न-लिखित छंद सुनाया था—

"सक्र जिमि सैल पर अर्क तम फैल पर,
बिघन की रैल पर लम्बोदर लेखिए।
राम दसकंध पर भीम जरासंध पर,
भूषण ज्यों सिंधु पर कुंभज बिसेखिए।
हर ज्यों अनंग पर गरुड़ भुजंग पर,
कौरव के अंग पर पारथ ज्यों पेखिए।
बाज ज्यों विहंग पर सिंह ज्यों मतंग पर,
म्लेच्छ चतरंग पर 'चिन्तामणि' देखिए।

बँगस-युद्ध

मरहठी सेना ने उत्तरी भारत में आकर झाँसी में डेरे डाले। फिर व्यूह की रचना कर एक ओर से मरहठों ने और दूसरी ओर से बुँदेलों ने मोहम्मद खाँ बंगस पर हल्ला बोल दिया। बंगस घबड़ा कर मैदान छोड़ भागा और विजयश्री बाजीराव पेशवा के हाथ लगी।

भूषण ने बंगस-विजय के पश्चात् बाजीराव पेशवा से भेंट की और उनकी प्रशंसा में यह छंद सुनाया—

"बाजे-बाजे राजे से निवाजे हैं नजरि करि,
बाजे-बाजे राजे काढ़ि काटे असिमत्ता सों।
बाँके-बाँके सूबा नाल बंदी दै सलाह करैं,
बाँके-बाँके सूबा करे एक-एक लत्ता सों।
गाढ़े-गाढ़े गढ़पति काढ़े राम द्वार दै-दै,
गाढ़े-गाढ़े गढ़पति आने तरे कत्ता सों।
बाजीराव गाजी ने उबारयो आइ छत्रसाल,
आमिल बिठायो बल करिकै चकत्ता सों॥"

शि० भू०, फुटकर छन्द ४१।

युद्ध-समाप्ति के अनन्तर महाराज छत्रसाल ने भूषण की सलाह से अपनी मुसलमान वेश्या से उत्पन्न कन्या मस्तानी का विवाह बाजीराव पेशवा से कर दिया। मस्तानी के विषय में प्रसिद्ध है कि वह एक वीराङ्गना थी। उसकी सुन्दरता की प्रशंसा उस समय सारे भारतवर्ष में फैली हुई थी। शरीर की गठन सुडौल और रूप-लावण्य में अद्वितीय थी। वह शस्त्र-चालन, गान-विद्या एवं

चित्रकला आदि गुणों में भी बड़ी दक्ष थी। उसका स्वभाव सरल और वाणी मधुर थी। वह अत्यन्त व्यवहार-कुशला थी। पेशवा ने ऐसे रमणी-रत्न को पाकर अपने को कृत-कृत्य समझा। वह बहुधा पेशवा के साथ युद्धों में भी जाती और उन्हें सैन्य संचालन में सहायता देती थी। तथापि महाराष्ट्र ब्राह्मणों ने इस विवाह को घृणा की दृष्टि से देखा और समाज से निषिद्ध ठहराया। इसका परिणाम यह हुआ है कि उसकी सन्तान मुसलमान होकर ही निर्वाह कर सकी।

इसके पश्चात् पेशवा बाजीराव को पूना के लिए विदा करके भूषण अपने निवास-स्थान तिकवापुर लौट गये।

इससे स्पष्ट है कि भूषण जन्म भर राष्ट्रोद्धार करते तथा देश और समाज में राष्ट्रीय भाव फैलाते रहे। वे इस हेतु से समय-समय पर सितारा, पूना, पन्ना, जयपुर, असोथर और रीवां आदि दरबारों में बराबर आते-जाते रहे।

महाराजा छत्रसाल से भेंट

महाराजा छत्रसाल ने भूषण के उपाधिदाता और आश्रय-दाता चित्रकूटपति हृदयराम सुरकी तथा रीवाँ-नरेश अवधूत-सिंह का राज्य छीनकर अपने अधिकार में कर लिया था। इससे भूषण उनसे अत्यन्त असंतुष्ट थे। यही कारण था कि वे बुंदेल-खंड-वासी होते हुए भी कभी बुंदेला छत्रसाल पन्ना-नरेश से न मिले थे। परन्तु छत्रसाल पर आपत्ति आते ही वे उनकी सहायता के लिए तुरंत दौड़ पड़े थे और उन्होंने बाजीराव पेशवा से सहायता दिलवा कर बुंदेलखंड को अत्याचारी शत्रुओं से सुरक्षित करवा दिया था। भारतीय इतिहास में उनकी राष्ट्रीय

भावना, उत्कृष्ट राजनीति एवं उदारता के व्यवहार का उदाहरण मिलना कठिन है।

छत्रसाल के हृदय पर भूषण की इस उदारता और राजनीति का गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने भूषण को अपने-दरबार में बुलाया। भूषण ठाट-बाट से अपने नाती को लेकर पन्ना पहुँचे। सूचना मिलने पर महाराजा छत्रसाल स्वयं पेशवाई के लिए चल दिये। भूषण पालकी पर सवार थे। उनका नाती घोड़े पर सवार पालकी के आगे-आगे चल रहा था। अन्य कई कवि, घुड़सवार, नौकर-चाकर आदि साथ-साथ जा रहे थे। पास पहुँचते ही महाराजा छत्रसाल हाथी से उतर पड़े। उन्होंने भूषण के नाती को हाथी पर सवार करा दिया और स्वयं पालकी के एक कहार को हटा कर उसकी जगह लग गये। ज्योंही यह वृत्तांत भूषण को ज्ञात हुआ, वे तुरंत पालकी से कूद पड़े और 'बस-बस' कहते हुए महाराजा छत्रसाल की प्रशंसा में यह छन्द सुनाया—

"नाती को हाथी दियो, जा पै ढुरकत ढाल।
साहू के जस-कलस पै, धुज बाँधी छत्रसाल॥

राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ौ,
गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुर्जन करत बाहु ख्याल को।
साजि-साजि गज तुरी पैदरि कतार दीन्हें,
'भूषन' भनत ऐसो दीन-प्रतिपाल को?

और राव-राजा एक मन में न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को?

इस प्रकार इन्होंने क्रमशः दस-ग्यारह कवित्त सुनाये। फिर दोनो गले मिले। पन्ना दरबार में भूषण बहुत दिन तक रहे। इस प्रकार इनका पारस्परिक समागम आनंद का अनुभव करता रहा। इन छंदों की रचना अत्यंत ओजपूर्ण एवं वीर रस से आप्लावित है। इस कोटि के छंद अन्यत्र तो मिलेंगे ही नहीं, ये भूषण की चोटी के छंदों में हैं। भूषण की महानुभावता ही उनको इतना आदर और अतुलनीय ऐश्वर्य देने में सफल हुई थी। छत्रसाल के यहाँ भूषण को जैसा सम्मान मिला था, वैसा संभवतः संसार के किसी कवि को कहीं नसीब नहीं हुआ। और यह उनकी उदारता एवं योग्यता का पुरस्कार था।

आश्रयदाताओं की सूची

यहाँ पर भूषण के आश्रयदाताओं की तालिका उनके राज्य-काल सहित दी जाती है। इससे भूषण का समय समझने में सुगमता होगी।

१—चित्रकूटपति हृदयराम सुरकी, सं० १७५० विक्रमी के लग-भग।*

२— कुमाऊँ नरेश उद्योतचंद्र, सं० १७११ से १७५५ वि० तक।†

३ श्रीनगर-नरेश फतहशाह, १७४१ वि० से १७७३ वि० तक।‡

---

* 'सुधा' वर्ष २, खंड १ संख्या ५, पृ० ५३२।

† 'कुमाऊँ का इतिहास' पृ० २६६।

‡ 'गढ़वाल-गजेटियर' पृ० १८८–८९।

४ - रीवाँ-नरेश, अवधूतसिंह, सं० १७५७ वि० से १८१२ वि० तक। *

५—जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह, सं० १७५६ वि० से १८१२ वि० तक। †

६—सितारा-नरेश छत्रिपति शाहू, सं० १७६५ वि० से १८०५ वि० तक। ‡

७—बूँदी-नरेश रावराजा बुधसिंह, सं० १७६४ से १७६८ वि० तक। ⊙

८—दिल्ली-नरेश जहाँदारशाह, सं० १७६६ वि० ∟

९- मैंडू-नरेश अनिरुद्धसिंह पौरच, सं० १७७० वि० के लगभग। △

१०— असोथर-नरेश भगवन्तराय खीची, सं० १७७० वि० से १७९२ वि० तक। ∠

---

* 'इम्पीरियल गज़ेटियर' जिल्द २१ पृ० १८२ और 'रीवाँ राज्य दर्पण' का वंश-वृक्ष।

† 'टाड राजस्थान' भाग १ पृ० २८८-२९८।

‡ 'पारसनीस का इतिहास' भाग १, पृ० ११७ और २०००।

⊙ 'टाड राजस्थान' पृ० ३९०-३९४।

∟ 'माधुरी' आषाढ़ सं० १९८१। 'इलियट् हिस्ट्री' जिल्द ७ पृ० ४६२ तथा 'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका भाग ६, संख्या १।

△ 'अलीगढ़-गजेटियर' का इतिहास-भाग तथा 'माधुरी' चैत्र सं० १९८० वि०।

∠ 'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका भाग १ अंक १ और 'भगवंतराय रासा' पृ० १।

११—बाजीराव पेशवा सं० १७७७ वि० से १७९७ वि० तक।*

१२—चिमनाजी (चिन्तामणि) सं० १७८० वि० के लगभग।†

१३—चित्रकूटपति बलवन्तराव मुरकी, सं० १७८० वि० के लगभग।‡

१४—पन्ना-नरेश छत्रसाल, सं० १७२८ वि० से १७९१ वि० तक।⊙



---

* 'मराठा पीपिल' पृ० २६२ और उपकृत 'मराठा इतिहास' भाग १ पृ० ७५६।

† ग्रांट डफ कृत 'मराठा इतिहास' भाग १, पृ० ४२७ और ५०३ तथा भाग २ पृ० ८५६।

‡ 'सुधा', वर्ष ३ खंड १, सं० ५ पृ० ५३०।

⊙ छत्रसाल का जीवन चरित्र, साहित्य-भवन प्रयाग से प्रकाशित तथा 'छत्र प्रकाश'।

५—भूषण और शिवाजी

भूषण के जितने आश्रयदाता हुए हैं, वे सब शिवाजी की मृत्यु के २८-३० वर्ष पीछे ही रंगस्थली पर आते हैं, शिवाजी के समय में नहीं। भूषण की उपाधि देनेवाले हृदयराम का समय भी सं० १७५० के पीछे ही पड़ता है, पहले कदापि नहीं। भूषण* का जन्म ही शिवाजी के मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् हुआ है। फिर उनका शिवाजी के दरबार में रहना तो बहुत दूर की बात है। तब यह प्रश्न होता है कि भूषण ने शिवाजी की भूरि-भूरि प्रशंसा करके व्यर्थ ही पोथे के पोथे क्यों रच डाले ?

इसका एक प्रधान कारण है। वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है जिस समय उत्तर भारत के राजपूत शक्ति-शून्य हो रहे थे, उस समय शिवाजी ही एक ऐसी सत्ता थे, जिन्होंने औरंगजेबी अत्याचारों से राष्ट्र तथा जाति की रक्षा की थी, तथा स्वराज्य की स्थापना कर राष्ट्रोद्धार किया था। इसीलिए भूषण ने उन्हें ईश्वर के अवतार रूप में चित्रित किया है। 'शिवराज-भूषण' में पचासों छन्द ऐसे मिलेंगे जिनमें शिवाजी को ईश्वरावतार, देवत्व प्राप्त अथवा राष्ट्र-धर्म का उद्धारक कहा गया है। शिवाजी गो, ब्राह्मण, राष्ट्र, जाति और धर्म के रक्षक थे। अतः उन्हें साक्षात शिव और विष्णु का अवतार माना गया है। तत्सम्बन्धी कुछ उदाहरण ये हैं—

---

* 'शिवसिंह सरोज' पृ० ४४६।

"दशरथ जू के राम भे, बसुदेव के गोपाल।
सोई प्रगटे साहि के, श्री शिवराज भुआल॥"
शि० भू० ११।

"तेरे ही भुजन पर भूतल को भार, अरु,
कहिबे को शेष दिगनाग हिमाचल है।
तेरो अवतार जग पोषन भरनहार,
कछु करतार को न तामधि अमल है।
साहिन में सरजा समत्थ शिवराज, कवि-
'भूषन' कहत जीबो तेरोई सफल है।
तेरो करवाल करै म्लेच्छन को काल
बिनु काज होत काल बदनाम धरातल है।"
शि० भू० ८७।

"इन्द्र को अनुज तें उपेन्द्र अवतार याते,
तेरो बाहु बल लै सलाह साधियतु है।
शि० भू० १०३

इसी प्रकार—

"तुम शिवराज ब्रजराज अवतार आजु,
तुमहीं जगत काज पोषत भरत हौ।

ईश्वरीय प्रकोप से बचाव के लिए वे कहते हैं:—

"और बाँभननि देखि करत सुदामा सुधि,
मोहिं देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ।
शि० भू० ७५

इस छन्द में भूषण ने शिवाजी को कृष्ण का अवतार बतलाते हुए भृगु और विष्णु की घटना की ओर संकेत किया है तथा प्रसन्नता के साथ समाज के उत्थान की प्रार्थना की है।

फिर 'शिवराज भूषण' के छन्द १४५ में—

"यक्कइ गयंद यक्कइ तुंरग
किमि सुरपति सरिवर करहि।"

कहकर शिवाजी को इन्द्र से भी बड़ा बतलाया गया है। इससे भी उत्कृष्ट रूप में भूषण कहते हैं—

"सीता संग सोहत सुलच्छन सहाय जाके,
सरजा शिवाजी राम ही कौ अवतार है।"
शि० भू० १६६।

यहाँ शिवाजी को स्पष्ट रूप से राम का अवतार बतलाया गया है।

नीचे के छन्द में भी भूषण ने शिवाजी को हरि का अवतार माना है।

"ब्रह्म रचै पुरुषोत्तम पोषत,
संकर स्टष्टि सँहारन हारे।
तू हरि को अवतार सिवा नृप,
काज सँवारै सबै हरि वारे।
शि० भू० २२८।

"दारुन दहत हिरनाकुस बिदारिबे कों,
भयो नरसिंह रूप तेज बिकरार है।
'भूषन' भनत त्योंही रावन के मारिबे को,
रामचन्द्र भयो रघुकुल सरदार है।

कंस के कुटिल बल बंसन विधुंसिबे कौं,
भयो यदुराय वसुदेव को कुमार है।
पृथ्वी पुरहूत साहि के सपूत सिवराज,
म्लेच्छन के मारिबे कों तेरो अवतार है।"

शि० भू० ३५०।

इस छन्द में नृसिंह रूप को 'तेजविकरार', राम को 'रघुकुल-सरदार' और कृष्ण को 'वसुदेव कुमार' कहकर तथा शिवाजी को 'अवतार' मानकर चारों की साम्यावस्था का बड़ा ही सुन्दर विश्लेषण किया गया है। इस प्रकार के अनेक छंद जिनमें भूषण ने शिवाजी को स्पष्टतः ईश्वर का अवतार माना है, उदाहरण-स्वरूप दिये जा सकते हैं। शिवाजी की अवतार-रूप में स्थिरता बनी रहने के लिए आशीर्वाद देते हुए भूषण ने अपने ग्रंथ 'शिवराज-भूषण' के अंत में लिखा है—

"एक प्रभुता को धाम सजे तीनों वेद काम,
रहै पंच आनन षड़ानन सरबदा।
सातो बार आठौ जाम जाचक निवाजैनव,
अवतार थिर राजै कृपान हरि गदा।
'शिवराज-भूषण' अटल रहै तौलौं जौलौं,
तृदस भुवन सब राजै औ नरमदा।
साहितनै साहसिक भौंसिला सुरज वंस,
दासरथि राज तौलौं सरजा वीर सदा।

शि० भू० ३८१।

न्तरिक स्वरूप का अनुभव करके, भूषण ने राजाओं को ही अपना केन्द्र निर्धारित करते हुए उन्हीं के द्वारा जन साधारण को संघटित करने का उद्योग किया था। इसी दृष्टि से उन्होंने उत्तरी भारत में सवाई जयसिंह और दक्षिणी भारत में छत्रपति शाहू और बाजीराव पेशवा को जनता का नेतृत्व ग्रहण करने के लिए उत्साहित किया था।

यद्यपि उस समय राजाओं में एक निश्चित और सुदृढ़ संघटन की विचारधारा एवं राष्ट्रीय एकरूपता की कमी थी। फिर भी देश में औरंगजेब के विरोधी भावों का आधार लेकर राष्ट्रीयता की एक प्रबल धारा बह निकली थी। बहुत से मुसलमानों का हार्दिक सहयोग मिलने से भारत में राष्ट्रीयता के नवीन रूप का प्रस्फुटन हो उठा था। जिसके पोषक भूषण ही कहे जा सकते हैं। उनके प्रयत्न से औरंगज़ेब द्वारा उत्तेजित हिन्दू-मुसलमानों में पारस्परिक समाज-विरोधी भावनाओं का अवरोध हो रहा था और देश में शान्ति स्थापित होने लगी थी। यह सत्य है कि भूषण ने औरंगज़ेब के प्रति घृणा फैलाकर सामाजिक संघटन में सफलता पाई थी; परन्तु इस प्रचार में जातीय द्वेष की गन्ध नाम मात्र को भी न थी। उन्होंने राष्ट्रीय विचारों के सम्मिश्रण द्वारा ही स्वराज्य की स्थापना को अधिक दृढ़ीभूत करने का प्रयत्न किया था। भूषण ने हिन्दुत्व का संकुचित रूप कहीं नहीं लिया। उनकी नीति उदार और हिंदू-मुसलमान मेल पर निर्धारित थी। इसीलिए वे मुसलमानों से भी सम्मान पाते थे। और इसी से भूषण भी उनकी प्रशंसा करते थे। इस प्रकार की राजनीति भूषण के विचारों का प्रधान अंग बन गई थी। वही उनकी सफलता की कुंजी थी। इसमें भी उनका आदर्श शिवाजी ही थे।

६—भूषण की विशेषताएँ

भाषा पर विचार

भूषण की रचना में भाषा का अपना विशेष स्थान है। उनकी भाषा ओजपूर्ण तथा वीर रस के लिए नितांत अनुकूल है। उनकी भावपूर्ण रचना में वह ओजगुण के नगीने की भाँति जड़ी हुई है। इसका प्रधान कारण [illegible] के साथ में रहना हुआ है; परंतु विभिन्न प्रांतों में भ्रमण करने के कारण उनकी रचना में अन्य प्रांतों के भी अनेकों शब्द यत्र-तत्र आ मिले हैं। और वह ऐसे घुल-मिल गये हैं कि वे भिन्न भाषा के प्रतीत ही नहीं होते। यथा—

नाके, निहार, निजाउद, अटी, हुरै और पटकी आदि शब्द मराठी प्रयोगों से लिये गये हैं। शिवाजी की प्रशंसा में छंद रचने के कारण तथा दक्षिण में बहुत काल तक रहने से उनकी रचना में मराठी शब्दों के प्रयोग पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। *पटैल, सुभान और गरजा शब्द भी मराठी से ही लिये गये हैं।

इनके अतिरिक्त अफल, ठद्द, लिय, सुथाल, थरि और धारगीर इत्यादि शब्द भिन्न प्रांतों से लिये गये हैं।

भूषण की भाषा में फारसी, अरबी तथा तुर्की भाषा के भी

---

* शिवाजी का चरित्र और उनकी ऐतिहासिक घटनाएँ जानने के लिए 'शिव भारत' तथा अन्य मराठी ग्रंथों का अवलोकन वांछनीय है।

वहुत से शब्द भरे हुए हैं। जहाँ मुसलमानों के सम्वंध की वातचीत है, वहाँ तो उन शब्दों की वहुलता पाई जाती है। यथा—

"छूट्यो है हुलास आम खास एक संग छूट्यौ,
हरम,सरम एक संग विनु ढंग ही।
शि०भू० १५०

"कीरति कौं ताजी करी वाजी चढ़ि लूटि कीन्हीं,
भई सब सेन विनु वाजी विजैपुर की।
शि०भू० १५५

"जसन के रोज यों जलूस गहि वैठो जोऽव,
शि० भू० १९८।

इसी प्रकार जहान, दरगाह, वखतवुलंद, पेसकसैं, मुलुक, वलंद जोरावर' उजीर, दिल, अदली, दरकी, गरीवनेवाज, वालम, गरवीले, विलायति, रसाल, गुसलखाने, हिम्मत, इलाज,खजाने मिजाज, दौलत, उमराव, नाहक, जरवाफ, हमाल, ख्याल. और दिवाल इत्यादि सैकड़ों तुर्की शब्दों की भरमार है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी इन शब्दों का प्रयोग किया है, परंतु भूषण की रचनाओं में ऐसे शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। सामयिक परिस्थिति और मुसलमानों के संसर्ग में रहने के कारण ऐसे प्रयोग स्वाभाविक हैं।

भूषण की रचना की एक विशेषता यह भी है कि ये शब्द उसमें ऐसे घुल-मिल गये हैं कि पढ़ते समय ज़रा भी नहीं खटकते। इन शब्दों के तद्भव रूपों से उनमें भारतीयता भी आ गई है। भाषा में इस प्रकार की वृद्धि उसकी समृद्धि को बढ़ा देती

है। और उसमें शब्दों का कभी अभाव नहीं रहता ❀ भूषण की रचना में कहीं-कहीं पृथ्वीराज रासो में प्रयुक्त वीर गाथा काल के शब्दों का भी प्रयोग पाया जाता है। जैसे-कित्रिय, पव्वय, नैर, पुहुमि किति इत्यादि। ऐसे प्रयोग भूषण के समय में साधारण बोल चाल में प्रयुक्त नहीं होते थे। परंतु भाषा में ओज लाने तथा प्राचीन पद्धति दिखलाने के लिए ही उन्होंने कहीं कहीं ऐसे प्रयोग किये हैं।

भूषण ने व्रज भाषा के मूल स्थान (सौर सैनी प्रान्त) की बोली के प्रचलित परंतु साहित्य में कम प्रयुक्त होने वाले शब्दों को भी अपनी कविता में स्वतंत्रतापूर्वक स्थान दिया है। यथा

—ओत (शांति), पेली (ढकेल दी), कट्ठ (कठा) घर की बाहरी सीमा, रट्ठ (ढेर) और छिया (तुच्छ) इत्यादि।

इसी प्रकार अवधी, बुंदेलखण्डी और बैसवाड़ी आदि भाषाओं के प्रयोग भी उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे-धरती धुरकी, केरी, कीवी और धौं इत्यादि।

'शिवराज भूषण' से पहले ब्रजभाषा का कोई वीररसात्मक ग्रंथ नहीं था। 'वीरसिंह देवचरित' और 'रतन बावनी' में थोड़े से वीरतापूर्ण वर्णन अवश्य मिलते हैं। परंतु उनमें बुंदेलखंडीपन और भाषा की कृत्रिमता होने से रस के परिपाक में बाधा पड़ती है और पढ़ने में आनंद नहीं आता। इन रचनाओं में ओज और प्रसाद की भी न्यूनता है। 'रासो' आदि में डिंगल भाषा प्रयुक्त हुई है, जो बोल चाल की भाषा ही नहीं है। विद्यापति की कीर्तिलता की भी वही दशा है। वह अपभ्रंश भाषा में लिखी गई है।

❀ ऐसे प्रयोग हमें ग्यारहवीं शताब्दी से ही हिन्दी काव्यों में मिलने लगते हैं।

'वीसलदेव रासौ' और आल्हा के प्राचीन रूप लुप्तप्राय हैं। भाट-चारणों से एक दूसरे के द्वारा वे केवल गायन के रूप में परिवर्तित होते चले आये हैं। अन्य दो-एक ग्रंथ, 'राज-विलास' आदि मिलते हैं; परन्तु उनमें न तो भूषण की सी उदात्त भावनाएँ हैं और न वैसी भाषा ही दिखलाई देती है।

खुशामदी कवियों और चारणों की अपने आश्रयदाताओं के लिए रचित चाटुकारिता-पूर्ण रचनाएँ उच्च पद को अधिकारिणी नहीं हो सकतीं और न वे वीर-काव्य ही मानी जा सकती हैं। क्योंकि उनमें शृंगारिक भावनाएँ भी मिश्रित कर दी गई हैं।' अतः वीर रसात्मक ओज पूर्ण शुद्ध रचनाओं में सर्वप्रथम भूषण की ही कविता पर दृष्टि पड़ती है।

वीर-रस के उपयुक्त ओज पूर्ण भाषा ढूँढ़ना भूषण के लिए नवीन मार्ग था। इतना होते हुए भी भूषण की भाषा में न तो कृत्रिमता प्रतीत होती है और न शिथिलता ही। सब शब्द साँचे में ढले हुए से और बहुत ही उपयुक्त प्रतीत होते हैं। मानो वह भाषा पहले से ही मँजी-मँजाई भूषण के हाथ में आई थी। उसमें केशवदास की भाषा का सा बनावटीपन और भद्दापन कहीं पर भी दृष्टिगत नहीं होता। शृंगार आदि रसों का सफल वर्णन करने के लिए माधुर्यपूर्ण कोमल-कान्त पदावली युक्त व्रजभाषा का पथ तो सूरदास ने प्रशस्त कर दिया था। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भाषा के भिन्न-भिन्न रूपों को सब रसों के उपयुक्त बना कर एक अनुकरणीय आदर्श अवश्य रख दिया था। परंतु वीर-रस के लिए नितांत अनुकूल ओजपूर्ण और मुहावरेदार व्रजभाषा की कई प्रणालियों का अनुगमन कर एक नवीन आदर्श प्रस्तुत कर देना भूषण का ही काम था। उनकी अमृतध्वनियों में जहाँ वीर गाथा काल का रूप दिखलाई देता है, वहाँ शिवा बावनी, छत्रसाल

गोस्वामी जी की चौपाइयों की भाँति भूषण के अनेक छंदांश लोकोक्तियाँ बन गये हैं। यथा—

'तीन बेर खातीं ते वे तीन बेर खाती हैं,
"बिजन डुलातीं ते वे बिजन डुलाती हैं,"
'नगन जड़ातीं ते वे नगन जड़ाती हैं,
'धारा पर पारा पारावार यों हलत है," इत्यादि।

इन उदाहरणों से हम भूषण के भाषा विषयक प्रभाव का अनुमान कर सकते हैं। इनकी रचना में जहाँ एक ओर परिष्कृत ब्रज भाषा के दर्शन होते हैं। वहाँ दूसरी ओर खड़ी बोली की रचनाएँ भी यत्र-तत्र देख पड़ती हैं। 'भूषण ग्रंथावली' से इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

(१) "अफजल खाँ को गहि जाने मयदान मारा,
बीजापुर गोलकुंडा मारा जिन आज है।"
(२) "बँचेगा न समुहाने बहलोल खाँ अयाने,
"भूषण बखाने दिल आनि मेरा बरजा।"
(३) "झुके निसान सके समर मके तक तुरुक भजि।"
(४) "औरङ्ग अठाना साह सूर कीन माने आनि,
जब्बर जुराना भयो जालिम जमाना को।"
(५) "शिवा की बड़ाई औ हमारी लघुताई क्यों,
कहत बार बार कहि पातसाह गरजा।"

भूषण ने ब्रजभाषा की उकारान्त प्रणाली की मनोहर शब्दावली ग्रहण कर अपनी रचना में माधुर्य लाने का भी प्रयत्न

किया है। जैसे—गोतु, उदोतु, सोतु, होतु, बाँधियतु, काटियतु, चाहियतु इत्यादि।

इसे कुछ सज्जन अवधी का रूप बतलाते हैं, परन्तु वास्तव में यह ब्रजभाषा की ही प्रणाली है और सौरसेनी प्रान्त में बहुत प्रचलित है। प्राचीनकाल से ब्रजभाषा के साहित्य में ऐसे रूप प्रयुक्त होते चले आ रहे हैं, अतः इन्हें अवधी का रूप कहना भूल है।

इस स्थान पर ब्रजभाषा विषयक प्रचलित भ्रान्ति पर विद्वानों का ध्यान आकर्षित करना अनुचित होगा। आजकल मथुरा-वृन्दावन के समीप प्रचलित बोली ही ब्रजभाषा समझी जाती है। परन्तु साहित्य में जो भाषा इस नाम से प्रयुक्त होती है, वह ब्रज की प्रचलित बोली नहीं है। वहाँ पर कर्म के रूप में सर्वत्र राम कूँ, वाकूँ, तोकूँ, मोकूँ तथा करण व अपादान के रूप में राम सूँ, वासूँ, तासूँ, मोसूँ, लाठी सूँ, आदि प्रयोग प्रचलित हैं। इसी प्रकार वहाँ क्रियाओं और सर्वनामों में ऐसा ही विधान पाया जाता है। साहित्य में इन शब्दों के स्थान पर मोकों, तोकों, वाकों, हमको, राम कों, श्याम सों, लाठी सों उन-सों आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार के ऐसे ही और भी बहुत से रूप मिल सकते हैं जिनसे ब्रज की प्रचलित बोली और साहित्यिक ब्रजभाषा में बहुत अन्तर जान पड़ता है। मथुरा-वृन्दावन आदि में साहित्यिक भाषा का भी प्रचार होने से दोनों रूपों के दर्शन होते हैं। परन्तु गाँवों में केवल प्रथम रूप ही दिखाई देता है।

इस अन्तर का प्रधान कारण यह है कि साहित्यिक ब्रजभाषा सौरसेनी अपभ्रंश से क्रम-विकास द्वारा वर्तमान रूप में आई है। अब से दो हजार वर्ष पूर्व सौरसेनपुर (वर्तमान

बटेश्वर) सौरसेनी भाषा का प्रधान केन्द्र था। इसका उल्लेख मेगास्थनीज़ ने अपने एरियन-नामक ग्रंथ में किया है और इसकी गणना भारत के प्रसिद्ध छः नगरों में की है। यही नगर महाभारत से पूर्व श्री कृष्ण के पिता वसुदेव तथा पितामह सूरसेन की राजधानी था। सूरसेन ने इसे बसाकर इसका नाम सौरसेनपुर रक्खा था। आज वहाँ भी अनिरुद्ध खेड़ा और प्रद्युम्नपुरा के मोहल्ले खंडहरों के रूप में विद्यमान हैं, जिसका उल्लेख आर्कियालौजिकल सर्वे की रिपोर्टों में भी मिलता है। *

अतः स्पष्ट है कि भूषण की भाषा अत्यन्त प्रभाव शालिनी, ओजस्विनी, परिष्कृत और मुहावरेदार शुद्ध व्रजभाषा है। व्रज-भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का स्वतंत्रता से प्रयोग कर उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि उन पर भी उनका काफ़ी अधिकार है। वीर रस के नितान्त अनुकूल होने से भूषण की भाषा ने वीर, रौद्र और भयानक रसों के साहित्य के लिए पथ-प्रदर्शन का अच्छा काम किया है।

भूषण की शैली

भूषण की शैली साधारणतः विवेचनात्मक तथा संश्लिष्ट है। विवरणात्मक प्रणाली का उन्होंने बहुत ही कम उपयोग किया है। उनकी रचना महाकाव्य के रूप में न होने के कारण इस शैली के लिए अधिक गुंजाइश भी न थी। फिर भी इसके उदाहरणों की कमी नहीं है। रायगढ़ के वर्णन में विवरणात्मक प्रणाली ही का प्रयोग हुआ है।

---

* आर्कियालांजीकल सर्वे रिपट सन् १८७१-७२, जिल्द ४, पृ० १५८ तथा 'सरस्वती' में 'सौरपुर का प्राचीन विवरण' शीर्षक लेख। भाग २७ संख्या ४ पृ० ४६३।

छप्पय, अमृतध्वनि आदि छन्द ही (जिनमें चमत्कारपूर्ण, और रस से सराबोर रचना हो) अपना प्रभाव डाल सकते हैं। इसके लिए दरबारी कान पहले ही से अभ्यस्त थे। भूषण ने इसी प्रथा का अनुसरण कर बड़े-बड़े राज दरबारों में अपना पूरा सिक्का जमा लिया था। साथ ही उनका विषय नया, सामयिक और उत्साह वर्द्धक था। जिसने राज-दरबारों का ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लिया। अतः स्पष्ट है कि यद्यपि भूषण ने विवरणात्मक शैली का बहुत कम प्रयोग किया है ; परन्तु जहाँ कहीं उसका प्रयोग हुआ है, वह रचना बड़ी ही सुन्दर, परिमार्जित और ओज पूर्ण बन पड़ी है।

उदाहरणार्थ—

"छूटत कमान और गोली-तीर बानन के ,
मुसकिल होत मुरचानहू की ओट में।
ताहि समै सिवराज हाँकि मारि हल्ला कियो ,
दावा बाँधि परा हल्ला बीर वर जोट में।
'भूषन' भनत तेरी हिम्मत कहाँ लौं कहौं,
किम्मत यहाँ लगि है जाकी भट झोट में।
ताव दै दै मूछन कंगूरन पै पाँव दै-दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परे कोट में।"

शि० बा० ३१

इस छन्द में भूषण ने शिवाजी के युद्ध-कौशल और किला विजय करने के ढंग का बड़ा ही विशद तथा ओजपूर्ण वर्णन किया है। ऐसे ही और भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं,

जिन से हम भूषण के विवरणात्मक रचना-सौष्ठव का अनुमान कर सकते हैं।*

विवेचनात्मक शैली

भूषण की सबसे प्रसिद्ध और मँजी हुई शैली विवेचनात्मक है। इसी शैली के कारण भूषण वास्तव में महाकवि भूषण कहलाये। इसके कुछ उदाहरण ये हैं—

"कवि कहैं करन-करन जीत कमनैत,
　　अरिन के उर माँहि कीन्हों इमि छेत है।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो,
　　और धराधरनि कौ मेट्यो अहमेव है।
'भूषन' भनत महाराज सिवराज तेरो,
　　राज-काज देखि कोऊ पावत न भेव है।
कहरी यदिल मौज लहरी कुतुब कहैं,
　　बहरी निजाम के जितैया कहैं देव है।"
शि० भू० ७२

इस छन्द में कवि ने शिवाजी के प्रभाव का अत्यन्त ही मनोरंजक ढंग से विश्लेषण किया है। उन्होंने आदिलशाह, कुतुबशाह और निजामशाह द्वारा क्रमशः 'कहरी', 'मौजलहरी', और जितैया देव कहकर शिवा जी के प्रति तीनों राज्यों की वास्तविक भावनाओं का बड़े कलापूर्ण ढंग से प्रदर्शन किया है।

---

*'शिवा बावनी', छत्रसाल दशक' तथा फुटकर छन्दों में कई स्थानों पर इसी शैली का अनुगमन हुआ है।

यह भूषण की तीव्र एवं विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। निजाम की 'वहरी' उपाधि भी कौतूहल से रिक्त नहीं है।

नीचे के उदाहरणों में शिवाजी के आतंक और प्रभाव का अत्यन्त सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है।

"दौलति दिली की पाय कहाए आलमगीर,
बब्बर अकब्बर के विरद विसारे तैं।
'भूषन' भनत लरि लरि सरजा सों जङ्ग,
निपट अभंग गढ़-कोट सब हारे तैं।
सुधरयौ न एकौ सांज भेजि-भेजि वेही काज,
बड़े बड़े वेइलाज उमराव मारे तैं।
मेरे कहे मेरु करु सिवाजी सों वैर करि,
गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं।"
शि० भू० २८१

"सिंह थरि जाने बिनु जावली जङ्गल हठी,
भटी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।
'भूषण' भनत देखि भभरि भगाने सब,
हिम्मत हिए में धारि काहुवै न हटक्यो।
साही के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मदगल अफजलै पञ्जा बल पटक्यो।
ता बिगिरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यो।"
शि० भू० ६९

इस छन्द में विवेचनात्मक शैली का बड़ा ही सुंदर दिग्दर्शन कराया गया है। अफजल रूपी हाथी शेर शिवाजी से पटकवा कर आकूत खां के साथ अंकुश खां के भागने का बहुत ही उत्तम विवेचन किया गया है। अंकुश और गज का सामंजस्य भी सुन्दर है।

'शिवराज भूषण' से छंद नं० ६६,७७,८३,६८,१०३ इत्यादि में इस विवेचनात्मक शैली के बहुत ही उत्कृष्ट नमूने मिल सकते हैं। भूषण के हाथ में यह शैली खूब सफल हुई है और ये छन्द भी बहुत उत्तम बन सके हैं।

संश्लिष्ट शैली

जिस रचना में विवरणात्मक तथा विवेचनात्मक दोनों शैलियों का समावेश रहता है, उसे संश्लिष्ट शैली कहते हैं। भूषण की यह शैली भी बहुत सफल हुई है।

उदाहरणार्थ—

"दानव आयो दगा करि जावली,
दीह भयारो महामद भारयो।
'भूषन' बाहु बली सरजा तेहि,
भेंटिबे कों निरसंक पधारयो।
बीछू के घाय गिरे अफजल्लहि,
ऊपर ही सिवराज निहारयो।
दाबि यों बैठो करिंद अरिंदहि,
मानो मयंद गयंद पछारयो।"

शि० भू० २८।

यह भूषण की तीव्र एवं विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। निजाम की 'वहरी' उपाधि भी कौतूहल से रिक्त नहीं है।

नीचे के उदाहरणों में शिवाजी के आतंक और प्रभाव का अत्यन्त सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है।

"दौलति दिली की पाय कहाए आलमगीर,
बब्बर अकब्बर के बिरद बिसारे तैं।
'भूपन' भनत लरि लरि सरजा सों जङ्ग,
निपट अभंग गढ़-कोट सब हारे तैं।
सुधर्यौ न एकौ सांज भेजि-भेजि वेही काज,
बड़े बड़े बेइलाज उमराव मारे तैं।
मेरे कहे मेरु करु सिवाजी सों बैर करि,
गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं।"

शि० भू० २८१

"सिंह थरि जाने बिनु जावली जङ्गल हठी,
भटी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।
'भूपण' भनत देखि भभरि भगाने सब,
हिम्मत हिए में धारि काहुवै न हटक्यो।
साही के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मदगल अफजलै पञ्जा बल पटक्यो।
ता बिगिरि है करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यो।"

शि० भू० ६९

अनुकूल हैं, वहाँ उनकी भावना भी उत्साह वर्द्धक और उत्तेजक है। इस प्रकार शब्दों और भावों का सामञ्जस्य भूषण की रचना का विशेष गुण है। यथा—

"इंद्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज हैं।

* * *

तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर सेर सिवराज हैं।"
शि० भू० ५६।

"चपला चमकनी न फेरत फिरंगै भट,
इन्द्र को न चाप रूप बैरष समाज को।"
शि० भू० ८१

"मघवा मही में तेजवान सिवराज वीर,
कोट करि सकल सपच्छ किये सैल हैं।
शि० भू० ६६

"दल के दरारे हूते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेस के।"
शि० बा० ८

"बीजापुर बीरन के गोलकुंडा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके।"

इस प्रकार भूषण की रचना में जैसा उत्कृष्ट वीर रस का

भूषण की यह शैली भली भाँति मँजी हुई जान पड़ती है। उनकी रचना में इसका बाहुल्य भी है।

एक उदाहरण और प्रस्तुत है—

"आये दरबार बिललाने छड़ीदार देखि,
जापता करन हारे नेकहू न मन के।
'भूषन' भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े,
बाजे भये उमराय तुजुक करन के।
साहि रह्यो जकि सिव साहि रह्यो तकि,
और चाहि रह्यो चकि बने व्योंत अनबन के।
ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि,
तारे सम तारे गये मूँदि तुरकन के।
शि० भू० ३८

भूषण कालीन युग में आलंकारिक शैली का ही विशेष प्रचार था। इसी लिए उनकी रचनाओं में अलङ्कारों की अधिकता है। उनकी फुटकर रचनाओं में भी अनायास अलंकार आगये है परन्तु इससे भाषा और भाव के प्रवाह में कोई व्यधान नहीं दिखाई देता, वरन् वे भी भाव को स्पष्ट करने के लिए आये हैं।

भूषण की शैली की विशेषताएँ

भूषण की शैली की अनेक विशेषताएँ हैं। वे युद्ध के बाह्य साधनों का ही वर्णन कर संतोष नहीं कर लेते, वरन् मानव हृदय में उमंग भरने वाली भावनाओं की ओर उनका सदैव लक्ष्य रहता है। उनका शब्द-विन्यास जहाँ वीर रस के निता

अनुकूल है, वहाँ उनकी भावना भी उत्साह वर्द्धक और उत्तेजक है। इस प्रकार शब्दों और भावों का सामञ्जस्य भूषण की रचना का विशेष गुण है। यथा—

"इंद्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज हैं।

॰ ॰ ॰

तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर शेर शिवराज हैं।"
शि० भू० ५६।

"चपला चमकती न फेरत फिरंगे भट,
इन्द्र को चाप रूप बैरप समाज को।"
शि० भू० ८१

"मघवा मही में तेजवान सिवराज वीर,
कोट करि सकल सपच्छ किये सैल हैं।
शि० भू० ६६

"दल के दरारे हूते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात विहराने फन सेस के।"
शि० बा० ८

"बीजापुर बीरन के गोलकुंडा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके।"

इस प्रकार भूषण की रचना में जैसा उत्कृष्ट वीर रस का

परिपाक हुआ है, हिन्दी साहित्य में वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

भूषण के बहुत से छन्द इस प्रकार के हैं, मानों वे किसी व्यक्ति के सामने पहुँच कर उसे धमका रहे हों। निम्न-छंद देखिये--

"बचैगा न समुहाने बहलोल खाँ, अयाने,
'भूषन' बखाने दिल आनि मेरा बरजा।
तुझते सवाई तेरा भाई सलहेरि पास,
कैद किया साथ का न कोई बीर गरजा।
साहिन के साहि उसी औरङ्ग के लीन्हें गढ़,
जिसका तू चाकर औ जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिल्ली दल का दलन अफ-
जल का मलन सिवराज आया सरजा।"

शि० भू० १६१

"बूड़ति है दिल्ली सो सँभारै क्यों न दिल्ली पति,
धका आनि लागो सिवराज महाकाल को।"

शि० बा० ३६

'भूषन' सुकवि कहैं सुनो नवरँग जेब,
एते काम कीन्हें फेरि पातसाही पाई है।

शि० बा० ४५

सूबेदार बहादुर खाँ की स्त्रियों की ओर से भूषण नवाव कहलाते हैं--

"पीय पहारन पास न जाहु यों,
　　　　　तीय बहादुर सों कहैं सोषै।
कौन बचैहै नवाब तुम्हैं भनि,
　　　　　'भूषन' भौंसिला भूप के रोषै?"
　　　　　　　　　　　　　　शि० भू० [illegible]

"या पूना में मत टिको, खान बहादुर आय।
　　　　　याहीं साइत खानको, दीन्हीं सिवा सजाय।
　　　　　　　　　　　　　　शि० भू० [illegible]

शिवाजी को सम्मुख मानकर भी भूषण ने कवित्त कहे हैं। इनमें शिवाजी के ईश्वरत्व की सर्वव्यापकता की भी पुट मिली हुई है। मानो भूषण अपनी व्यक्तिगत सफलता के लिए उनका आह्वान कर रहे हैं। सम्मुख आने पर किसी से बात करते हुए जो ओज एवं तेजस्विता प्रदर्शित की जा सकती है, परोक्ष में उतना [illegible] नहीं सकता। किसी के प्रत्यक्ष कथन की अपेक्षा परोक्ष-कथन उतना प्रभावशाली हो ही नहीं सकता। इसीलिए भूषण के कथन साक्षात् ओज की मूर्ति के रूप में ही प्रकट हुए हैं। यथा—

"आजु सिवराज महाराज एक तुही,
　　　　　सरनागत जनन को दिवैया अभैदान को।
फैली महिमंडल बड़ाई चहुं ओर तातें,
　　　　　कहिये कहां लों ऐसे बड़े परिमान को।
निपट गँवार कोउ लाँघि न सकत चौर,
　　　　　जोधन को रन देत जैसे भाऊ खान को।

दिल दरियाव क्यों न कहैं कविराय तोंहि,
तो मैं ठहरात आनि पानिप जहान को।
शि० भू० ३४८।

सूर्य भगवान् को सम्वोधन करके भूषण कहते हैं—
"तरनि जगत जलनिधि तरनि, जय जय आनँद ओक।
कोक कोकनद सोक हर, लोक लोक आलोक॥"
शि० भू० ३

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भूषण ने बहुत से छन्द व्यक्तियों को सम्वोधन कर कहे हैं। यद्यपि वे उनके सम्मुख कभी नहीं गये। वहलोलखाँ और औरंगजेब आदि को सम्वोधन कर जो छन्द कहे गये हैं, वे उनके सामने कदापि नहीं कहे जा सकते। इसी प्रकार शिवाजी-सम्वन्धी छन्द शिवाजी के सामने वर्णन करने योग्य नहीं हैं।

शिवाजी को ईश्वर का अवतार मानकर वे छंद उसी प्रकार कहे गये हैं, जिस प्रकार सूर्य की स्तुति का छन्द कहा गया है। तथा तुलसी के मुख से राम की प्रार्थना कराई गई है। ऊपर की वर्णित शैलियों के अतिरिक्त भूषण की एक शैली प्रश्नोत्तर-रूप में भी है। यथा—

"दुरगहि वल पंजन प्रवल, सरजा जिति रन मोहि।
औरंग कहे दिवानसों, सपन सुनावत तोहि।"
शि० भू० ६३

"सुनि सु उजीरन यों कह्यो, 'सरजा सिव महराज।'
'भूषन' कहि चकता सकुचि, "नहिं सिकार मृगराज॥"
शि० भू० ९४

"को दाता को रन चढ़यो, को जग पालन हार ?
कवि 'भूषन' उत्तर दियौ, सिवनृप हरि अवतार ।"
शि० भू० ३१४।

"साहिन के उमराव जितेक, सिवा सरजा सब लूटि लये हैं।
'भूषन' ते बिन दौलत ह्वै कैं फकीर ह्वै देस बिदेस गये हैं।
लोग कहैं इमि दच्छिन जेय, सिसौदिया रावरे हाल ठये हैं।
देत रिसाय कै उत्तर यों, 'हमहीं दुनियाँ तें उदास भये हैं ॥
शि० भू० ३१६।

ऐसेही प्रश्नोत्तर 'शिवराज भूषण' के ६०, ३१३, ३१७, ३१६, ३२१ तथा अन्य अनेक छन्दों में दृष्टिगोचर होते हैं।

भूषण की शैली की एक विशेषता और है। किसी बात को समझाने के लिए वे इतने अधिक उदाहरण दे देते हैं कि वह विषय अनायास समझ में आ जाता है। शिक्षा का यह सर्वोत्तम सिद्धान्त है। इसके कुछ उदाहरण ये हैं—

"इन्द्र जिमि जंभ पर ....,
त्यों मलेच्छ वंश पर शेर शिवराज है।
शि० बा० २।

"शक्र जिमि शैल पर..................,
म्लेच्छ चतुरंग पर चिन्तामणि देखिये।"

× × ×

"कामिनि कन्त सों, जामिनि चन्द सों,
दामिनि पावस-मेघघटा सों।
कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों,
प्रीति बड़ी सनमान महा सों।
'भूषन' भूषन सों तरुनी—
नलिनी नव पूषण देव प्रभा सों।
जाहिर चारहु ओर जहान,
लसै हिंदुआन खुमान सिवा सों।
शि० भू० १२६

पूर्ण वाणी से अपने कवित्त सुनाते होंगे, उस समय सारा दरबार दंग रह जाता होगा। भूषण की यह शैली राजदरबारों तथा समाज में बड़ा ही गहरा प्रभाव डालती थी। 'शिवा बावनी' के छंद नं० ३, ४, ५ तथा 'शिवराज भूषण' के अनेक छंद इसी शैली के अन्तर्गत आ जाते हैं।

भूषण की रचना-शैलियों के परिवर्तन से पढ़ने अथवा सुनने में जी नहीं ऊबता। नवीनता रहने के कारण उनमें नीरसता कभी नहीं आने पाती। भूषण यदि एक स्थान पर सांसारिक लेन-देन के रूप में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करके नवीनता उत्पन्न कर देते हैं, तो दूसरे स्थान पर इस शैली को दूसरा ही रूप दे देते हैं। यथा—

"जङ्ग जीतिलेवा ते वै ह्वै कै दामदेवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा महिपाल की।"

छत्रसाल प्रशंसा ५।

"संगर में सरजा सिवाजी अरि सैननि को,
सार हरि लेत हिन्दुआन सिर सारु दै।
'भूपन' भुसल जय जस कौ पहारु लेत,
हरजू को हारु हरगनकौं अहारु दै।

शि० भू० २४६।

इस प्रकार भूषण भिन्न-भिन्न शैलियों का अनुगमन करते हुए वीर रस के विकास में पूर्ण सफल हुए हैं। उन्होंने जिस किसी शैली पर अपनी लेखनी उठाई है, उसी का सफलता-पूर्वक निर्वाह किया है।

रस-निरुपण

भूषण की रचना में वीर रस का इतना सुन्दर परिपाक हुआ है कि उससे जीवन शून्य व्यक्ति में भी नवीन स्फूर्ति और उत्साह

की उमंग भर जाती है। भूषण ने वीर रस को मथकर और उसके प्रत्येक पहलू पर दृष्टि डालकर अपनी पूर्ण प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। दानवीर, दयावीर, धर्मवीर युद्धवीर, कर्मवीर और ज्ञानवीर ये ही वीर रस के भेद माने गये हैं; परन्तु यथार्थ वीरता युद्ध में ही है। अतः भूषण ने इसी का विशेष चित्रण किया है और इसी को सच्चा वीर रस माना है। इसका दिग्दर्शन भी यहाँ कराया जाता है। दानवीर का एक उदाहरण निम्नलिखित है

"सहज सलील सील जलद से नील डील,
पब्वय से पील देत नहिं अकुलात है।
'भूषन' भनत महाराज सिवराज देत,
कंचन को ढेरु सो सुमेरु सो लखात है।
सरजा सवाई कासों करि कविताई तव,
हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है।
जाको जस टंक सातो दीप नवखंड माहिं,
मण्डल की कहा ब्रह्मंड ना समात है।

शि० भू० २२७।

दयावीर का उदाहरण यह है—

"दिल्ली को दलेल भारी सुभट अडोलगोल,
चालिस हजार लै पठान धायो तुरकी।
'भूषन' भनन जाकी दौर ही को सोर मच्यौ,
दिल की सीमा पर फौज आनि दुरकी
भयो है उचाट करनाट नरनाहन कों,
हाँनि उठी आनी गोलकुंडा ही के उर की।

साहि के सपूत सिवराज बीर तैंने तब,
बाहु बल राखी पातसाही बीजापुर की।

शि० भू० फुटकर छन्द २४।

अब धर्मवीर का भी एक उदाहरण देखिये—

"राखी हिन्दुआनी हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे बेद विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं।
'भूषन' सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं।

शि० बा० २५।

दानवीर का उदाहरण यह है—

"चाहत निर्गुन सगुन कौं, ज्ञानवंत की बान।
प्रकट करत निर्गुन सगुन, सिवा निवाजी दान॥"

शि० भू० १४२।

युद्धवीर का उदाहरण भी लिजिये—

"उमड़ि कुड़ाल मैं खवास खान आये भनि,
'भूषन' त्यों धाये शिवराज पूरे मन के।
सुनि मरदाने बाजे हय हिहिनाने घोर,
मूछैं तरराने मुख बीर धीर जन के।

एकै कहैं मार मार सम्हरि समर एकै,
म्लेच्छ गिरैं मार बीच बेसम्हार तन के।
कुंडन के ऊपर कड़ाके उठैं ठौर ठौर,
जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गन के।।"

कर्मवीर का उदाहरण—

केतिक देश दल्यौ दल के बल,
दच्छिन चंगुल चापि कै चाख्यौ।
रूप गुमान हर्यो गुजरात को,
सूरत को रस चूँसि कैं नाख्यौ।
पंजन पेलि मलिच्छ मले सब,
सोइ बच्यौ जेहि दीन ह्वै भाख्यौ।
सो रँग है सिव राज बली,
जिन नौ रँग पे रँग एक न राख्यौ।

इस प्रकार भूषण कवि ने वीर रस के भिन्न भिन्न अंगों क
बड़ी चतुरता से चित्रण किया है।

वीररस में अन्य रसों का विवेचन

भूषण ने वीर रस के अन्तर्गत अन्य रसों का समावेश कितन
चतुरता से किया है। यह नीचे के उदाहरणों से भली भाँति स्पष
हो जाता है। उन्होंने नीचे के छन्द में शृंगार रस को वीर र
के अन्तर्गत प्रत्यक्ष किया है।—

"मेचक कवच साजि वाहन बयारि वाजि,
गाढ़े दल गाजि रहे दीरघ दलन के।
'भूषण' भनत समसेर सोई दामिनी है,
महामद कामिनी के मान के कदन के।
पैदरि बलाका धुरवान की पताका गहे,
घेरियत चहूँ ओर सूने ही सदन के।
न करु निरादर पिया सों मिलु सादर ये,
आये वीर बादर बहादर मदन के।

शि० भूषण फुटकर छन्द ४९।

इस छंद में भूषण ने शृंगार रस को वीर रस के रूपक में ढालकर यह प्रत्यक्ष कर दिया है कि शृंगार रस किस प्रकार वीर रस के अधीन होकर काम कर सकता है। निम्नलिखित उदाहरण शान्त रस का है—

"देह देह देह फिर पाइये न ऐसी देह,
जौन तौन जो न जानै कौन जौन जाइबो।
जेते मनि मानिक हैं तेते मन मानि कहैं,
धराई में धरे ते तो धराई धराइबो।
एक भूख राखै भूख राखै मति भूखन की,
यही भूख राखै भूप "भूखन" बनाइबो।
गगन के गौन जम गिनन न देहैं नग,
नगन चलैगो साथ नग न चलाइबो॥"

शि० भू० फुटकर छन्द ५५

यह छंद आदि से अन्त तक शान्त रस से ओतप्रोत है। यहाँ कवि ने 'भूप भूखन बनाइबो' कहकर अपने देशव्यापी क्रांतिकारी आन्दोलन की ओर अवश्य संकेत कर दिया है। इससे शांति की भावना में वीर रस का समन्वय हो गया है।—

रौद्र रस का उदाहरण यह है—

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे।
जानि गैर मिसिल गुसीले गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे।
'भूषन' भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरँग सिपाह मुख पियरे॥"

शि० बा० फुटकर छन्द १७।

उक्त छन्द में रौद्र रस को वीर रस के सहायक रूप में उपस्थित किया गया है।

भयानक रस का एक उदाहरण यह है -

"भागि पठायो सिवा कछु देस,
गनीम अजानन्हि बोल गहे ना।
डारि दियो गजरा पगनालो यों,
'भूषन' जो दिन दोय लगे ना।

धाक सो खाक बिजैपुर भो मुख,
आइगो खान खवास के फेना।
मैं भरकी करकी दरकी धरकी,
दिल आदिल साह की सेना॥"
शि० भू० २५५।

अब वीर रस के अन्तर्गत करुणा रस को लीजिये –
"शुंडन समेत काटि बिहद मतंगन कौं,
रुधिर सौं रंग रन मण्डल में भरिगौ।
'भूषन' भनत तहाँ भूप भगवन्तराय,
पारथ समान महाभारथ सौ करिगौ।
मारे देखि मुगल तुराबखान ताही समय,
काहू असजानी मानो नट सौ उचारिगौ।
बाजीगर कैसी दगाबाजी करि बाजी चढ़ि,
हाथीहाथा हाथी तैं सहादति उतरिगौ॥*

"हाथी हाथा हाथी तैं सहादति उतरिगौ" के अन्तर्गत पूर्ण करुणरस भरा हुआ है। वीभत्स रस को वीर रस के अन्तर्गत लाने का एक उदाहरण इस प्रकार है। –

* 'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका भाग ६, संख्या ३।

हिंदी के कवियों में अलंकारों के संबंध में जो सामान्य भावना प्रचलित थी, उसी को पकड़ा है। यही कारण है कि भूषण के लक्षण और उदाहरण कई जगह अस्पष्ट और दूषित हैं।"

इसी प्रकार के अनेक आक्षेप इन अलंकारों के विषय में किये गये हैं। यहाँ हमें यह देखना है कि ये आक्षेप कहाँ तक तर्कपूर्ण हैं। एक विद्वान् ने 'पंचम प्रतीप'पर इस प्रकार विचार किया है। भूषण ने उक्त अलंकार का यह लक्षण लिखा है—

"हीन होय उपमेय सों, नष्ट होत उपमान।"

इसी लक्षण को चन्द्रालोककार ने इस भाँति दिया है।—

"प्रतीप मुपमानस्य कैमर्थ्य मपि मन्यते।"

अब प्रथम प्रतीप का उदाहरण देखिये--

"यत्त्वन्नेत्र समान कान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरम्।
मेघैरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी।
येऽपि त्वद् गमनानुसारि गतयस्ते राजहंसा गताः।
त्वत्सादृश्य विनोद मात्र मपि मे दैवेन न क्षम्यते॥*

चन्द्रालोककार ने पंचम प्रतीप के लक्षण में 'कैमर्थ्यमपि' कहकर स्वयं द्विविधा पैदा कर दी है। इसका कारण भी है। यह लक्षण आक्षेप के अन्तर्गत आता है। जिसका लक्षण 'साहित्य-दर्पणकार' इस प्रकार करते हैं।—

"वस्तुनो वक्तुमिष्टस्य विशेष प्रतिपत्तये।
निषेधाभास आक्षेपो वक्ष्यमाणोक्ति गो द्विधा।" *

* 'कुवलयानन्द,' पृ० १२।

* साहित्य दर्पण' दशमः परिच्छेदः पृ० २०२।

इसी को चन्द्रालोककार ने इस प्रकार लिखा है—

"निषेधामाव माक्षेप बुधाः केचन मन्वते ।" +

यहाँ स्पष्ट है कि भूषण ने पंचम प्रतीप को आक्षेप की सीमा से बचाने और द्विविधा से अलग रखने के लिए इसी स्वरूप में ग्रहण न कर यह कहा है कि "यदि उपमान उपमेय से हीन हो जाय अथवा बिलकुल लुप्त हो जाय तो पञ्चम प्रतीप होता है।"

भूषण को यह लक्षण 'चन्द्रालोक' के प्रथम प्रतीप के उक्त उदाहरण के ध्यान में आने से ही सूझा है। उसी भाव पर भूषण का लक्षण घटित होता है, जो 'चन्द्रालोक' के प्रथम प्रतीप के लक्षण "प्रतीप मुपमानस्योपमेयत्व प्रकल्पनम्" से भिन्न है।

इस लक्षण की रचना के समय भूषण के मस्तिष्क में तीन भावनाएँ काम कर रही थीं—

(१) उसे कैमर्थ्य से बचाना जिससे उनका लक्षण आक्षेप के भीतर न चला जाय। (२) 'चन्द्रालोक' के प्रथम उदाहरण का समावेश कराना और (३) द्विविधा में न रहकर लक्षण को स्पष्ट करना।

'कैमर्थ्य' रहने से आक्षेप में कहीं अन्तर्भाव न हो जाय, इसी को बचाने के लिए भूषण ने कैमर्थ्य के स्थान पर 'हीन' शब्द रखा है। भूषण का भाव यह है। पञ्चम प्रतीप के पर्यवसान में उपमान की हीनता किसी न किसी प्रकार स्पष्ट रूप से होनी आवश्यक है। अधिकतर उपमेय के आगे उपमान की तुच्छता दिखाने से वह व्यक्त होती है। इस दृष्टि से भूषण का लक्षण बिलकुल निर्दोष है।

पञ्चम प्रतीप के प्रथम उदाहरण में भूषण के "तो सम हो सेस सो तो बसत पताल लोक...इत्यादि"* छन्द में उपमान के स्पष्ट रूप से लुप्त होने का भाव व्यक्त किया गया है। उसी को भूषण ने नष्ट शब्द से व्यक्त किया है। यह उदाहरण 'चन्द्रालोक' के प्रथम प्रतीप के उदाहरण के ढंग पर लिखा गया है।

उसके दूसरे और तीसरे उदाहरण में भूषण ने—"कुंद कहा पयवृन्द कहा......अति साहस में शिवराज के आगे।"† और "यों सिवराज को राज अडोल......कुंडलि कोल कछू न कछू है" लिखकर उपमान की तुच्छता प्रकट की है। इसे भूषण ने 'हीन' शब्द से व्यक्त किया है। 'न्यून' और 'हीन' शब्द में महान् अन्तर है। अतः इस परिभाषा में 'व्यतिरेक' की व्याप्ति कभी हो ही नहीं सकती। फिर भी काव्यप्रकाशकार मम्मट ने उपमालंकार के प्रकरण में 'काव्य प्रकाश' के पृष्ठ ४४६ पर लिखा है।—

"रसादिस्तु व्याप्यो ऽर्थोऽलङ्कारान्तञ्च सर्वथा।
व्यभिचारी स्थगण यित्यैव तदलंकाराउदाहृता॥"

इस कथन से यह स्पष्ट है कि एक अलंकार के साथ अन्य अलंकार अवश्य रहते हैं और वे अनायास ही आ जाते हैं। परन्तु उनमें उदाहरण-स्वरूप प्रधान अलङ्कार ही लिया जाता है। अतः व्यतिरेक की शंका पैदा करना निर्मूल है।

इन बातों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि लक्षण की भूल भूषण की नहीं, वरन् चन्द्रालोककार की है। जिसे आलोचक महोदय भूषण के सिर थोप रहे हैं। यहाँ पर यह कहना अनुचित

न होगा कि हिन्दी में भूषण ही एक ऐसे आचार्य हुए हैं, जिन्होंने संस्कृत आचार्यों का अन्धानुकरण नहीं किया और शास्त्रानुमोदित संशोधन कर आचार्यत्व की मर्यादा को अक्षुण्ण रखा।

दूसरा उदाहरण 'निदर्शना' का है। इसका लक्षण 'चन्द्रालोक' में इस प्रकार है।

"वाक्यार्थयोः सदृशयो रैक्यारोपो निदर्शना।"

अर्थात् दो सदृश वाक्यार्थों का ऐक्य स्थापन होने पर 'निदर्शना' होती है। उदाहरण यह है—

"यद्दातुः सौम्यता सेयं पूर्णेन्दोर कलंकिता।"*

यहाँ पर 'यत्' और 'तत्' शब्दों द्वारा दाता की सौम्यता और पूर्णेन्दु की अकलंकिता में ऐक्य स्थापित किया गया है।

भूषण ने इसी लक्षण का पूर्ण भाव इस प्रकार प्रकट किया है।

"सदृश वाक्य युग अरथ को करिये एक अरोप।"

इसका उदाहरण भी उसी के अनुकूल निम्नलिखित है—

"मच्छहु कच्छ मैं कोल-नृसिंह मैं,
बावन मैं भनि 'भूषन' जो है।
जो द्विज राम मैं जो द्विजराज मैं,
जोऽब कह्यो बलरामहु को है।

*'चन्द्रालोक' पृ० ५६।

बौद्ध में जो अरु जो कलकी महँ,
विक्रम हूवे को आगे सुनो है।
साहस भूमि अधार सोई अब,
श्री सरजा सिवराज में सो है॥"

शि० भू० १४०।

इस छन्द में मच्छ, कच्छादि उपमानों का क्रम पूर्ण नियमानुसार है तथा "अरु जो कलकी मह विक्रम हूवे को आगे सुनो है" कहकर भूषण ने इस पद्य में चौगुना चमत्कार भर दिया है। इस उदाहरण में ठीक 'चन्द्रालोक' के 'यत' की ही भाँति 'जो' 'सो' शब्दों से उपमेय-उपमान का ऐक्यारोपण किया गया है, जिसका पर्यवसान उपमा में होता है। मम्मट ने लिखा है कि जहाँ अनेक उपमानों के साथ एक उपमेय का ऐक्यारोप हो, वहाँ मालारूपी 'निदर्शना' होती है। भूषण का उक्त दृष्टान्त मालारूपी निदर्शना का ही है। इस उदाहरण में द्विवाक्यता का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव स्पष्ट है। जब कि विश्वनाथ ने अपने 'साहित्य-दर्पण' में निम्नलिखित उदाहरण दिया है।—

"प्रयाणे तव राजेन्द्र मुक्ता वैरि मृगी दृशाम्।
राजहंस गतिः पद्भ्यामाननेन शशि द्युतिः॥"

इसमें द्विवाक्यता अत्यन्त अव्यक्त है। इस पर भी भूषण के उक्त छन्द में जहाँ स्पष्ट रूप से दो वाक्य दृष्टिगोचर हो रहे हैं। फिर भी द्विवाक्यता न मानना अन्यायपूर्ण है।

तीसरा उदाहरण विरोध अलंकार का है। एक सम्पादक प्रवर का कहना है कि विरोध अलंकार अलग न होना चाहिए। उन्होंने भूषण की निम्नलिखित परिभाषा को भी भ्रामक बतलाया है।—

'द्रव्य क्रिया गुण में जहाँ, उपजत काज विरोध ।'

शि० भू० २८२ ।

साहित्य-दर्पणकार ने इस विरोध अलंकार की परिभाषा इस प्रकार की है ।—

जातिश्चतुर्भि र्जात्याद्यैर्गुणो गुणादि भिस्त्रिभिः ।
क्रिया क्रिया द्रव्याभ्यां यद् द्रव्यं द्रव्येण वा मिथः ॥
विरुद्ध मेव भासेत् विरोधोऽसौ दशाकृतिः ।*

भूषण का उदाहरण भी देखिये ।—

श्री सरजा सिव तो जस-सेत सों, होत हैं वैरिन के मुँह कारे ।
'भूषन' तेरे अरुन्न प्रताप सपेद लसे कुनबा नृप सारे ॥

शि० भू० १८३ ।

साहित्य-दर्पण का उदाहरण भी लीजिये ।—

"तव विरहे मलय मरुद्दवानलः शशि रुचोऽपि सोष्माणः ।
हृदय मलिरुत मपि भिन्ते, नालिनी दलमपि निदाघरविरस्याः ॥ †

इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि 'शिवराज भूषण' और 'साहित्य दर्पण' की परिभाषाएँ आपस में मिलती हुई हैं । उनके उदाहरण भी एक से ही हैं । अतः यह निश्चित है कि भूषण ने न तो विरोध अलंकार के मानने में भूल की है और न उनकी परिभाषा में कोई भ्रम दिखाई देता है ।

हाँ, 'साहित्य दर्पण'-कार ने विरोधालंकार के जो दस भेद माने हैं, वे भूषण ने नहीं लिये । उनके न मानने में कोई अनौचित्य भी नहीं है । तथापि, उक्त सम्पादक जी का कथन है कि

---

* 'साहित्य-दर्पण' दशमः परिच्छेदः, पृष्ठ ६८ ।

† 'साहित्य-दर्पण' दशमः परिच्छेदः पृ० २०५ ।

यह विषमालंकार का भेद होना चाहिए। परन्तु विषम अलंकार की परिभाषा ही इससे नितान्त भिन्न है। यथा—

"कहाँ बात यह कहँ वहै, यों जहँ करत बखान।
तहाँ विषम भूषण कहत, 'भूषण' सुकवि सुजान॥

शि० भू० २०६।

इस अलंकार का भूषण ने यह उदाहरण दिया है—

"बापुरो एदिल शाह कहाँ
कहाँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी।"

शि० भू० २०७।"

चन्द्रालोककार ने भी विषमालंकार का प्रथम रूप इसी प्रकार व्यक्त किया है। जैसे—

'केयं शिरीष मृद्वङ्गी कतावन्मदनज्वरः।*

परन्तु इसका दूसरा लक्षण और उदाहरण इससे नितान्त भिन्न है। इसलिए भूषण ने उसे विरोध माना है। यथा—

"विरूप कार्यस्योत्पत्तिरपरं विषमं मतम्।
कीर्तिंप्रसूते धवलां श्यामा तव कृपाणिका॥"†

चन्द्रालोक के इन दोनों भेदों में कोई साम्य नहीं है। अतः इसे भूषण का विरोध अलंकार मानना ही युक्ति युक्त है। इसमें भी भूषण की व्युत्पन्न मति का स्पष्ट दर्शन होता है। इसमें आलंकारिकता भी न मानना भूल है। इसके लिए भूषण का उक्त उदाहरण ही पर्याप्त है। इन उदाहरणों से हम सहज ही

---

* "चन्द्रालोक" पृष्ठ १०५।
† "चन्द्रालोक" पृष्ठ १०५।

भूषण की आलंकारिक योग्यता और गंभीर अध्ययन का अनुमान कर सकते हैं। उनके ऊपर थोपे गये आक्षेपों का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

त्रिनेत्र जी ने अपने लेखों द्वारा 'भूषण विमर्श' पर जहाँ अन्य प्रकार के आक्षेप किये हैं, वहाँ अलंकारों पर भी विचार करने की कृपा की है। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि पं० विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र इत्यादि पाँच सज्जनों ने 'शिवराज भूषण' पर एक टीका लिखी है। उसमें अनेक आक्षेप-जनक बातों के साथ 'शिवराज भूषण' के कई अलंकारों में भी दोष दिखाने का निरर्थक प्रयास किया है। 'भूषण विमर्श' के आलंकारिक अध्याय में श्री विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र आदि पंचवर्गीय सम्पादकों की भूलें दिखलाई गई हैं। जिन्हें वे भूषण के सिर थोप रहे थे। विद्वत्समाज ही इसका निराकरण कर सकता है कि भूषण की आलंकारिक रचनाएँ संस्कृत आलंकारिकों से भी कितनी महत्वपूर्ण एवं विशेष योग्यता से परिपूर्ण हैं। इसका उत्तर तो दिया ही क्या जाता! हाँ, जो उत्तर दिया गया है, उसे ही अविकल रूप में उद्धृत करना पर्याप्त होगा। त्रिनेत्र जी लिखते हैं।—'भूषण की आलंकारिकता' नामक अध्याय में

"भूषण के अलंकार-विधान का वैशिष्ट्य या उनकी आचार्यता न दिखला कर पूर्व की 'रचनाओं में दिखाये गये दोषों का परिहार करने का दुस्साहस' किया गया है। जो यह भी नहीं जानता कि आक्षेप और प्रतीप में जमीन-आसमान का अन्तर है, जो केवल जो. सो शब्द के प्रयोग को निदर्शना (प्रथम) माने बैठा है, जो यह भी नहीं जानता कि विषमालंकार के कई भेद

होते हैं, और विरोधाभास उसके दूसरे भेद से भिन्न है, वह न जाने कितनी अद्भुत बातें लिख सकता है।"

ये हैं पं० विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र के उद्गार भरे विवेचन और इस आक्षेपपूर्ण अनर्गल कथन में कितना अन्तर है। इसे पाठक दोनों को देखकर ही अनुमान कर सकते हैं। पाठकगण स्वयं देखें कि मैंने जो, सो के प्रयोग को ही 'निदर्शना' कहा है अथवा उसके साथ कुछ और भी जुड़ा हुआ है' जो कि उसका प्रधान लक्षण है। इसी प्रकार 'विरोध' और 'विषम' अलंकारों के स्वरूपों का निरूपण भी हँसी में नहीं उड़ाया जा सकता। "पंचम-प्रतीप' संबंधी भूषण की मौलिक खोज को इस रीति से हास्यास्पद बनाना अपनी योग्यता का वास्तविक परिचय देना नहीं तो क्या है?

भूषण की रचना में वैदिक भावना

आर्ष साहित्य के पश्चात् वैदिक भावना लुप्तप्राय हो गई थी। यही कारण है कि भूषण के पहले किसी भी कवि की रचनाओं में उन भावनाओं का दर्शन नहीं होता। गोस्वामी तुलसीदास जी ने वेदों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और उनके द्वारा भगवान् रामचन्द्र जी की स्तुति भी कराई है, परन्तु भूषण की रचनाओं में उन भावनाओं का जैसा सहज, स्वाभाविक और उत्कृष्ट वर्णन मिलता है, वैसा अन्य कवियों की रचनाओं में नहीं। भूषण ने वैदिक भावना को फिर से जाग्रत किया और वीर रस में रँगकर उसे पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया है। 'शिवराज भूषण' के मंगलाचरण में ये लिखते हैं।—

"विकट अपार भव पंथ के चले को श्रम,
हरन करन विजना से ब्रह्म ध्याइयं।

यहि लोक परलोक सुफल करन कोक-
नद से चरन हिये आनि कै जुड़ाइये।
अलि कुल कलित कपोल ध्यान ललित,
अनन्द रूप सरित में 'भूषन' अन्हाइये।
पाप तरु भञ्जन विघन गढ़ गञ्जन,
जगत मनरञ्जन द्विरद मुख गाइये।
शि० भू० १।

इस छन्द में गणेशरूप ब्रह्म की स्तुति की गई है, जो अपार और भयावने संसार के मार्ग को सुरक्षित रखता है।

इस प्रार्थना द्वारा भूषण वैदिक मंत्रों की भाँति सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों भावों को व्यक्त करनेवाली स्तुति करते हैं। इस स्तुति में ब्रह्म शब्द निराकार, सर्वव्यापक परमात्मा के लिए आया है। अध्यात्म भाव में जहाँ हृदय की शुद्धि, म की प्रसन्नता और उत्साह आदि के लिए प्रार्थना की गई है, वहाँ सांसारिक विजय की भी आकांक्षा दृष्टिगोचर होती है। द्विरद कह कर गढ़भंजनी रूप तो व्यक्त किया ही गया है, गणेश के इस रूप में एक और विशेषता है कि गणेशजी का एक दाँत परशुराम जी ने तोड़ दिया था। इससे उन्हें अपमान भी सहन करना पड़ा था हमारा यह राष्ट्रिय कवि पराजित गणेश ब्रह्म को उपासना के लिए सामने नहीं लाना चाहता। अतः गणेश के द्विरद रूप की प्रर्थना करने को कहता है।

इसी ग्रन्थ में दूसरी प्रार्थना देवी की है। इसमें शिवाजी की आध्यात्मिक भावना को संसार व्यापी होने के लिए प्रार्थना की गई है।

अब सूर्य की उपासना-सम्बन्धी छन्द देखिये—

"तरनि,जगत जलनिधि तरानि, जय-जय आनँद ओक।
कोक कोकनद सोकहर, लोक-लोक आलोक॥"

इस स्तुति का वैदिक सूर्योपासना से मिलान कीजिये।

चित्रंदेवाना मुद गादनीकं चक्षुमित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आ प्रा द्यावा पृथिवी अंतरिक्षः सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

इन दोनों प्रार्थनाओं में बहुत साम्य है। भूषण ने केवल कोक-कोकनद की संसार से उपमा देकर उसे आलंकारिक रूप दे दिया है।

अब प्रधान वैदिक मंत्र गायत्री से भी इसी स्तुति का मिलान कीजिये।

"तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।"

इस मंत्र का भी पूरा भाव सूर्य की स्तुति में प्रतिबिंबित हो रहा है। इसका 'जय जय' शब्द "यो नः प्रचोदयात्" के भाव को बड़ी सुन्दरता से व्यक्त कर रहा है।

इस प्रकार भूषण की रचना में वैदिक भावनाएँ पूर्ण रूप से परिलक्षित होती हैं।

'शिवराज भूषण' एक अलंकार विषयक ग्रन्थ है। इस ग्रंथ के प्रथम उदाहरण में ही भूषण ने एक नई भावना व्यक्त की है। वे उपमालंकार का उदाहरण देते हुए लिखते हैं—

"मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हों,
सरजा मुरेस ज्यों दुचित ब्रजराज कौं।
शि० भू० २४।

इसमें शिवाजी की उपमा इन्द्र से और औरंगजेब की तुलना श्रीकृष्ण से की गई है। कुछ सज्जनों ने यह आपत्ति की है कि औरंगजेब से श्रीकृष्ण की उपमा देना अनुचित है। परंतु वे इस बात को भूल जाते हैं कि वेद में इन्द्र का पद विष्णु से ऊँचा माना गया है। यद्यपि पुराणों में विष्णु को इन्द्र से ऊँचा पद दिया गया है। श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार माने जाते हैं। अतः यहां पर इन्द्र को विष्णु से श्रेष्ठ दिखलाने के विचार से ही यह उपमा दी गई है। इस प्रकार भूषण ने वैदिक मार्ग का ही अनुगमन किया है।

इस भाव को भूषण ने और भी अनेक उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया है। 'शिवराज भूषण' के छन्द नं० १०३ में शिवाजी के पहाड़ी किलों का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

"इन्द्र कौ अनुज तैं उपेन्द्र अवतार याते,
तेरा बाहुबल लै सलाह साधियतु है।
पाँय तर आय नित निडर बसाइबे कौं,
कोट बाँधियतु मानो पाग बाँधियतु है॥"

यहाँ पर शिवाजी को इन्द्र का अनुज उपेन्द्र (विष्णु) का अवतार कहा गया है। इन्द्र पहाड़ों का शत्रु माना जाता है। शिवाजी द्वारा इनके रक्षणरूप फल की उत्प्रेक्षा की गई है। इन्द्र और पहाड़ सम्बन्धी इसी भाव को व्यक्त करनेवाला एक वेद मंत्र, जिसमें इन्द्र की महत्ता प्रकट की गई है। इस प्रकार है—

"युवं तन्मिद्र पर्वता पु-ो युधायोनः प्रतन्याद पतं—
तमित्सदृतं वज्रेण तन्त मिद्धतम्। दूरे चराय
छन्त्यद्ध गहनं यदि नक्षत्। अस्माकं शत्रून्
परिशूर विश्वतो दर्मा दर्पीष्ट विश्वतः।

अतः निश्चित है कि भूषण उक्त कथन द्वारा वैदिक सिद्धान्त का ही प्रतिपादन कर रहे हैं।

भूषण ने 'शिवराज भूषण' के छन्द नं० ५ और ८ में सरजा, सीसौदिया, भौंसिला और खुमान शब्दों की जो निरुक्ति की है, वह वैदिक ढंग पर ही की गई है। इस प्रकार वे जनता के समक्ष वैदिक भावों को रखना चाहते थे।

वैदिक उपासना

भूषण ने सामयिक परिस्थिति का अनुशीलन कर निर्गुण और सगुण दोनों उपासनाओं का आधार लिया है। वस्तुतः वैदिक उपासना निर्गुणात्मक होने के लिए ही आदेश करती है। भूषण कालीन समाज सगुणोपासक था, तथापि उन्होंने किसी विशेष उपासना को न मानकर दोनों का ही प्रतिपादन किया है। इस उपासना में मुसलमानों की विचारधारा को भी स्वीकार करके उन्होंने हिंदू-मुसलमानों का स्थायी मेल स्थापित करने का भी प्रयत्न किया है। भूषण का यह आयोजन स्तुत्य और उनकी बुद्धिमत्ता का परिचायक है। वे कहते हैं—

"चाहत निर्गुण-सगुण को, ज्ञानवन्त की बान।
प्रकट करत निर्गुण सगुण, शिवा निवाजी दान॥

शि० भू० १४३।

भूषण की यही विचारधारा उन महाशयों के लिए स्पष्ट उत्तर है जो भूषण पर जातिगत द्वेष फैलाने का दोष लगाते हैं। उनकी रचना में अनेक वर्ण हैं, जिनमें जातिगत द्वेष को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। उसमें मूर्ति-पूजा तथा देवी-देवताओं की उपासना के लिए कोई उच्च-स्थान नहीं है। अनेक स्थलों पर वे इन्हें उपेक्षणीय कहते हैं। यथा—

यहाँ भूषण की वीर रस की रचनाओं के कुछ * नमूने अन्य कवियों की रचनाओं-सहित तुलनात्मक दृष्टि से उद्धृत किये जाते हैं। मरहठों में नवजीवन प्रदान करने और उत्साह भरने के लिए भूषण कहते हैं —

"उद्धत अपार तव दुंदुभी धुकार साथ,
लंघैं पारावार वालवृन्द रिपुगन के।
तेरे चतुरंग के तुरंगन के रँगे रज,
साथ ही उड़ात रजपुंज हैं पटन के।
दच्छिन के नाथ सिवराज ! तेरे हाथ चढ़ैं,
धनुष के साथ गढ़-कोट दुरजन के।
'भूषन' असीसैं तोहि करत कसीसैं पुनि,
बानन के साथ छूटैं प्रान तुरकन के॥"

इस छन्द में 'तुरकन' शब्द केवल औरंगजेबी सेना के लिए प्रयुक्त हुआ है, सम्पूर्ण मुसलमानों के लिए नहीं। 'तुर्क' शब्द का अर्थ भी 'अत्याचारी' होता है। भूषण के इस युद्ध प्रोत्साहन से सरवाल्टर स्काट की उस ललकार की तुलना कीजिये जो 'लेडी ऑव द लेक' में वर्णित है।

"Hail to the chief who in triumph adavences.
Honour'd and blessed be the ever green pine.
Long may the tree in his banner that glances,
Flourish the shetter andgrace of our line.
Roderigh vich Alpine dhu, ho ! ieroe. †

यद्यपि उपर्युक्त वर्णन बड़ा ही प्रभावशाली है, परंतु भूषण की दहाड़ इसमें कहाँ ?

युद्ध में हाथियों की दशा का चित्र अंकित करते हुए वे कहते हैं।

"उतै पातसाहजू के गजन के ठट्ठ छूटे,
उमड़ि घुमड़ि मतवारे घन कारे हैं।
इतै सिवराज जूके छूटे सिंहराज,
औ विदारे कुंभ करिन के चिक्करत भारे हैं।
शि० बा० ३२।

इसी भाव को महाकवि 'चन्द वरदाई' पृथ्वीराज के युद्ध का दिग्दर्शन कराते हुए इस प्रकार व्यक्त करते हैं।—

"गही तेग चहुवान हिंदुवान एनं।
गजं जूथ परि कोप केहरि समानं।
करे रुंड मुंडं करी कुम्भ फारै।
वरं सूर सामंत हुकि गर्ज मारै।

इन दोनों छन्दों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि चंदवरदाई की अपेक्षा भूषण की रचना अधिक उत्कृष्ट एवं वीर रस की सृष्टि में कहीं अधिक अनुकूल बैठती है। भूषण के 'चिक्करत' शब्द में जो ओज-पूर्ण भावना निहित है, वह चंद के गर्ज से पूरी नहीं होती तथा उनके 'हुकि' शब्द से 'शक्ति' शब्द के प्रभाव में न्यूनता प्रतीत होती है।

भूषण की रचना में जोश की भावना क्रमशः प्रस्फुटित होती जाती है। उनकी शब्द व्यञ्जना भी उत्तम है। चंद ने उसी भाव

को अनुस्वार द्वारा प्रकट करने का प्रयत्न किया है; परन्तु उन्हें भूषण की सी सफलता नहीं मिल सकी। अब इसी भाव से मिलती-जुलती गंग की रचना भी देखिये।—

"झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान,
एकन ते एक मानो सुषमा जरद की।
कहै कवि 'गंग' तेरे बल की बयारि लागे,
फूटी गज-घटा घन-घटा ज्यों सरद की॥"

भाव-विकास की दृष्टि से यह छंद उच्च-कोटि का है परंतु भूषण ने शिवाजी को सिंहराज बनाकर बहुत ही उत्कृष्ट वीर रस का रूप दे दिया है। 'गंग' की 'हवा और बादल' की तुलना में वह उत्कर्ष नहीं दिखलाई देता।

भूषण की रचना में 'दुर्गा सप्तशती' का कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। भगवती चंडी अनंत शक्तिशालिनी तथा महिषासुर, मधुकैटभ, शुंभ, निशुंभ आदि दैत्यों का संहार करनेवाली मानी जाती हैं। इसलिए उनका आदर्श भूषण की कविता में फलित होना स्वाभाविक है। भूषण के पिता देवी के परम उपासक थे। भूषण ने भी 'शिवराज भूषण' के प्रारंभ में गणेश-वन्दना के पश्चात् जगज्जननी महाकाली की वन्दना की है। उन की रचना में कहीं-कहीं तो दुर्गा-सप्तशती के वाक्य के वाक्य ही अनूदित रूप में पाये जाते हैं। भूषण के निम्नलिखित छन्द को देखिये—

इसको पढ़कर सप्तशती के निम्नलिखित श्लोकों का स्मरण हो आता है।

"छिन्नेपि चान्ये शिरसि पतिता पुनिरुत्थिता।
कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीत परमाश्रिताः॥
नन्तृ तुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्य लयाश्रिताः।
कबन्धाश्छिन्न शिरसः शब्द शक्त्यष्टि पाणयः।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्ती देवी मन्ये महासुरः।

आगे फिर देखिये।—

"चंडी ह्वै घुमंडी अरि चंड मुंड चाव करि,
पीवत रुधिर कछु लावत न वार है।"

में 'चामुंडा पीत शोणितम्' का स्पष्ट आभास मिलता है। इसी प्रकार—

कालिका प्रसाद के बहाने तें खवायो महि,
बाबू उमराव राव पसु के छलनि सों।

छंदांश तो "मया तवात्रोपहृतौ चण्ड मुण्ड महा पशू" का भाषान्तर मात्र है।

इनके अतिरिक्त 'शिवराज भूषण' और दुर्गा सप्तशती के कुछ अन्य वाक्यांश भी टक्कर खाते से प्रतीत होते हैं। यथा—

(१) आदि सकति—'प्रकृतिस्त्वमाद्या'
(२) मधुकैटभ छलनि—'वञ्चिताभ्यामितितदा'
(३) विड्डाल विहडिनि—बिडालस्यानिका यात्पातया मास-चैशिर :—

भूषण के वर्णन में युद्ध का साक्षात् चित्र सा अंकित हो जाता है। इस विषय में ये उतने ही सिद्धहस्त हैं; जितने आँग्ल कवि सरवाल्टर स्काट वीर रस लिखने में। तुलना के लिए एक

छन्द भूषण का और कुछ पंक्तियाँ स्काट की 'मार्मियन' नामक पुस्तक से यहाँ उदाहरणार्थ उद्धृत हैं।

"मुण्ड कटत कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख-वृद्धि रखत मन।
भूत फिरत करि बूत भिरत सुर दूत घिरत तहँ।
चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहँ।
"इमिठानि घोर घमसान अति, 'भूपण' तेज कियो अटल।
शिवराज साहि तुव खग्ग बल, दलि अडोल बहलोल दल॥"

They close in clouds of smoke and dust,
with sword-sway and with lances thrust.
And such a yell was there.
Of sudden and portentious birth;
As if men fought upon the earth,
And finds in upper air;
O, life and death were in the shout,
Recoil and telly, charoe and rout.
And triumph and despair.*

यहाँ वर्णनात्मक शक्ति में कौन वढ़ा हुआ है, यह कहना सरल नहीं है। भूपण की रचना १७ वीं शताब्दी की है और स्काट १९ वीं शताब्दी में हुए हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि वे समय से कितना आगे वढ़े हुए थे।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी वीर रस का वर्णन बहुत सुन्दर किया है। कवितावली रामायण का एक उद्धरण यहाँ दिया जाता है।—

"दबकि दबोरे एक बारिधि में बोरे एक,
मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर चरन उखारे एक,
चीरि फारि डारे एक मींजि मारे लात हैं।
'तुलसी' लखत राम-रावन बिबुध बिधि,
चक्रपानि चंडीपति चंडिका सिहात हैं।
बड़े बड़े बान इत वीर बलवान बड़े,
जातुधान जूथप निपाते बात-जात हैं।"

अब भूषण का भी एक छन्द देखिये —

"गढ़न गँजाय गढ़ धरन सजाय करि,
छाँड़े केते धरम दुआर दै भिखारी से।
साहि के सपूत पूत वीर सिवराज सिंह,
केते गढ़धारी किये बन बनचारी से।
भूषण बखानै के ते दीन्हें बन्दीखाने, सेख—
सय्यद हजारी गहे रैयत बजारी से।
महता से मुगल महाजन से महाराज,
डाँड़ि लीन्हें पकरि पठान पटवारी से।"

शि० बा० ३४।

तुलसीदास जी ने हनुमानजी की प्रशंसा की है और भूषण शिवाजी की। 'तुलसी' के छन्द में असंभूत शक्ति और देवत्व-भावना के दर्शन होते हैं। परंतु भूषण की रचना में कहीं भी न तो असंभावना प्रतीत होती है और न दैवी शक्ति-समन्वित अलौकिकता ही पाई जाती है। पूरा छन्द स्वाभाविकता से आप्लावित है। वैसे दोनों ही छन्द ओज और प्रसाद गुणयुक्त हैं और उनमें वीर रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। तथापि मानव-चरित्र ही आदर्श एवं अनुकरणीय होता है। देव-भावना इससे परे की वस्तु है। इसलिए गोस्वामीजी की रचना हमारे अधिक काम की नहीं है।

भूषण और मतिराम की रचना में भी कुछ साम्यावस्था दिखलाई पड़ती है। मतिराम का शृंगार रस का दोहा इस प्रकार है।—

"अली चलीं नवलाहि लै, पिय पै साजि सिंगार।
ज्यों मतङ्ग अड़दार कौं, लिये जात गड़दार॥"

भूषण उसी भाव को वीर रस में ऐसे व्यक्त करते हैं।—

"दावदार निरखि रिसानो दीह दलराय,
जैसे गड़दार अड़दार गजराज को।"

उपर्युक्त दोनों छन्दों में मतवाले हाथी को पुचकार कर ले जाने की उपमा दी गई है। प्रथम छन्द में 'मुग्धा नायिका' है, दूसरे में वीर शिवाजी की प्रशंसा की गई है। दोनों वर्णन उत्तम हैं, परंतु यह उपमा वीर रस के ही अधिक उपयुक्त है। औरंगज़ेब के दरबार में शिवाजी जैसे वीर योद्धा के जाने का वर्णन इससे अधिक ओजपूर्ण शब्दों में हो ही नहीं सकता।

प्रथम मतिराम ने अपने 'ललित ललाम' में लिखा है—

"मूँछिन सौं राव मुख लाल रङ्ग देखि मुख,
औरन कौ मूँछन बिना ही स्याम रङ्ग भौ।"

उसी भाव को 'शिवराज भूषण' में भूषण ने इस प्रकार व्यक्त किया है।—

"तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भयौ,
स्याह मुख औरंग सिपाह मुख पियरे।"

इन दोनों छन्दांशों में से भूषण की रचना अधिक ओजस्विनी है। उस में वीर रस का पूर्ण उद्रेक हुआ है। मतिराम के छन्द में शत्रुओं पर बूंदी के राव का उतना प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता, जितना भूषण के छन्द में शिवाजी का। इन तुलनाओं से यह भली भाँति प्रकट हो जाता है कि वीर रस वर्णन में भूषण के सामने कोई खड़ा नहीं हो सकता।

'शिवराज भूषण' में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव

भूषण ने अपना ग्रंथ 'शिवराज भूषण' सितारा में ही बैठकर लिखा था। ग्रंथ-निर्माण में सहायक ऐतिहासिक घटनाएँ जानने के लिए उन्होंने महाराष्ट्र-साहित्य का अध्ययन भी किया था। इसीलिए वहाँ के साहित्य की ध्वनि भूषण में यत्र-तत्र सुन पड़ती है। इसी कारण मराठी भाषा के शब्द भी उनकी रचना में पर्याप्त रूप से पाये जाते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से इस स्थान पर वहाँ के कुछ साहित्यिकों के बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावों का दिग्दर्शन कराना अनुपयुक्त न होगा।

जयराम कवि शिवाजी के समकालीन थे। उनका 'राधा-माधव-विलास चम्पू' प्रसिद्ध ग्रंथ है। उसमें दस-बारह भाषाओं का

प्रयोग किया गया है। उसकी रचना गद्य और पद्य-दोनों ही में हुई है। उसके एक छन्द का अद्धांश यह है—

साहे खुमान को दान कहा विधि,
कैसे कियो निधि मोल लियो है।
कारन याको कह्यौ करतार ने,
सीसोदिये कुल सीस दियो है॥"

अब भूषण कृत "सीसौदिया" वंश की निरुक्ति पर भी विचार कीजिये। 'शिवराज भूषण' में वे लिखते हैं।—

"महावीर ता वंश में, भयो एक अवनीस।
लियो विरद सीसौदिया, दियो ईस कौं सीस।"

इन दोनों छंदों में अपूर्व भाव साम्य है! दोनों की निरुक्ति भी एक सी ही है। परंतु जयराम की निरुक्ति का ढंग कुछ उथला तथा उखड़ा हुआ है। और भूषण की निरुक्ति सार्थक व सटीक बैठती है।

'शिव भारत' नामक संस्कृत ग्रन्थ के कुछ श्लोक इस प्रकार हैं।—

तं वीर ग्रंथ सेनान्यं रां विधाय महामनाः। १७
अन्थानमूंश्चमूंनाथाँ स्तत्साह्यये समादिशत्। ५०
अम्बरः शम्बर समः प्रतापी याकुतो युतः। ५१
तथैवांकुश खानोऽपि निरंकुश गजक्रमः। ५२

भूषण के 'शिवराज भूषण' में इसी भाव का एक कवित्त यह है।—

"साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मदगल अफजलै पंजा-बल पटक्यो।

ता बिगरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सो आँकुस लै सटक्यौ।"

शि० भू० ६३।

इन दोनों रचनाओं में भाव-साम्यता होते हुए भी भूषण की कविता अधिक भावपूर्ण है। "आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यो" में जो आलंकारिक सौंदर्य है, वह 'शिव भारत' की रचना में नहीं दिखलाई देता।

'शिवराज भूषण' के २५६ वें छंद में भूषण लिखते हैं—

"गौर गरबीले अरबीले राठौर गह्यौ
लौहगढ़ सिंहगढ़ हिम्मति हरष ते।"

यही भाव 'शिव भारत' नामक संस्कृत ग्रंथ में इस प्रकार प्रकट किया गया है —

"सिंह लौहं महार्त्तं च प्रबलं च शिलोच्चयम्।
पुरन्दरम् गिरिं तद्वत् पुरीं चक्रावती मपि ॥"

उपर्युक्त छन्दों में सिंह गढ़ और लौहगढ़ दोनों का एक साथ वर्णन किया गया है, यद्यपि वे भिन्न-भिन्न समय में जीते गये थे।

"जेधे* शकावली-" में लिखा है कि ज्येष्ठ शुल्क ४ शुक्रवार को रस्सियों की सीढ़ियों द्वारा चढ़कर लौहगढ़ जीता गया था। 'शिव दिग्विजय' नामक ग्रंथ में लिखा है कि यह किला शिवाजी के सरदार 'माणकोजी दहातोड़े' ने विजय किया था और सिंहगढ़ का किला उदयभान राठौर की मातहती में था। जिसे "तानाजी मौलसरे" ने सर किया था।

---

*'माधुरी' वर्ष ८, खंड १, संख्या ४, कार्तिक सं० १९८६ पृ० ७१० ।

ऊपर वर्णित अवतरणों से स्पष्ट है कि 'शिवराज-भूषण' के अनेक छन्दों में महाराष्ट्र ग्रन्थों के छन्दों की ध्वनि गूँजती है। इससे यह प्रमाणित होता है कि भूषण ने अपना ग्रन्थ रचने के पूर्व इन ग्रन्थों को अवश्य देखा होगा।

भूषण की रचना में मौलिकता

हिन्दी के प्राचीन साहित्य में मौलिक रचनाओं का प्रायः अभाव है। विद्वानों का विचार था कि सूरदास की कविता में मौलिक भावनाओं का अधिक समावेश हुआ है। परन्तु गंभीरता-पूर्वक विचार करने से ज्ञात होता है कि भूषण की रचना में सूर से भी अधिक मौलिकता है। सूरसागर में जहाँ मौलिकता की मात्रा अधिक पाई जाती है, वहाँ उसमें पिष्टपेषण भी कम नहीं है। एक ही विचार को इतनी बार दोहराया गया है कि उसकी सुन्दरता न्यून पड़ जाती है। भूषण की यह विशेषता है कि उनकी रचना में जहाँ मौलिकता सबसे अधिक दिखलाई देती है, वहाँ उसमें पिष्टपेषण नाम को भी नहीं है।

'शिवराज भूषण' की प्रारंभिक गणेश-वन्दना में ही हमें भूषण की मौलिकता का पूरा आभास हो जाता है।

—"विकट अपार भव पंथ के चले को श्रम,
हरन करन विजना से ब्रह्म ध्याइये।

❀ ❀ ❀
❀ ❀ ❀

पाप तरु भंजन विघन गढ़ गंजन,
जगत मनरंजन द्विरद मुख गाइये।"

एक ओर तो यह प्रार्थना वीररस के अनरूप है दूसरी ओर

इसमें मौलिक भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। गणेश जी को जहाँ पापनाशक कहा है, वहाँ युद्ध में हाथियों द्वारा गढ़ का दरवाजा तोड़े जाने का संकेत भी किया गया है। इस प्रकार हाथी के स्वभाव का चित्रण कर मानव प्रकृति का सामञ्जस्य बड़े अनोखे ढंग से किया गया है। 'विजना से ब्रह्म' कहकर आध्यात्मिकता और सांसारिकता का मिश्रण भी खूब किया गया है।

'शिवराज भूषण' के छन्द नं० ३ में सूर्य की उपासना का ढंग भी देखने योग्य है।—

"तरनि जगत जलनिधि तरनि, जय-जय आनँद ओक।
कोक कोकनद सोक हर, लोक लोक आलोक॥

इसमें सूर्य की तुलना नौका से की गई है। जिससे जगत रूपी जलनिधि से पार हो सकें। दूसरी पंक्ति में वैदिक भावना की कितनी अच्छी पुट दी गई है।

भूषण ने राजवंश वर्णन में 'सरजा', 'सीसौदिया', 'भौंसिला' और 'खुमान' की निरुक्ति वैदिक ढंग पर ही की है। इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं।

"ताते' 'सरजा' विरद भो, सोभित सिंह समान।
रन भूसिला सु 'भौंसिला' आयुष्मान खुमान॥"

शि० भू० ८।

"महावीर ता वंस मैं, भयो एक अवनीस।
लियौ विरद "सीसौदिया", दियौ ईश कौं सीस॥"

इन निरुक्तियों में नवीनता के साथ-साथ अनूठापन भी है। शिवाजी के लिए सीसौदिया की निरुक्ति ऐतिहासिकता के विरुद्ध होते हुए भी उत्तेजक और महत्वपूर्ण है।

शिवाजी के प्रसिद्ध किले रायगढ़ का वर्णन करते हुए भूषण लिखते हैं।

"जा मधि तीनहुँ लोक की दीपति,
ऐसो बड़ो गढ़ राज विराजै।
वारि पताल सिमाची मही,
अमरावति की छवि ऊपर छाजै।"

शि० भू० १५।

इस छंद में रायगढ़ को तीनों लोकों में उत्तम बतलाते हुए उसकी 'माची' का उल्लेख किया है। रायगढ़ के किले में तीन माची होने का उल्लेख यदुनाथ सरकार ने अपने 'शिवाजी' नामक ग्रन्थ में भी किया है। इसके निचले भाग पर पाताल निछावर है। तीन गढ़ियों पर पूरी पृथ्वी तथा ऊपरी भाग पर देव लोक निछावर होता है। फिर भूषण कहते हैं -

"पावक तुल्य अमीतन कौं भयौ
मीतन कौं भयौ धाम सुधा को।
आनँद भौ गहिरो समुदै,
कुमुदावलि तारन को बहुधा को।"

शि० भू० ३७।

यहाँ शिवाजी को अग्नि और चन्द्र के समान कहा गया है वे शत्रुओं को अग्नि की भांति दुखदाई हैं, परन्तु मित्रों के लि चन्द्रवत् (समुद्र, कुमुद और तारों को) समान रूप से सुखदाय हैं। कैसी अनोखी उपमा और मनोहारिणी शब्द व्यंजना है

अब प्रतीपालंकार का एक उदाहरण देखिये—

"शिव प्रताप तव तरनि सम, अरि पानिप हर मूल।
गरब करत केहि हेतु है, बड़वानल तो तूल॥"

शि० भू० ४४।

यहाँ सूर्य की उपमा शत्रु के पानिप हरण के लिए देना वीररस के उपयुक्त ही है। भूषण ने शिवाजी को 'इंद्र जिमि जंभ पर......सेर सिवराज है" नामक छंद में शिवाजी के लिए ११ उपमायें दी हैं। इनमें कई नवीन हैं। छंद नं० ६१ में कलियुग और समुद्र का रूपक भी अवलोकनीय है।

"कलियुग जलधि अपार उद्ध अधरम्म उर्म्मिमय।
लच्छनि लच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ मगरचय॥
नृपति नदी नद वृन्द होत जाको मिलि नीरस।
भनि 'भूपन' सब भुम्मि घेरि किन्निय सुअप्प बस॥
हिंदुआन पुन्य गाहक बनिक, तासु निवाहक साहि सुव।
वर बादवान किरवान धरि, जस जहाज शिवराज तुव॥"

शि० भू० ६१।

इस छंद द्वारा भूषण ने संसार रूपी समुद्र में शिवराज के यशरूपी जहाज को तिराकर भारत का निर्वाह करवाया है। इसमें बादबान को किरवान बतलाकर वीरत्व की भावना भी प्रस्फुटित कर दी गई है। इसी प्रकार 'शिवराज भूषण' के छंद ६३ में—

"आकुत महाउत सो आँकुस लै सटक्यौ।"

कहकर ऐतिहासिक भावना को कैसी सुन्दरता से साहित्यिक रूप दे दिया है। बीजापुर के सेनापति अफजल ख़ाँ के साथ

याकूत खाँ और अंकुश खाँ भी शिवाजी को पकड़ने गये थे। अन्त में अफजल खाँ के मारे जाने पर ये दोनों सरदार बीजापुर को भाग गये थे। इस छंद में अंकुश को हाथी के चलाने के अस्त्र की उपमा देकर अंकुश का निर्वाह वड़ी कुशलता से किया गया है।—

"क्रिरवान वज्र सों विपच्छ करिवे के डर
आनि कै कितेक गहे सरन की गैल हैं।
मघवा मही में तेजवान सिवराज वीर,
कोट करि सकल सपच्छ किये सैल हैं॥"

उपर्युक्त छंद में वर्णित है कि इन्द्र ने पहाड़ों को पच्छहीन कर दिया था। अब इन्द्र के छोटे भाई विष्णु ने शिवाजी के अवतार रूप में पहाड़ी किले बनाकर फिर उन्हें सपच्छ कर दिया है। कैसी अनोखी उपमा है। वीररस की उद्भावना इससे उत्कृष्ट रूप में कोई कवि क्या कर सकता है?

इसी प्रकार के उदाहरणों से भूषण की सम्पूर्ण रचनाएँ ओत-प्रोत हैं। कहीं से भी कुछ छंदों के पढ़ने पर हम सरलता-पूर्वक उसका आभास पा सकते हैं। 'शिवराज भूषण' के छंद नं० ६८, ७२, ७५, ७७, ७९, ८१’ ८३, ९०, ९६, ९९, १०१, १०२, १०३, १०५, १११, १२४, १३२, १४०, १५५, १६१ इत्यादि तथा 'शिवा बावनी' 'छत्रसाल प्रशंसा' और फुटकर रचनाओं के अधिकांश भाग को देखने पर भूषण की मौलिकता सहज ही सिद्ध हो जाती है।

७—समाज-सुधार की योजना

विवाह का आदर्श

भूषण ने राजनीतिक क्षेत्र में जो कार्य किया है, वह तो सर्व साधारण को विदित है; परन्तु उन्होंने समाज-सुधार के कार्य में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन किये हैं, उनकी ओर हिन्दी-जगत् का ध्यान अभी आकर्षित ही नहीं हुआ है। यहाँ उसी पर विचार करना अभीष्ट है।

भूषण को ठीक-ठीक समझने के लिए इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि तत्कालीन परिस्थिति में भूषण का स्थान बहुत ऊँचा था। उस समय केवल हिन्दू समाज ही नहीं वरन् मुसलमान समुदाय भी उनकी कृपा की आकांक्षा रखता था। उन्हें अपने दरबार में बुलाने के लिए राजा, महाराजा और बादशाह तक विशेष प्रयत्नशील रहते थे तथा उनके पहुँचने पर गौरव का अनुभव करते थे। उनकी सामाजिक भावना को वास्तविक रूप में समझने के लिए उन्हीं के शब्दों में अकबर तथा उनके दो मंत्रियों (महाराजा मानसिंह और राजा बीरबल) की प्रशंसा का वर्णन करना असंगत न होगा।

निम्नलिखित छंद में जयपुर-नरेश महाराजा मानसिंह की प्रशंसा सवाई जयसिंह के सामने उनका पूर्वज मानकर की गई है।—

"अकबर पायो भगवन्त के तनै सौं मान,
बहुरि जगतसिंह महा मरदाने सों।
'भूषण' त्यों पायो जहाँगीर महासिंह जू सों,
साहिजहाँ पायो जयसिंह जग जाने सों।
अब अवरङ्गजेब पायो रामसिंह जू सों,
औरौ दिन-दिन पैहैं कूरम के माने सों।
केते राजा राय मान पावैं पातसाहन सों,
पावैं पातसाह मान मान के घराने सों॥"*

इस छन्द को कुछ सज्जनों ने जयपुर-नरेश रामसिंह की प्रशंसा में माना है; परंतु वास्तव में यह छन्द महाराजा मानसिंह की प्रशंसा में कहा गया है। इसीलिए आदि और अंत में उन्हीं का वर्णन है। दूसरों को तो उनका वंशज होने के कारण महत्व दिया गया है। मान के घराने में कहकर इस बात को बहुत ही स्पष्ट कर दिया गया है। मानसिंह का अकबर से विशेष सम्बन्ध था। भूषण भी मानसिंह की नीति को प्रशंसनीय समझते थे। वे हिन्दू-मुसलमानों के मेल की भावना को दृढ़ीभूत करके समाज-सुधार को आगे बढ़ाना चाहते थे। महाराजा मानसिंह मुसलमानों से वैवाहिक संबंध भी कर चुके थे। जिसके कारण उन्हें सामाजिक भर्त्सना भी सहनी पड़ी थी। परन्तु वे सतत प्रयत्नशील रहे। भूषण ने इसी भावना द्वारा सवाई जयसिंह को इसी साँचे में ढालने का प्रयत्न किया था और उनके

* 'भूषण ग्रन्थावली' फुटकर छन्द ३४।

पूर्वजों की महत्ता प्रकट करते हुए उन्हें उसी प्रणाली पर चलने का उपदेश दिया था।

राजपूताने के अन्य अनेक राजाओं ने महाराजा मानसिंह की इस प्रणाली का पूर्ण रूपेण अनुकरण किया था। केवल चित्तौड़-नरेश महाराणा प्रतापसिंह के विरोध के कारण सुधार का यह कार्य वहीं का वहीं अवरुद्ध होकर रह गया। राणा प्रताप के तप, त्याग और बलिदान की तीव्र धारा में भारतीय समाज को उस सुधार की ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिला, जिसे हमारे राष्ट्रिय कवि ने पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया था। उन्हीं के आदेशानुसार जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह ने दो बड़ी-बड़ी सभाएँ करवाई थीं। जिनमें उक्त प्रकार के निर्णय-स्वरूप विद्वानों द्वारा दो व्यवस्थाएँ बनवाई गई थीं। सवाई जयसिंह ने भूषण के कहने से ही उत्तरी भारत के नरेशों का नेतृत्व ग्रहण किया था। जिसमें स्वराज्य-भावना का उद्योग निहित था। इसका उल्लेख सावरकर महोदय ने अपनी 'हिन्दुत्व' नामक पुस्तक में स्पष्ट रीति से किया है।

अकबर के दूसरे मंत्री राजा बीरबल की प्रशंसा भूषण ने 'शिवराज भूषण'' के प्रारंभ में इस प्रकार की है।—

"बीर बीरबर से जहाँ, उपजे कवि अरुभूप।
देव बिहारीश्वर तहाँ, विश्वेश्वर तद्रूप।"

इस छंद में बीरबल की कवि और राजा के रूप में प्रशंसा की गई है। उन्होंने बिहारीश्वर का मंदिर कानपुर-हमीरपुर रोड पर सजेंती गाँव में बनवाया था। बीरबल ने अकबर का "दीन इलाही" मजहब स्वीकार किया था। जिसके सारे सिद्धांत वैदिक भावना पर अवलंबित थे।

इन्हीं दोनों मंत्रियों की सहायता से अकबर ने सिद्धान्त रूप से हिन्दू-मुसलमानों के मेल की स्थापना की थी और दोनों को वैवाहिक सूत्र में भी आबद्ध कर लिया था। भूषण ने भी इस सिद्धान्त का पूर्ण समर्थन करके उसे और आगे बढ़ाने का उद्योग किया था। उन्होंने मुसलमानों को हिन्दू लड़कियाँ देना ही उचित नहीं समझा, वरन् मुसलमान लड़कियों से हिन्दू लड़कों के विवाह-संबंध को भी हिन्दू-समाज में प्रचलित कराने का उद्योग किया था।

भूषण ने ऐसे दो प्रसिद्ध विवाहों में भी हाथ बँटाया था। उनमें एक तो भगवन्तराय खीची के लड़के का था और दूसरा बाजीराव पेशवा का। जब भगवन्तराय खीची ने कोड़ा * जहानाबाद के मुसलमान सूबेदार को मारकर उसका राज्य छीन लिया था। उस समय उक्त सूबेदार की लड़की खीची के हाथ पड़ गई थी। तब उसने अपने लड़के शेरसिंह के साथ उस लड़की का विवाह कर दिया था। भगवन्तराय खीची के दरबार में भूषण का पर्याप्त सम्मान था। अतः इस विवाह के आयोजन में भूषण का हाथ अवश्य रहा होगा। क्योंकि उन्हीं के हृदय की यह वैदिक उद्भावना समाज-सुधार के रूप में प्रस्फुटित हुई थी और वे ही इसके प्रवर्तक थे। भूषण के हृदय में खीची का जो सम्मान था, वह उनके उन दोनों छंदों से भली भाँति व्यक्त होता है, जो उन्होंने उसके निधन पर कहे थे।

बाजीराव पेशवा ने मुसलमान लड़की मस्तानी से ब्राह्मण होते हुए भी विवाह किया था। इस विवाह में भी भूषण का पूरा

---

* हिन्दी पाण्डुलिपि सं० १२६ की खोज रिपोर्ट, परिशिष्ट २।

हाथ था और वर-कन्या दोनों ही पक्ष उनके आश्रयदाता थे। मस्तानी के विषय में हम पहले लिख चुके हैं। ❀

महाराज छत्रसाल के प्रसिद्ध गुरु स्वामी प्राणनाथ के विचार भी भूषण के विचारों से मिलते थे। उन्होंने 'कुलजम' (अंजीर-रस) नामक एक ग्रंथ की रचना की थी। इसमें हिन्दू मुसलमानों के मिश्रित भावों को एकरूपता देते हुए विवेचना की गई है और कृष्ण तथा मोहम्मद को समान रूप में चित्रित किया गया है। यह पुस्तक अमीनुद्दौला पबलिक लाइब्रेरी केसरबाग लखनऊ में हस्तलिखित रूप में सुरक्षित है।

ये घटनाएँ तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। साथ ही भूषण की कार्यशैली का भी भलाभाँति दिग्दर्शन करा देती हैं।

इस अवसर पर यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि बाजीराव पेशवा और मस्तानी के विवाह से छत्रपति साहू भी सहमत थे। क्योंकि वे २७ वर्ष की अवस्था तक औरंगजेब की कैद में रहकर मुसलमानी संस्कृति के भी अभ्यस्त रह चुके थे। उनपर हिन्दू-मुसलिम संयुक्त संस्कृति का पर्याप्त प्रभाव, पड़ चुका था। महाकवि भूषण के विचारों का भी उनपर अवश्य प्रभाव पड़ा होगा। महाकवि भूषण ने परोक्ष रीति से इस प्रकार के विवाहों का अपनी रचना द्वारा भी समर्थन किया है—

"भेजैं लिखि लग्न शुभ गनिक निजाम बेग,
इतै गुजरात उतै गंग ज्यों पतारा † की।

❀ यहाँ इतना ही पर्याप्त है कि बाजीराव पेशवा से उसके दो पुत्र हुए थे जो 'बाँदा' के नवाब के नाम से प्रसिद्ध थे।

† 'शिवराज भूषण'

एक जस लेत अरि फेरा फिरि गढ़हू कौं,
खंडि नवखंड दिये दान ज्यों ध्रुव तारा की।
ऐसे व्याह करत विकट साहू साहन सौं,
हद्द हिन्दुआन जैसे तुरुक ततारा की।
आवत बरात सजे ज्वान देस दच्छिन के,
दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारा की।

इसी प्रकार के और भी कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं इस रीति से भूषण ने प्राचीन पद्धति का अनुगमन व समाज-संशोधन का महान् कार्य प्रारंभ किया था। स्थायी मे के प्रतिपादन करनेवाले ऐसे महानुभाव को यदि कोई व्यां समाजद्वेषी कहता है तो फिर उसकी बुद्धि की बलिहारी है।

वर्ण-व्यवस्था-संबंधी सुधार

यद्यपि भूषण का प्रधान लक्ष्य देश का राष्ट्रियकरण श्र स्वराज्य-संस्थापन ही था। उनकी बाहरी कार्यवाहियों से देख चुके हैं कि वे समाज-सुधार में हिन्दू-मुसलमानों के ए करण के लिए वैवाहिक संबंध तक के पक्षपाती थे। अब व साहित्य से अवलोकन करना है कि उसमें समाज-संशोधन सामग्री कहाँ तक प्रस्तुत है।

भूषण-ग्रन्थावली में कहीं पर भी स्त्रियों अथवा शूद्रे निन्दा की चर्चा नहीं है और न उनकी भर्त्सना ही की गई है गोस्वामी तुलसीदास जी की रचना में पाया जाता है वर जाति की प्रतिष्ठा और मर्यादा-रक्षण का उनके मन में ध्यान रहता था। वे कहते हैं —

"हिन्दुआन द्रुपदी की इज्जति बचैबे काज,
झपटि विराटपुर बाहर प्रमान की।
शि० भू० ३३९।

इसमें द्रौपदी की 'इज्जति' की रक्षा के लिए विराट नगर के बाहर भीम द्वारा कीचक-वध का संकेत किया गया है। इससे स्पष्ट है कि वे स्त्रियों की मर्यादा को कितना महत्व देते थे। यहाँ तक कि उन्होंने स्त्री-समाज के मान-रक्षा के लिए अत्याचारी को कठोर दंड देना तथा उसका वध करना भी उचित ठहराया है। 'शिवराज भूषण' के आरंभ में देवी की स्तुति भी स्त्री जाति के प्रति किये गये आदर की परिचायिका है।

हाँ, वेश्याओं को वे अवश्य घृणा की दृष्टि से देखते थे। क्योंकि वे 'शिवराज भूषण' में लिखते हैं—

"दारी गनिका समान सुबेदारी दिल्ली-दल की।"
शि० भू० १६६।

इससे ज्ञात होता है कि गनिका की भर्त्सना उसके घृणित कर्म के कारण ही की गई है।

कुछ आक्षेपकों का कथन है कि भूषण ने शत्रु-स्त्रियों के भागने और भयभीत होने का उल्लेख कर स्त्री जाति का अपमान किया है। परन्तु यह उनकी भूल है। युद्ध के अन्त में विजित शत्रु-स्त्रियों का भय के मारे भागना स्वाभाविक चित्रण है। यदि यह न होता तो वीररस का वर्णन अधूरा होता और अस्वाभाविकता आ जाती। परंतु भूषण ने कहीं पर भी उनके प्रति घृणा के भाव व्यक्त नहीं किये। न उनके प्रति अत्याचार दुराचारादि घृणित भावों का ही समावेश किया है। शिवाजी ने सदैव स्त्री जाति की पवित्रता को स्थिर रखा था। हाँ, इसमें एक बात

अवश्य प्रतीत होती है कि औरंगजेब की सेना के लोग उक्त प्रकार के अत्याचार के आदी थे। इसलिए उन्हें स्वयं ध्यान रहता था कि उनके साथ भी वैसा ही अत्याचार होगा, जैसा वे दूसरों के साथ करते थे। इसीलिए उनकी स्त्रियाँ यत्र-तत्र भागती फिरती थीं।

भूषण के इष्टदेव छत्रपति शिवाजी छुआछूत आदि दुर्गुणों को त्याज्य समझते थे। वे हिन्दू-मुसलमान दोनों को समान भाव से देखते थे। जब उनके दामाद को औरंगजेब ने मुसलमान बना लिया था तो उन्होंने उसे पुनः ग्रहण कर अपनी जाति में सम्मिलित कर लिया था। शिवाजी एक मुसलमान फकीर बाबा याकूत केलोसी के परम भक्त थे। उनका प्राइवेट सेक्रेटरी काजी हैदर मुसलमान ही था। वे मंदिर और मसजिद दोनों का समान भाव से आदर करते थे। उनके विषय में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ खफीखाँ लिखता है —

"He made it a rule that whenever his followers went plundering, they should do no harm to the mosques, the book of god or the woman of anyone, Whenever a copy of the sacred Quran Came into his hands. he treated it with respect and gave it to some of his Mussalman followers."

इस घटना का समर्थन और भी कई मुसलमान लेखकों ने किया है। बशीरुद्दीन अहमद ने 'वाक़ियात मुमलिकात बीजापुरी' में भी इसी बात का उल्लेख किया है। इन्हीं सब गुणों पर मुग्ध होकर भूषण ने आदर्श रूप में शिवाजी को अपना इष्टदेव माना

और उन्हें विष्णु के अवतार तथा राम-कृष्ण के रूप में प्रतिपादित किया है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भूषण के सामाजिक सिद्धान्त बहुत उच्च थे और उदारता की भित्ति पर निर्धारित किये गये थे। भूषण 'शिवराज भूषण' के छन्द नं० २६७ में लिखते हैं।—

"भूलिगे भोज से विक्रम से,
औ भई बलि बेनु की कीरति फीकी।"

राजा भोज और विक्रमादित्य विद्वानों और कवियों का आदर करते थे। साथ ही विक्रम ने अत्याचारी शकों को हराया था। अतः शिवाजी में भी इन्हीं गुणों का आरोप कर उनकी विक्रम से तुलना की गई है। यहाँ पर शकों के रूप में औरंगजेब का दिग्दर्शन करना इतिहास की वास्तविक स्थिति का प्रत्यक्षीकरण ही मानना पड़ेगा। बलि राक्षस होने पर भी उत्कृष्ट कोटि का राजा था। उसकी दानवीरता और उदारता जगत्प्रसिद्ध थी। अतः उसे आदरणीय कहा गया है। वेनु को पुराणों में अत्यन्त उद्दण्ड प्रकृति का प्रबल प्रतापी राजा कहा गया है। वह ईश्वर को भी नहीं मानता था। फिर भी उससे तुलना करके भूषण ने शिवाजी को साम्प्रदायिकता और संकुचित सामाजिकता से भिन्न ठहराया है। इन उदाहरणों से हम भूषण की सामाजिक प्रणाली का अनुमान कर सकते हैं।

फिर 'शिवराज भूषण' के छन्द नं० ३५२ में शिवाजी की "जगदेव जनक जजाति अम्बरीक सो' कहकर तुलना करते हैं। जगदेव बड़ा युद्धप्रिय और साहसी व्यक्ति था। जनक मिथिला के बड़े ज्ञानी राजा थे। ययाति बड़े सुधारक राजा थे। उन्होंने क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणकन्या देवयानी से अपना विवाह किया था।

अंबरीष भी बड़े सदाचारी, धर्मात्मा और तपस्वी राजा थे और अपने नियमों पर सदा अटल रहते थे। उन्होंने दुर्वासा ऋषि के शाप की भी अवहेलना की थी; परंतु अपने धार्मिक नियमों का कभी उल्लंघन नहीं किया। शिवाजी में भी यही भावनाएँ दिखाकर शांतिप्रिय और तपस्वी के रूप में उन्हें चित्रित किया गया है। जो पूर्ण रूप से वास्तविकता का द्योतक है।

इस प्रकार वीर जगदेव, ज्ञानी जनक, समाज-सुधारक ययाति और धर्मरत अम्बरीष के समान शिवाजी को बतलाकर इन चारों गुणों का उनमें समारोप किया गया है।

इन रचनाओं से हम भूषण के सामाजिक सुधारों और अन्तर्जातीय विवाह तक के पक्षपाती होने का अनुमान कर सकते हैं। इस प्रकार हम उनकी सामाजिक सुधार-योजना को भिन्न-भिन्न मार्गों में प्रवाहित होती हुई पाते हैं। यह बात इनके कार्यों और वाणी दोनों प्रकार से भली भाँति प्रकट होती है। यहाँ तक कि शूद्रों और अन्त्यजों को भी समता का आदर्श देकर भी वे उन्हें उत्थित करने में न हिचकते थे।

भूषण में हिन्दू-मुसलिम मेल की भावना

जहाँ भूषण ने एक ओर हिन्दू-मुसलमान मेल के लिए विवाह-सम्बन्ध की योजना की थी, वहाँ अकबर की नीति पर चलने के कारण ही बीरबल और मानसिंह की प्रशंसा की है। ऐसे सम्बंध के लिए भगवंतराय खीची, छत्रसाल तथा ब्राह्मण बाजीराव पेशवा को अग्रसर कर विवाह सम्पन्न कराये थे। जिसके लिए सवाई जयसिंह द्वारा पंडितों की व्यवस्थाएँ भी दिलवाई थीं। इनका उल्लेख पूर्व ही किया जा चुका है।

इसके अतिरिक्त भूषण ने सगुण और निर्गुण उपासना का

सामञ्जस्य हिंदू-मुसलिम मेल के लिए ही कराया है और शिवाजी द्वारा दोनों प्रकार के ज्ञानियों का आदर करवाकर उनको दान से कृतार्थ करने का वर्णन किया है। उदाहरणार्थ—

"चाहत निर्गुण सगुण को, ज्ञानवन्त की बान।
प्रकट करत निर्गुण सगुन, शिवा निवाजी दान॥"

शि० भू० १४३।

मुसलमानों में निर्गुण अर्थात् निराकार एकेश्वरवाद और हिंदुओं में सगुणोपासना प्रधान थी। भूषण ने इस छंद द्वारा मुसलमान और सूफी फकीरों का सम्मान कराकर मेल की भावना को दृढ़ीभूत कराने का प्रयत्न किया है। फिर 'शिवराज भूषण' के छंद नं० १७६ में—

"छूटि गयो तो गयो परनालो,
सलाह की राह गहौ सरजा सौं।"

छंद द्वारा आदिलशाह को शिवाजी से सलाह करने को कहा गया है। इसके पश्चात्—

"तिन ओट गहे अरि जात न जारे।"

शि० भू० १४३।

तथा —

"मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि शिवाजी पै भेजत रसाल है।"

शि० भू० १०२।

इन दोनों उदाहरणों में भी भूषण ने मेल की भावना को उत्कर्ष देने के लिए औरंगजेब के प्रति ये भाव कहलाये हैं। 'शिवराजभूषण' के छंद नं० २१३ में—

"और करौ किन कोटिक राह,
सलाह बिना बचिहो न सिवा सों ।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे मेल को कितना महत्व देते थे तथा अत्याचारी को दबाने, फटकारने और भर्त्सना करने को सदैव सन्नद्ध रहते थे। इसके लिए वे साम, दाम, दंड और भेद चारों का प्रयोग करते थे। इसी प्रकार उसी ग्रंथ के छन्द नं० २७८ में भी उसी मेल के लिए सलाह दी गई है। अन्त में उन्होंने—

"मेरे कहे मेरु करु सिवाजी सों बैर करि,
गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं ।"

शि० भू० २८१ ।

कहकर मेल की भावना को बहुत ही आवश्यकीय बतला दिया है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भूषण मेल के बड़े पक्षपाती थे। उनकी रचनाएँ तथा कार्य सभी इसका समर्थन करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अत्याचारी के लिए इस मेल की भावना को इसी रूप में रक्खा है।—

"विनय न मानत जलधि जड़, गये तीनि दिन बीति ।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होय न प्रीति ।"

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि दुष्ट जब समाज को छिन्न-भिन्न करना चाहें तो देश हित के लिए उक्त सिद्धान्त ही ठीक लागू होता है। भूषण ने भी इसी का अनुगमन किया था और अन्त में वे सफल भी हुए थे।

भूषण धार्मिक स्वतंत्रता के पक्षपाती थे। वे लिखते हैं।—

"आदि को न जानै देवी देवता न मानै सांच,
कहूं जो पिछानो बात कहत हौं अब की।
बब्बर अकब्बर हुमाऊं हद बांधि गये,
हिन्दू औ तुरुक की कुरान बेद ढब की।
और पादसाहन में हती चाह हिन्दुन की,
जहाँगीर साहजहां साखि पूरै तब की।
कासिहू की कला जाती मथुरा मसीद होती,
सिवाजी न होतो तो सुनति होति सबकी।"

शिवा बावनी ४६।

भूषण ने इस छन्द में बाबर, हुमाऊँ, अकबर, शाहजहाँ और जहाँगीर को उत्तम कहा है और उनकी नीति का समर्थन किया है।

'शिवराज भूषण' के छन्द नं० २८९ में वे लिखते हैं —

"दौलति दिल्ली की पाय कहाये आलमगीर,
बब्बर अकब्बर के बिरद बिसारे तैं।"

इसमें फिर उसी 'साम' नीति का समर्थन किया गया है।

भूषण ने इन आरंभिक मुगल बादशाहों की ही प्रशंसा नहीं की, वरन् औरंगजेब के पोते जहाँदारशाह तक की तारीफ की है। जिसका वर्णन पूर्व में ही आ चुका है। यहाँ तक कि अकबर को भगवान् राम के समकक्ष बैठाने में भी वे नहीं हिचके थे, जैसा कि आगे वर्णित है इस प्रकार भूषण ने हिन्दू-मुसलमानों में मेल के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न किये थे और उन्हें सफलता भी होने लगी थी। परन्तु उनके पश्चात् उनका उचित उत्तराधिकारी

आगया हूँ। मेरे सिर पर पगड़ी बँधवा दो। मेरे लिए वह किला बनवा देना है।"

उपर्युक्त छन्द पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि उक्त सज्जन ने अर्थ का कितना अनर्थ कर डाला है इसका वास्तविक अर्थ यह है

"महाकवि भूषण कहते हैं कि अचल (पहाड़) जिसके पास जाते हैं, वह उनकी रक्षा नहीं कर सकता। इसलिए वे (पहाड़) तेरे (शिवाजी के) पास आकर स्थायी प्रीति करते हैं। हे शिवराज! तेरे यश के समान अन्य किसी का यश नहीं है। यद्यपि कहने को तो औरों की भी प्रशंसा की ही जाती है तू इन्द्र के छोटे भाई विष्णु का अवतार है। इसलिए ये पहाड़ तेरी भुजाओं का बल और सहारा पाकर तुझसे सलाह करते हैं। जब ये तेरे संरक्षण में आ जाते हैं, तब उन्हें निर्भय रहने के लिए आप उन पर किला बाँध देते हैं। मानो उनके सिर पर पगड़ी बाँध कर उनका सम्मान करते हैं।"

यह छन्द शिवाजी की नीति को कितने भावपूर्ण ढंग से व्यक्त करता है। मुख्यतः शिवाजी के पहाड़ी किलों का कितना सांगोपांग ऐतिहासिक विवेचन है। यहाँ शिवाजी को इन्द्र का अनुज कहकर एक वैदिक घटना का बड़ा ही मार्मिक और भावपूर्ण विश्लेषण किया गया है। भूषण को भिखमँगा सिद्ध करने के लिए इस छन्द को उद्धृत करना अज्ञानता की पराकाष्ठा है।

भूषण ने देश के लिए वैसा ही कार्य किया, जैसा प्राचीन काल में आर्य संन्यासियों और बौद्ध भिक्षुओं ने किया था। दोनों ही ने देश और समाज के संरक्षण में अपना जीवन अर्पण कर निस्पृहता का पूर्ण परिचय दिया था।

... देशप्रेम, अध्यवसाय तथा संलग्नता

देखकर उन्हें सर्वत्र सम्मान, अतुल धन-राशि एवं दिगन्तव्यापी यश प्राप्त हुआ था। उस धन का उपयोग भी देश-हित में ही होता था। महाकवि भूषण का सारा जीवन अपने आराध्य देव मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् शिवाजी की रीति-नीति के प्रचार में ही व्यतीत हुआ था। इसका प्रभाव भी वही हुआ जैसा होना चाहिए था। अर्थात् सारा देश उद्‌बुद्ध हो उठा था, जिसका परिणाम यह हुआ कि देव जैसे प्रसिद्ध और उच्च कोटि के शृंगारी कवि को कोई अच्छा आश्रयदाता तक न मिल सका था।

भूषण अन्य दरबारों में शिवाजी की प्रशंसा करते थे, जिससे उन्हें हाथी-घोड़े मिलते थे। वे स्वयम् कहते हैं—

"देत तुरीगन गीत सुने बिन,
देत करीगन गीत सुनाये।

शि० भू० १३८।

भूषण शिवाजी के वैसे ही भक्त थे, जैसे गोस्वामी तुलसीदास राम के। अन्तर यही है कि गोस्वामी तुलसीदासजी पारलौकिक मोक्ष के लिए प्रयत्नशील थे और भूषण सांसारिक तथा पारलौकिक दोनों ही प्रकार की मुक्ति चाहते थे। भूषण को हाथी-घोड़े आदि के रूप में जो धन मिलता था, वह निस्वार्थ भाव से राष्ट्र-निधि के रूप में परिणत हो जाता था। भूषण की यही राष्ट्रीयता देश और समाज के लिए उत्थान का कारण हुई। ऐसे व्यक्ति को यदि कोई भिखमंगा आदि उपाधियों से विभूषित करता है, तो उसकी बुद्धि पर बिना तरस आये नहीं रह सकता। महाकवि भूषण एक नवीन युग के विधायक थे। देश और समाज ने उसी रूप में उनका सम्मान भी किया था।

अश्लीलता का आरोप

भूषण की रचना वीररस के लिए प्रसिद्ध है। उनकी एक आध शुद्ध शृंगारिक रचनाएँ भी अपवाद रूप में ही मानी जाती हैं। ऐसे महानुभाव के ऊपर उक्त कथित सज्जन ने अश्लीलता का आरोप करके दुस्साहस का ही काम किया है। इसकी पुष्टि में उन्होंने यह छंद उद्धृत किया है।—

"कूरम कमल कमधुज है कदम फूल,
गौर है गुलाब राना केतकी विराज हैं।
पाँडरि पवाँर जुही सोहत हैं चंदावत,
सरस बुँदेला सो चमेली साज बाज है।
'भूषण' भनत मुचुकुंद बड़ गूजर हैं,
बघेले बसंत सब कुसुम समाज हैं।
लेइ रस एतन को बैठि न सकत हैं पै,
अलि नवरंगजेब चम्पा सिवराज हैं।"

शिवा बावनी २१।

यह छंद भूषण ने शिवाजी की प्रशंसा में कहा है। उक्त सज्जन को इसमें अश्लीलता की गंध आती है। इसका अर्थ यह है—"औरंगजेब रूपी भौंरा राणा आदि राजाओं रूपी फूलों से कर रूपी रस लेता है। परंतु चम्पा रूपी शिवाजी के पास नहीं फटकता, और न कर ही वसूल कर सकता है।"

यह एक आलंकारिक वर्णन है, जो वास्तविक तथ्य और शुद्ध ऐतिहासिक घटना का दिग्दर्शन कराता है। इस वर्णन को इससे सुंदर रूप में कदाचित ही किसी कवि ने रख पाया हो।

शिवाजी को अन्य राजाओं से उत्तम बताने के लिए ही यह छंद कहा गया है। इसमें कवि को पूर्ण सफलता मिली है। साथ ही ध्वनि से औरंगजेब के आक्रमण की विफलता भी व्यक्त हो जाती है! यदि शृंगारिक कवियों ने चम्पा की उपमा बिगड़ैल नायिका से दी, तो इसमें कवि के दृष्टिकोण का अन्तर है। प्राकृतिक वस्तुओं में भलाई-बुराई तथा शुद्ध और अश्लील भावना खोज निकालना कवि की प्रतिभा, उसकी निरीक्षण-शक्ति एवं बुद्धि पर निर्भर है, इसमें चम्पा का क्या दोष!! उदाहरण के लिए 'रहिमन-विनोद' से उद्धृत रहीम का यह दोहा देखिये।—

"सोई राज सराहिये, ससि सम सुखद जो होइ।
कहा बापुरो भानु है, तप्यौ तरैयन खोइ।"

इस नीति के दोहे में चन्द्रमा के समान शान्तिमय राज्य की प्रशंसा की गई है। परंतु कवि-गण चन्द्रमा से स्त्री के मुख की भी समानता करते हैं। तो क्या उक्त दोहा शृंगारिक बन जायगा? कदापि नहीं। यह केवल दृष्टिकोण और भावना पर निर्भर है। शृंगारिक कवियों में जगत को शृंगार रूप में देखने की ही भावना रहती है। जिसे पीलिया रोग हो गया है, उसे प्रत्येक वस्तु पीली ही पीली दिखलाई देती है। अतः उक्त समालोचक की भावना भी यही दिग्दर्शन कराती है।

इसी प्रकार के और भी बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमें एक ही उपमा विभिन्न कवियों ने अपनी रुचि के अनुसार पवित्र और अश्लील रूप में व्यवहृत की है। अतः कोई शब्द अश्लील नहीं होता। शब्दों के प्रयोग से ही अच्छे और अश्लील रूप लिये जा सकते हैं।

एक डाक्टर और कामुक व्यक्ति एक ही प्रयोग भिन्न-भिन्न

भावनाओं को लेकर करते हैं। यही दशा भूषण की रचना की है। उन्होंने अपने प्रयोग नितान्त प्राञ्जल, परिष्कृत एवं पवित्रतम रूप में किये हैं। उनमें किसी प्रकार की कलुषित भावना नाम-मात्र को भी नहीं है। तथापि समालोचक सज्जन 'शिवाबावनी' के उक्त छन्द में भी अश्लीलता पाते हैं, जो उनकी अपरिमार्जित मति का ही परिचय देती है।

भूषण ने जिन छन्दों में शत्रु-स्त्रियों के भयभीत होकर जंगल में भटकती फिरने तथा उनके रोने का वर्णन किया है, वह शिवाजी की विजय दिखलाने और उनका आतंक-प्रदर्शित करने के विचार से ही है। उन छन्दों में अश्लीलता का नाम भी नहीं है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी "कवितावली रामायण" में लंका की स्त्रियों के भागने और रोने-चिलबिलाने आदि का वर्णन किया है। परन्तु उन्हें किसी ने अश्लील नहीं कहा। उन्हीं सज्जन ने भूषण की अश्लीलता सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित छन्द भी दिया है।—

"अरे ते गुसलखाने बीच ऐसे उमराय,
लै चले मनाय शिवराज महाराज कौं।
दावदार निरखि रिसानो दीह दलराय,
जैसे गड़दार अड़दार गजराज कौं।
शि० भू० ३४।

इस छन्द में शिवाजी को दलपति मस्त हाथी की उपमा दी गई है जिसे औरंगजेब के सरदार समझा-बुझा कर उसके दरबार से हटा ले गये थे। इसमें अश्लीलता का पता तक नहीं है।

अश्लीलता की भावना उक्त सज्जन के मस्तिष्क में इस लिए उद्भूत हुई कि स्त्री को "गज गामिनी" की उपमा दी जाती है। केवल इसलिए यहाँ अश्लीलता का श्रोत फूट पड़ा। उक्त सज्जन यदि यह भी बतला देते कि जब तलवार की उपमा कटाक्ष से, घोड़े के मुँह की उपमा घूँघट से, भाले और तीर की तुलना सुरमा लगी आँख की नोक से और भौंह की उपमा धनुष से दी जाती है, तो क्या ये सब वस्तुएँ भी शृंगारिक और अश्लील बन गईं ?

उन्होंने निम्नलिखित उदाहरण द्वारा भी भूषण की रचना को अश्लील ठहराया है।—

"बाजि गजराज शिवराज सैन साजत ही,
दिल्ली दिलगीर दसा दीरघ दुखन की।
तनियाँ न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न,
धामें धुमरात छोड़ि सेजियाँ सुखन की।
'भूषन' भनत पति बाँह बहियाँ न तेऊ,
छहियाँ छबीली ताकि रहियाँ रुखन की।
बालियाँ बिथुरि जिमि आलियाँ नलिन पर,
लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन की॥"

शि० बा० २९।

इस छन्द को उक्त लेखक ने कामोद्दीपक तथा मानसिक प्रवृत्तियों को दुराचार की ओर ले जानेवाला बतलाया है।

इस छन्द में भूषण ने शिवाजी के आतंक से भयभीत शत्रु-स्त्रियों का चित्र अंकित किया है। युद्ध के उपरान्त पराजित

भयत्रस्त और भागी हुई जातियों में यह स्थिति होती ही है। यह वर्णन नितान्त स्वाभाविक है। इसमें अपडर की प्रधानता होती है। इसे अश्लील और कामुकतापूर्ण कहना नितान्त अनुचित है। ऐसी दीन-हीन आपद्ग्रस्त दशा का वर्णन पढ़कर यदि किसी में दया के स्थान पर काम-वासना उत्पन्न हो तो उसे मनुष्य मानने में भी संकोच होगा। इस दशा में दया और कामुकता को पर्याप्त वाची एक मानना पड़ेगा।

महाकवि भूषण ने कहीं पर भी यह नहीं लिखा कि शिवाजी अथवा उनकी सेना ने शत्रु-नारियों पर कभी किसी प्रकार का अत्याचार या परिहास किया।

शिवाजी का ही आदर्श लेकर भूषण ने 'शिवराज भूषण' और अन्य ग्रंथों की रचना की थी। वही आदर्श वे सारे भारतवर्ष में फैलाना चाहते थे। ऐसे व्यक्ति के विषय में यह कहना कि "उसने अश्लीलता का प्रसार किया" अत्यन्त घृणित एवं गर्हित आक्षेप है। उन्होंने तो अपनी रचनाओं द्वारा शृंगारिक भावनाओं का तिरोभाव किया तथा सदाचार एकता और उत्साहपूर्ण वीरत्व का विस्तार करके एक आदर्श चरित्र की स्थापना की। भूषण के पश्चात् लगभग २५० वर्ष तक राष्ट्रीय जीवन प्रदान करनेवाला वैसा कोई व्यक्ति उत्पन्न ही नहीं हुआ। केवल उन्हीं की भावना ने देश और समाज की रक्षा की थी। ऐसे व्यक्ति के लिए अश्लीलता का आरोपण करना औचित्यपूर्ण है या नहीं, यह बिलकुल स्पष्ट है।

जाति विद्वेष का आक्षेप

भूषण पर जातिगत विद्वेष का आक्षेप किया जाता है। कई विद्वानों ने उन्हें मुसलमान-द्रोही कहा है। यहाँ तक कि विश्ववन्द्य

महात्मा गांधी तक ने अपने एक भाषण में भूषण की एक रचना पर यही आक्षेप किया है। यद्यपि उन्होंने यह स्वीकार किया है कि "मैंने यह कथन एक मुसलमान सज्जन के कहने से किया है।" इस गर्हित आक्षेप पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

भूषण ने अराष्ट्रिय भावना को किंचित मात्र भी प्रश्रय नहीं दिया। वे विशुद्ध राष्ट्रिय कवि थे। उन्होंने केवल औरंगजेब की निंदा उसके अत्याचार, साम्प्रदायिकता तथा अन्य घृणित भावनाओं के कारण की है। क्योंकि उसने धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दू-मुसलमान दोनों पर ऐसा घोर अत्याचार किया था जो वर्णनातीत है। यही नहीं, भूषण ने उन हिंदू राजाओं की भी निन्दा की है, जो औरंगजेब का साथ दे रहे थे। जो मुसलमान बादशाह अच्छे थे और हिंदू-मुसलमानों का मेल चाहते थे, भूषण ने उनकी भूर-भूरि प्रशंसा की है इसकी पुष्टि में दो-चार उदाहरण देना पर्याप्त है।

"आदि को न जानों देवी देवता न मानो साँच,
कहूँ सो पिछानो बात कहत हौं अब की।
बब्बर अकब्बर हुमाऊँ हद्द बाँधि गये,
दो में एक करी ना कुरान बेद ढब की।
और पातसाहन में हुती चाह हिन्दुन की,
जहाँगीर साहजहाँ साखि पूरैं तब की।
क़ासिहु की कला जाती मथुरा मसीद होती,
सिवाजी न होतो तो सुनति होति सबकी॥"

इससे स्पष्ट है कि महाकवि भूषण बाबर, हुमाऊँ और अकबर

की नीति को पसन्द करते थे। जिन्होंने हिंदुओं के धार्मिक भावों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया था और उन्हें सब प्रकार की धार्मिक स्वतंत्रता दे रखी थी। यही नहीं, वे उनके पूर्वजों के अनुकरण पर चलनेवाले जहाँगीर और शाहजहाँ की भी प्रशंसा करते हैं।

औरंगजेब ने इस नीति को बदल दिया था। मंदिरों को तोड़-कर मसजिदें बनवाने, हिन्दुओं को जबरन मुसलमान करने तथा अन्य प्रकार के अत्याचारों के कारण ही भूषण ने उसकी निन्दा की थी। यही नहीं, शिया मुसलमानों पर घोर अनाचार करने के लिए उसको अत्यन्त निन्दनीय ठहराया है। अतः ऐसे व्यक्ति को भूषण जैसा राष्ट्रिय कवि कब अच्छा समझ सकता था ?

भूषण ने 'शिवराज भूषण' के २८१ वें छंद में—

"दौलत दिल्ली की पाय कहाये आलमगीर'
बब्बर अकब्बर के विरद बिसारे तैं।"

कहकर औरंगजेब को अपने पूर्वजों के प्रण की याद दिलाई है और उसे समझाया है कि उसके इस प्रकार के कार्यों से बाबर और अकबर के सुयश में कलङ्क-कालिमा लग जायगी। इसी की पुष्टि भूषण ने नीचे लिखे छंद द्वारा भी की है।—

"सतयुग त्रेता औ द्वापर कलियुग माँहि
आदि भयो नाहिं भूप तिनहूँ तें अगरी।
अकब्बर बब्बर हुमाऊँ शाह सासन सों,
स्नेह ते सुधारी हेम हीरन ते सगरी॥"

भूषण ग्रन्थावली फुटकर छन्द ४।

बीजापुर और गोलकुंडा के शिया नरेशों के दरबारों में भी भूषण का रहना पाया जाता है। इससे सिद्ध हो जाता है कि भूषण की रचना में समाज-द्वेष का नाम भी नहीं था। भूषण ने तो औरंगजेब का साथ देनेवाले ऐसे अनेक हिन्दुओं की भी निन्दा की है, जो उसके अत्याचार में सहयोग दे रहे थे। जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह का उदाहरण इसके लिए पर्याप्त है। उन्होंने बूँदी-नरेश भाऊसिंह (औरंगजेब के दीवान) और करणसिंह को भी निन्दा के योग्य ठहराया है। ये सब केवल इसीलिए बुरे कहे गये हैं कि इन्होंने अत्याचारी औरंगजेब की सहायता की थी। साथ ही उन्होंने 'शिवा बावनी' के छन्द नं० ६ में पराजित दशा में भागती हुई 'हिन्दू' और 'मुसलमान' दोनों की स्त्रियों की दुर्दशा का वर्णन "बीबी गहैं सूथनी सुनीबी गहैं रानियाँ" कहकर किया है। केवल मुसलिम स्त्रियों की ही दुर्दशा का चित्रण नहीं किया! इस भय में अपडर की प्रधानता है।

इन उदाहरणों से यह बात निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाती है कि भूषण में जातीय द्वेष नाम मात्र को भी नहीं था। वे तो शुद्ध राष्ट्रिय कवि और हिन्दू-मुसलिम एकता के पक्षपाती थे। उन्होंने इन दोनों जातियों में मेल को दृढ़ रखने के लिए आपस में विवाह-सम्बन्ध भी सम्पन्न कराये थे। और ऐसा मेल करानेवाले की उन्होंने भर पेट प्रशंसा की है।

इन विवरणों से हम भूषण विषयक राष्ट्रिय भावना का ठीक-ठीक अनुमान कर सकते हैं।

म्लेच्छ, तुर्क और खल शब्द

जिन्होंने भूषण का गंभीर अध्ययन किया है, वे भली भाँति समझ सकते हैं कि भूषण की शब्द-योजना की एक विशेष शैली

है। वे प्रायः वैदिक ढंग पर शब्दों का प्रयोग करते हैं, इन शब्दों की व्याख्या का भी एक विशेष महत्त्व होता है। गनिमा, तोपीकिस्मा और मुगल शब्दों की विवेचना और उनकी व्याख्या इसके अन्तर्गत उदाहरण हैं। म्लेच्छ और तुर्क शब्दों का प्रयोग भी इसी ढंग पर किया गया है।

म्लेच्छ शब्द का अर्थ है गंदे और दूषित कर्म करने तथा पाप करनेवाला व्यक्ति और तुर्क शब्द का अर्थ है जालिम या अत्याचारी। भूषण ने इन शब्दों का प्रयोग औरंगजेब की सेना के लिए किया है। इसके कुछ नमूने ये हैं

"भूषण भनत गनिमा की दिलदार सुनि,
मार हो मचत म्लेच्छ औरंग के दल में,

शि० भू० २००।

इसी प्रकार 'शिवराज भूषण' के ४८ वें छन्द में—

"ज्यों म्लेच्छ वंस पर शेर शिवराज है।"

कहने में भूषण का आशय म्लेच्छ के समूह से ही है। अनेक साहित्यिक कवियों और आचार्यों ने वंश का अर्थ समूह लिया है। शिवाजी की तलवार की प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं।—

"लीनो अवतार करतार के कहे ते काली,
म्लेच्छन हरन उद्धरन भुवि-भार को।"

शि० भू० ८४।

यहाँ भी उन्हीं अत्याचारियों के दमन का स्पष्ट उल्लेख है।
ो प्रकार 'शिवराज भूषण' के छन्द १६२ में—

"तुरकानगन व्योमयान हैं चढ़त,
बिनु मान हू चढ़त बदरंग अवरंग के।"

शि० भू० १२४।

"फैले मध्य देस में समूह तुरकाने के।"

भूषण ग्रन्थावली फु० छन्द पृ० १३४।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भूषण ने अपनी रचनाओं में सर्वत्र 'तुर्क' शब्द औरङ्गजेब की सेना के लिए प्रयुक्त किया है। ऐसे उदाहरणों से भूषण की रचना भरी पड़ी है। भूषण ग्रन्थावली के छंद नं० ६६, २६४ ३२८, ३३४ और अन्य रचनाओं में अनेक छंद इसी के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

इन शब्दों के अतिरिक्त भूषण ने औरंगजेबी सेना के लिए अत्याचारी होने के कारण 'खल' शब्द का भी प्रयोग किया है। जैसे—"असंकक्कुलिखल।"

शि० भू० ३५६।

"शिवाजी की धाक मिलैं खल कुल खाक बसे,
खलन के खेरन खबीसन के खोम हैं।"

शि० भू० ३६२।

"भूषण शिवाजी गाजी खग्ग सों खपाये खल,
खाने खाने खलन के खेरे भये खीस हैं।"

शि० भू० ३६३।

खल की ही भाँति 'दुर्जन' शब्द का प्रयोग भी भूषण ने औरंगजेब के सरदारों और सेना के ही लिए किया है। यथा—

"दुरजन दार भजि भजि बेसम्हार,
चढ़ीं उत्तर पहार डरि सिवाजी नरिन्द ते।"
शि० भू० २००।

"दच्छिन के नाथ सिवराज तेरे हाथ चढ़ें,
धनुष के साथ गढ़ कोट दुरजन के।"
शि० भू० ११३।

इस प्रकार 'यवन' और 'दुर्जन' शब्द भी वैसे ही हैं जैसे 'म्लेच्छ', तुर्क और 'नकटा'। इनका प्रयोग भी वैसा ही किया गया है। इनमें कहीं भी समाज में द्वेष और घृणा फैलाने की भावना नहीं है। यदि भूषण को ऐसा करना होता, तो वे मुसलमान शब्द का भी वैसा ही प्रयोग कर सकते थे, जैसा उन्होंने इन शब्दों का किया है। परन्तु भूषण का विचार केवल औरंगजेब और उसके अत्याचारी साथियों के प्रति घृणा पैदा करने का था। इसके भीतर भूषण की राष्ट्रीय भावना का स्रोत निहित था, जिसे उन्होंने समाज में व्याप्त कर दिया था।

मध्य देश पर आरोप

भूषण ने भगवन्तराय खीची की मृत्यु पर। एक शोक-सूचक कवित्त लिखा है, जिसमें उसकी वीरता की प्रशंसा भी की गई है। उसमें उन्होंने खीची को मध्यदेश का राजा बतला कर तुर्कों (अत्याचारियों) से आक्रान्त प्रदेश का दिग्दर्शन कराया है। वह छन्द यह है—

"उठिगो सुकवि शील उठिगो जशीलो डील,
फैलो मध्यदेश में समूह तुरकानें को।

फूटे भाल भिक्षुक के जूझे भगवन्तराय,
अरराय टूट्यौ कुल खंभ हिन्दुआने को।*

मिश्रबन्धु महोदयों ने इस छंद में वर्णित 'मध्य देश' को मध्य प्रदेश (C. P.) माना है† और लिखा है "इस छंद में 'युक्त प्रान्त' का उल्लेख नहीं, मध्य प्रान्त का वर्णन है।" उनसे मेरा विनम्र निवेदन है कि वे इस छंद में ब्रिटिश राज्य के बीसवीं शताब्दी में बने प्रान्तों का उल्लेख न समझें। यह छंद अबसे दो सौ वर्ष पूर्व का बना है। उस समय फतहपुर, कानपुर, प्रयाग और आगरे के बीच का स्थान मध्यदेश कहलाता था।

मतिराम के पन्ती विहारीलाल कवि ने निम्नलिखित दोहे में अपनी जन्मभूमि तिकवाँपुर को मध्यदेश के अन्तर्गत बतलाया है।

"बसत त्रिविक्रमपुर नगर, कालिन्दी के तीर।
विरच्यो भूप हमीर जनु, मध्य देस कौ ॥"‡

भगवन्तराय खीची के आश्रित गोपाल कवि ने भी 'असोथर' (जिला फतहपुर) नरेश खीची को मध्यदेश के अवतार-रूप में इस प्रकार वर्णित किया है।—

"श्री धनिकेस नरेस भे, मध्य देस अवतार।
तिनके नृप भगवन्त जिन, धरचौ भुवन भुव भार।

---

* भूषण ग्रन्थावली' फुटकर छन्द १२, पृ० १३४।

† 'माधुरी' वैशाख सं० १९८१ वि० में मिश्रबन्धुओं का लेख।

‡ 'विक्रम सतसई' की रस चन्द्रिका टीका तथा 'माधुरी' ज्येष्ठ सं० १९८१ वि० में भूषण मतिराम पर पं० कृष्णविहारीजी मिश्र की टिप्पणी।

★ सन् १९०६-११ की खोज रिपोर्ट नं० ६८, पृ० १६०।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि असोथर मध्यदेश प्रांत में ही था और फतहपुर, कानपुर, प्रयाग तथा आगरे के मध्य का प्रांत 'मध्यदेश' कहलाता था। उस समय का 'मध्यदेश' वर्तमान मध्यदेश (सी० पी०) नहीं था। भूषण के मुख से इस प्रांत को युक्त प्रदेश कहलाना अनभिज्ञता का द्योतक है। इस प्रांत का नाम युक्त-प्रांत सन् १९०१ ई० में लार्ड कर्जन के समय में रखा गया था।

ऐतिहासिक आक्षेप

महाराज छत्रसाल के दरबार में भूषण के जाने का समय मिश्रबन्धु महोदय सं० १७३५ या १७४० वि० मानते हैं। आपका कथन है—"हमारी समझ में यह भी नहीं आता कि चौंसठ वर्ष का वृद्ध महाराज (पन्ना नरेश छत्रसाल) किसी की पालकी का डंडा अपने कंधे पर धर लेगा। ये तो युवापन की उमंगे हैं। फिर छत्रसाल कोई ऐसे-वैसे न थे। हमारे विचार में पालकी कंधे पर धरनेवाली घटना १७३५-४० वि० के लगभग हुई होगी।"★

आपके विचार में अवस्था, धन और राज्य का महत्व सबसे अधिक है। आपने यह विचार ही नहीं किया कि त्याग, परोपकार, सदाचार, विद्वत्ता और उत्तम भावनाओं का उनसे कहीं ऊँचा स्थान है। स्वामी शंकराचार्य ३० वर्ष की ही अवस्था में 'विश्व-वंद्य' हो गये थे। छत्रसाल द्वारा पालकी में कंधा लगाये जाने पर भूषण ने कहा था—

"साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को।"

इससे स्पष्ट है कि छत्रसाल के दरबार में जाने से पूर्व वे सितारा-नरेश शाहू के दरबार में हो आये थे। जिसे मिश्रबन्धु महोदय भी मानते हैं। साथ ही यह भी निश्चित है कि शाहू

★ 'सुधा' वर्ष ६, खंड १, संख्या ५, मार्गशीर्ष सं० १९८९ वि०

सं० १७६४ वि० में औरंगजेब की जेल से छूटे और सं० १७६५ वि० में सितारा की गद्दी पर बैठे थे। इस विषय में यदुनाथ सरकार, राजवाड़े, तकाखव, केलूस्कर तथा अन्य सब इतिहासकार एकमत हैं। यदि मिश्रबंधु वर्ग इन सब इतिहासकारों को शाहू के राज्याभिषेक का समय वास्तविक समय से कम से कम तीस वर्ष पूर्व मानने को राजी कर लें, तो हम भी उनके कथन को स्वीकार करने के लिए शायद सहमत हो जायँगे। परन्तु ऐसा होना संभव नहीं। अतः मिश्रबंधु महोदयों की सम्मति मानने में हम असमर्थ हैं। कोई भारतीय इतिहासज्ञ भी उनकी इस उक्ति को स्वीकार नहीं कर सकता।

पुन. दूसरे स्थल पर ये ही महोदय लिखते हैं—"जिस काल शिवाजी ने उनका सत्कार किया था, तब वह किसी अन्य के यहाँ नहीं गये। जब शिवाजी का शरीरान्त हो गया तब शाहू के गुरुतर भूपाल होने पर भी भूषण अन्यान्य आश्रयदाताओं के यहाँ दौड़ते फिरे। जिससे समझ पड़ता है, शाहू ने उनका यथायोग्य सम्मान नहीं किया और केवल अपनी भलमनसाहत के कारण शिवाजी के सम्बन्ध को स्मरण करके उन्होंने शाहू जी के भी थोड़े से छन्द बना दिये, जो उमङ्गपूर्ण भी न थे।"❀

भूषण छत्रसाल के यहाँ जाने से पूर्व मोरंग, कुमाऊँ, श्रीनगर, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, कुतुब और आदिलवंशी राजकुमारों तथा शाहू बाजीराव पेशवा और दिल्ली नरेश, राजा अनिरुद्ध सिंह तथा असोथर-नरेश के यहाँ जा चुके थे। इनमें सबसे उत्तम उन्होंने शाहू जी को माना है। ऐसी दशा में "शाहू" के प्रति भूषण का आदरास्पद कथन न मानना उपहास के योग्य ही है।

❀ सुधा, वर्ष ६, खंड १, संख्या ५ मार्गशीर्ष सं० १९८९ वि०।

भूषण के छन्द छत्रसाल को छोड़कर अन्य किसी राजा की प्रशंसा में इतने नहीं मिलते, जितने शाहू की प्रशंसा में पाये जाते हैं। अतः उन्हें नगण्य नहीं कहा जा सकता। 'शिवा-बावनी' के अनेकों छन्द उनकी प्रशंसा में हैं। जिन्हें मिश्रबन्धु महोदय भी उत्तम मानते हैं। इन्हें केवल 'शिवाजी के सम्बन्ध' के कारण रचा हुआ नहीं बतलाया जा सकता।

भूषण के तीन ही आश्रयदाता प्रधान थे, १- सवाई जयसिंह, २—छत्रपति शाहू, ३—छत्रसाल। इनमें 'शाहू' का स्थान उनके हृदय में सर्वोच्च था। शिवाजी तो उनके 'इष्टदेव' थे। उस कोटि में किसी मानव को रखा ही नहीं जा सकता है।

भूषण और भटैती

कुछ सज्जनों ने महाकवि भूषण पर यह आक्षेप किया है कि उन्होंने शिवाजी की झूठी प्रशंसा की है और वे दूसरे दरबारों में भी भटैती करते फिरते थे। अब देखना यह है कि उक्त लाञ्छन कहाँ तक उचित है।

छत्रपति शिवाजी की मृत्यु भूषण के जन्म से एक वर्ष पूर्व ही हो चुकी थी। अतः भूषण का शिवाजी की प्रशंसा करना भटैती नहीं कहला सकता। उन्होंने शिवाजी को ईश्वर का अवतार माना है और उन्हें पुण्यश्लोक कहा है। हिन्दी के अधिकांश विद्वानों ने भूषण को शिवाजी के दरबार में मानकर भयङ्कर भूल की है। इसी कारण उन्होंने उन्हें 'अत्युक्ति का पुल' बाँधनेवाला बतलाया है। परन्तु वे यह नहीं समझते कि उन्होंने स्वयम् गोस्वामी तुलसीदास के—

"कीन्हें प्राकृतजन गुण गाना।
शिर धुनि गिरा लागि पछिताना॥"

की तरह—

"भूषण यों कलि के कवि राजन
राजन के गुन गाय हिरानी।
पुण्य चरित्र शिवा सरजे सर,
न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥"

शि० भू० २६ १।

का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि भूषण के हृदय में भी तुलसी की भाँति उक्त विचारधारा विद्यमान थी। वे औचित्य तथा अनौचित्य को भली भाँति समझते थे। अतः मानव-समाज के उद्धारक स्वराज्य द्रष्टा, राष्ट्र निर्माता भूषण ऐसे महान् व्यक्ति को भटैती करनेवाले की उपाधि देना अपनी अज्ञानता का परिचय देना है।

एक साहित्यिक प्रत्यालोचना

त्रिनेत्रजी ने अपनी साहित्यिक योग्यता और ज्ञान-गरिमा प्रदर्शित करते हुए तथा मेरे अर्थों को अशुद्ध बतलाते हुए 'शिवा बावनी' और 'भूषण विमर्श' के ५-६ पद्यों में से किसी का आंशिक और किसी का पूर्णतः अर्थ करने की कृपा की है। उन पर विवेचनात्मक रूप से विचार करना समीचीन प्रतीत होता है। जिससे पाठकगण वास्तविकता समझ लें कि भूल किधर हो रही है। सर्वप्रथम इस पद्यांश पर विचार कीजिये।—

"लै परनालो शिवा सरजा करनाटक लौं सब देस बिगूँचे।

शि० भू० २०७।

'भूषण विमर्श' में इसका यही भाव लिखा गया है कि "शिवा-

जी ने परनाले का किला जीतकर वहाँ से आगे बढ़ते हुए कर्नाटक तक के सब देशों को रौंद डाला। कर्नाटक भी इन जीते हुए देशों में सम्मिलित है।"

इस अर्थ पर आलोचना करते हुए त्रिनेत्रजी लिखते हैं—"हिंदी का ककहरा जाननेवाला भी 'कर्नाटक लौं' का अर्थ कर्नाटक-विजय या कर्नाटक की चढ़ाई न लेगा। इसका अर्थ तो 'कर्नाटक तक' होगा। अर्थात कर्नाटक बिगूँचे जानेवाले देशों से पृथक् है। पर ऐतिहासिक खोज करनेवाले दीक्षित जी भला व्याकरण की परवाह क्यों करने लगे। यदि "करनाटक लै" पाठ होता, तो "लै" का लेकर या सहित अर्थ किया जा सकता था।" इस पर त्रिनेत्र जी को सटीक उत्तर सप्रमाण दिया गया। अतः फिर वे ही महाशय लिखते हैं—"करनाटक लौं सब देश बिगूँचे" में "करनाटक लौं" का अर्थ दीक्षित जी कर्नाटक की सीमा नहीं लेते। वे बिगूँचे जाने वाले देशों में उसे भी मानना चाहते हैं। जिससे उक्त वर्णन कर्नाटक-विजय के संबंध का माना जा सके कि 'शिवराजभूषण' में १७३० वि० के उपरांत की भी घटनाएँ हैं। क्योंकि यह घटना सं० १७३४ वि० की है।" अंत में त्रिनेत्र जी ने यह स्वीकार कर लिया है कि "लौं" के अर्थ मर्यादा व अभिविधि के आधार पर रहित और सहित दोनों होते हैं। तब भी आप फिर लिखते हैं "दीक्षित जी 'लौं' का अर्थ अभिविधि के आधार पर लेना चाहते हैं।" किंतु, 'ब्रजभाषा' में लौं का प्रयोग अधिकतर विस्तार का अर्थ द्योतन करने के लिए मर्यादा में ही होता है यथा—

(१) "सावन लौं आवन सुन्यो है घनस्याम जू को,
आँगन 'लौं' आप पाँय पटकि-पटकि जात।"

(२) "है सखि संग मनोभव सां भट,
कान 'लौं' बान-सरासन ताने !"

पद्माकर ।

आइये त्रिनेत्र जी के उपरोक्त पद्यांशों पर विचार करें। ये पद्य मर्यादा का भाव व्यक्त करनेवाले उदाहरणों में आपने उपस्थित किये हैं। "आँगन लौं आय पायँ पटकि पटकि जात" का स्पष्ट अर्थ अभिविधि का द्योतक है। क्योंकि यहाँ पर नायिका की उत्कंठा इतनी तीव्र हो जाती है कि वह अनुभव करती है कि मेरा पति आँगन में आ गया है। उसके परों की खटपट उसे सुनाई देती है। वर्षा के कारण बूँदों की पट पटाहट को ही पैरों की आवाज मान लेना स्वाभाविक चित्रण है। अतः इसको मर्यादा के उदाहरण में प्रस्तुत करना अज्ञानता का द्योतक है। आँगन के बीच में स्पष्ट आवाज होने से यह 'अभिविधि' का द्योतक है 'मर्यादा' का नहीं।

इसी प्रकार "सावन लौं" का अर्थ भी 'श्रावण मास के बीच में ही' लिया जायगा। क्योंकि विवशता में जो कुछ सम्मिलन हो जाय, वही पर्याप्त होगा।

दूसरे उदाहरण में "कान लौं बान-सरासन ताने का अर्थ प्रत्यक्ष रूप से कान के पिछले भाग तक प्रत्यञ्चा का खींचना माना जाता है। यदि त्रिनेत्र जी ने स्वयं कभी तीर कमान न चलाये हों, तो भी राम का मारीच (हिरण रूप) के पीछे दौड़ने का चित्र तो अवश्य देखा होगा। उसे देखकर भी यदि आपको 'मर्यादा' और 'अभिविधि' के अन्तर का ज्ञान न हुआ, तो फिर आपकी साहित्यिकता ही व्यर्थ माननी पड़ेगी।

अतः "करनाटक लौं सब देश बिगूँचे" का अर्थ भी कर्नाटक तक के सब देशों को रौंद डाला है। इन रौंदे जानेवाले देशों में कर्नाटक भी है। शिवाजी ने तीसरी बार परनाले का किला जीत कर कर्नाटक पर चढ़ाई की थी। यह इतिहास-प्रसिद्ध घटना है। इससे पूर्व वे कभी भी कर्नाटक की उत्तरी सीमा तक नहीं पहुँचे। कर्नाटक की उत्तरी सीमा तुंगभद्रा नदी है, जहाँ वह कृष्णा नदी में मिल जाती है। वहाँ से आगे कर्नाटक की सीमा कृष्णा नदी बन जाती है।

देखिये-(मोर्स बुक आफ मराठा)

अतः स्पष्ट है कि कर्नाटक की चढ़ाई का उक्त छन्द में दिग्दर्शन कराया गया है जो सं० १७३० वि० के कई वर्ष पश्चात् की घटना है। 'शिवराज भूषण' में ऐसी एक नहीं बीसियों घटनाएँ प्रस्तुत हैं। कुछ घटनाएँ तो शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त की भी हैं, जिनका यथास्थान उल्लेख किया गया है।

(२) अब एक कवित्त और लीजिये जिसके अर्थ पर त्रिनेत्र जी का गर्व फूट पड़ता है। वह यह है—

"उत्तर पहार बिधनौल खँडहर झार—
खंड हू प्रचार चारु केली है बिरद की।
गौर गुजरात और पूरब पछाँह ठौर,
जंतु जंगलीन की बसति मार रद की।
'भूपन' जे करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो आपनी उँचाई लखे कद की।

खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सों वैर कै बड़ाई निज मद की ॥"
शि० भू० १५६ ।

इस पर त्रिनेत्र जी की टिप्पणी का अवलोकन कीजिये । आप लिखते हैं—

" 'शिवराज भूषण' से आपने शिवाजी की मृत्यु के बहुत पीछे की भी एक घटना खोज निकाली है । उसका पाठक मुलाहिजा फरमावें । विवाद का आधार उक्त छन्द है । इसका अर्थ समझाते हुए फिर आप (दीक्षित) जी कहते हैं—यह समासोक्ति का उदाहरण है जिसका लक्षण यह है 'बरनन कीजे आन को ज्ञान आन को होत' यहाँ मदगल गजराज और सरजा (सिंह) का वर्णन किया गया है। और औरंगजेब तथा शिवाजी के कार्यों का ज्ञान हो जाता है ।"

भूषण तीन चरणों में गजराज की मदमस्ती का वर्णन करते हैं कि उसने किस प्रकार इन देशों को नष्ट-भ्रष्ट किया था । पर उसका सारा मद सरजा के सामने आते ही फूट गया । इससे स्पष्ट है कि जिन देशों का उल्लेख किया गया है, उनकी बरबादी औरंगजेब की की हुई है । मरहठों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं । परन्तु अपनी प्रकृतिसिद्ध बपतबाजी के अनुसार आप (दीक्षित जी) दूसरा चरण उद्धृत करके कहते हैं—"इस पद में भूषण ने मरहठों द्वारा गौर (बंगाल) और गुजरात प्रान्त के सरकार किये जाने का उल्लेख किया है । ये घटनाएँ शाहू से सम्बन्धित हैं । शिवाजी के समय में कभी भी इन प्रान्तों पर आक्रमण नहीं किया गया ।" पाठक ही विचार कर लें कि "जो

कोदौं देकर पढ़ता है" वही इस प्रकार के अर्थ लगा सकता है। जैसा कि दीक्षित जी ने लगाया है।"

ये हैं उद्गार अहंमन्य त्रिवेदजी के। परन्तु इस छन्द का अर्थ करने में भी इस महान पंडितराज ने वैसी ही ठोकरें खाई हैं, जैसा अन्य छन्दों के अर्थ करने में। सौभाग्य से इस छंद में भी ऐतिहासिक घटनाओं की चर्चा है, जिससे अर्थ की गंभीरता और यथार्थता समझने में पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकती है। प्रथम पंक्ति में शिवाजी के यश का वर्णन है। जो गढ़वाल, कुमाऊँ, मौरंग आदि उत्तर पहाड़ी स्थानों तथा बिदनूर आदि जगहों में पूर्णरूपेण प्रसरित हो चुका था। भूषण शिवाजी का आदर्श लेकर इन स्थानों पर जा चुके थे। बिदनूर को तो स्वयं शिवाजी ने ही विजय किया था। अतः इन स्थानों पर उनके यश का विस्तार होना स्वाभाविक था। औरंगजेब के यश का विस्तार-कथन तो अस्वाभाविक ही माना जायगा। फिर वह न तो कभी बिदनूर गया था और न उसे विजय ही कर पाया था। अतः स्पष्ट है कि ये कथन शिवाजी से ही सम्बन्ध रखते हैं, औरंगजेब से नहीं।

गौर (बंगाल), गोंडवाना और गुजरात में मरहठों ने ही शाहू के समय में विजय प्राप्त की थी। अतः शेर शिवाजी द्वारा ही इन बस्तियों के रद करने की बात मानी जा सकती है। हाथी रूपी औरंगजेब तो जंगली जानवर तेंदुए, बघर्रा, गैंडा आदि से ही भयभीत रहता है। अतः शेर द्वारा ही जंगलों की बरबादी होना ठीक है। जिसका मेल मरहठों की लूट से भी हो जाता है। अतः छन्द की प्रथम दो पंक्तियों से हाथी रूपी औरंगजेब का कोई संबंध नहीं।

तीसरी पंक्ति का 'जो' शब्द एक विशेष भाव की ओर संकेत

करता है। जो बड़े बनते और महान् समझे जाते थे तथा जिन्होंने अपना आतंक फैला रखा था, वे भी ढीले पड़कर शांत हो गये। औरंगजेब का महान् साम्राज्य और विशाल सेना की चिंघाड़ शेर शिवाजी के सामने मंद पड़ गई। उसका सब घमंड जाता रहा। यह है इस छन्द का अर्थ। इससे पता चलता है कि त्रिनेत्र जी अर्थ करने में कितनी ठोकरें खाते हैं! साथ ही 'कोड़ों देकर पढ़ने' की बात किस पर लागू होती है, इसका भी पता पाठकों को लग जाता है।

(३) एक बानगी और भी देखिये। त्रिनेत्रजी इस छन्द का अर्थ करते हुए कैसी ठोकरें खाते हैं। छन्द यह है—

"भौंसिला भुवाल साहितनै गढ़पाल,
दिन द्वै हू ना लगाये गढ़ लेत पंच तीस को।
सरजा सवाई जयसाह मिरजा को लीन्हें,
सौगुनी बड़ाई गढ़ दीने हैं दिलीस को।"

इसमें स्पष्ट कथन है कि शिवाजी ने पैंतीस किले जो थोड़े समय में जीते थे, वे सब बादशाह औरंगजेब को दे दिये। अर्थात जो ३५ किले जीते थे, वे सब मिर्जा जयसिंह के दबाव में पड़कर अथवा पारस्परिक रक्तपात से बचाने के लिए बादशाह को भेंट कर दिये। उक्त पद्य का यही अर्थ है। परंतु त्रिनेत्र जी इसका एक दूसरा ही अर्थ करते हैं। वे कहते हैं कि इसका आशय यह है।—"शिवाजी ने ३५ किले जीते तो थे परंतु दिये कितने इसका पता नहीं।"

इसके कुछ व्यावहारिक उदाहरण लीजिये। "मोहन ने पाँच रुपये उधार लिये थे और वापस कर दिये।" इसका यही

आशय लिया जायगा कि जितने उधार लिये थे, वे सब दे दिये। इसका कुछ भी अंश शेष नहीं रहा। इसी संबंध का एक और उदाहरण लीजिये। यथा—"सेना के कुछ सवार आये थे, पर थोड़ी देर ठहर कर चले गये।" इसका भी यही अर्थ लिया जायगा कि जितने सवार आये थे, वे सब चले गये। कोई सवार उस स्थान पर रह नहीं गया। परंतु त्रिनेत्र जी कहते हैं 'संभव है वहाँ पर कुछ सवार रह भी जायँ, अथवा रुपये वापस करने में कुछ कम ही लौटाये जायँ। परन्तु त्रिनेत्रजी के इस अर्थ को न तो कोई साहित्यिक ही मानेगा और न कोई अन्य व्यक्ति ही। अत: हम भी उनके आशय से सहमत नहीं हो सकते। इसी प्रकार भूषण का भी कथन है कि ३५ किले जो शिवाजी ने थोड़े समय में जीते थे, उन्हें मिर्जा जयसिंह की प्रसन्नता के लिए बादशाह को दे दिये। इस: पद्य का दूसरा कोई भी भाव नहीं है। परन्तु त्रिनेत्रजी का कथन है कि ३५ किले जीते थे, किंतु दिये २३ ही थे। यही आशय भूषण का है। इस पर कोई भी टिप्पणी देना व्यर्थ है।

इनके कुछ उदाहरणों की छान बीन हम "शिवा बावनी" पर विचार करते हुए तथा बहादुर खाँ के विषय में लिखते हुए पहले भी कर चुके हैं। अतः हम कह सकते हैं कि पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र उर्फ त्रिनेत्रजी साहित्यिक ज्ञान-गरिमा का प्रदर्शन करने में कितनी ठोकरें खाते हैं। यथार्थ रूप से देखा जाय तो इन पर "गजस्तत्र न हन्यते" वाली कहावत ही चरितार्थ होती है।

भूषण की राष्ट्रीयता

भूषणकी रचनाओं पर अराष्ट्रीयता का एक महान् आक्षेप

किया जाता है। परंतु अन्य दोषारोपणों की भाँति यह आक्षेप भी मिथ्या है। भूषण की राष्ट्रीयता शिवाजी के आदर्श पर निर्धारित है। उसमें न तो सामाजिक द्वेष की गन्ध है और न कोई अराष्ट्रिय भावना ही।

वे आजीवन सारे देश में राष्ट्रिय विचार फैलाने का स्तुत्य उद्योग करते रहे। उसका कारण था हिन्दुओं की आपसी-फूट और जाति-विभिन्नता। संगठनहीन होने के कारण उन्हें सर्वत्र औरंगजेबी अत्याचार का शिकार होना पड़ता था। उन पर धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक तीनों प्रकार की आपदाएँ आई हुई थीं। जिनसे त्राण पाना कठिन हो रहा था। इसके साथ ही हिंदू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, शूद्र आदि सबको एक राष्ट्र के रूप में ले आना भी उनका मुख्य लक्ष्य हो रहा था। अतः हिन्दुओं में हिन्दुत्व की विचारधारा बहाना और उन्हें संगठित करना भी भूषण का एक प्रधान कर्त्तव्य हो रहा था। इसी उद्देश्य से उन्होंने तत्कालीन मध्यदेश (वर्तमान युक्तप्रान्त) की छोटी-बड़ी रियासतों और पहाड़ी राज्यों में भ्रमण किया था तथा राजपूताने की रियासतों में घूमकर सवाई जयसिंह को उत्तरी भारत के इस राष्ट्रिय आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित किया था। फिर दक्षिण में भ्रमण कर छत्रपति शाहू को शिवाजी के आदर्श पर राष्ट्र-संघटन करने के लिए तैयार कर लिया था। इस संघटन में जाति-पाँति एवं वर्गरहित समाज की स्थापना करने का प्रयत्न किया गया था। जिसमें मुसलमानों और शूद्रों तक के लिए भी समान रूप में लेने की योजना थी।

भूषण के इस आन्दोलन में सामाजिक द्वेष नाम मात्र को भी न था। उन्होंने तो बीजापुर और गोलकुंडा की शिया रियासतों

को भी अपने इस संघटन में सम्मिलित कर लिया था। उनका आन्दोलन औरंगजेबी साम्राज्यवाद और उसके पैशाचिक कृत्यों के विरुद्ध था। न कि मुसलमान सम्प्रदाय के खिलाफ। हिन्दू-मुसलमानों में वैवाहिक सम्बंध स्थापित कराने तथा मेल जोल बढ़ाने का भूषण ने जो उद्योग किया था, उसी से हम उनके उस राष्ट्रिय स्वरूप का अनुमान कर सकते हैं। उनकी दृष्टि में कमजोर होना पाप था। समाज संघटन और शक्ति अर्जन ही हिन्दू समाज की रक्षा कर सकता था। इसीलिए वे उन्हें आपस में लड़ने से बचाते रहते थे। 'शिवराज भूषण' के २७६ वें छन्द में –

"हिन्दु बचाय बचाय यही,
अमरेश चन्दावत लौं कोइ टूटै।"

कहकर उन्होंने उसी भावना को अभिव्यञ्जित किया है।

भूषण सदैव राष्ट्रिय दृष्टि से 'हिन्दुत्व' की महत्ता प्रदर्शित करते रहते थे। महाराज छत्रसाल की 'छत्रसाल प्रशंसा के ८ वें छन्द में हिन्दुत्व की रक्षा करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए वे कहते हैं।—

"भूषण भनत राय चंपति को छत्रशाल,
रुप्यो रन ख्याल ह्वै कै ढाल हिन्दुआने की।"

इसी प्रकार भूषण ग्रंथावली १२ वें छन्द में भगवन्तराय खीची को भी वे हिन्दुत्व का स्तम्भ मानते हुए कहते हैं।

"फूटे भाल भिक्षुक के जूझे भगवन्तराय,
अरराय टूटयो कुलखंभ हिन्दुआने को।"

एक छन्द में भूषण 'हिन्दुत्व' के नाश का कारण बतलाते हुए कहते हैं ।—

"आपस की फूट ही तैं सारे हिन्दुआन टूटे ।"

शि० भू० फुटकर छन्द ११७ ।

फिर हिन्दू धर्म और संस्कृति के रक्षक-रूप में भूषण शिवाजी का वर्णन इस प्रकार करते हैं ।—

"साहि के सपूत सिवराना किरवाना गहि,
राख्यो है खुमाना नरवाना हिन्दुआना को ।"

शि० भू० फुटकर छन्द १८ ।

इसमें वीरत्व के प्रतीक रूप से ही शिवाजी का वर्णन किया गया है । साथ ही राष्ट्रपति के रूप में भूषण शिवाजी के यश का वर्णन इस प्रकार करते हैं ।—

" 'भूषण' भनत मुगलान सबै चौथ दीन्हीं,
हिन्द में हुकुम साहिनन्द जू को ह्वै गयो ।"

अब शाहू के विवाह का ढंग भी देखिये । –

"ऐसे ब्याह करत बिकट साहू साहन सों,
हद्द हिन्दुआन जैसे तुरुक ततारा की ।

शि० भू० फुटकर छन्द ३० ।

इन उदाहरणों से हम भूषण की हिन्दुत्व-संबंधी भावना का अनुमान कर सकते हैं । परंतु इनमें कहीं भी अराष्ट्रियता का दर्शन नहीं होता । यह ठीक है कि भूषण की राष्ट्रियता में हिन्दुओं का ही विशेष चित्रण किया गया है । उस समय अधिकांश मुसलमान

साम्प्रदायिक रँग में रंगे हुए थे, फिर भी उच्च कोटि के मुसलमानों का अभाव न था। इसलिए भूषण ने अनेक मुसलमान सज्जनों की प्रशंसा की है। वे बाबर, अकबर आदि बादशाहों की नीति के प्रबल पक्षपाती थे। औरंगजेब को भी उसी नीति पर चलने का निर्देश करते रहते थे। न चलने पर उसकी भर्त्सना भी खूब करते थे।

इस पर भी यदि कुछ विद्वेषी जन उनकी रचना पर अराष्ट्रियता अथवा जातिगत विद्वेष का आरोप करें तो यह उनकी अनभिज्ञता का ही द्योतक है। लोगों ने भूषण के विचारों को ठीक-ठीक नहीं समझा। इसलिए वे भूषण की कविता पर आक्षेप कर बैठते हैं। मुख्यतः तुर्क आदि शब्दों को समाजवाचक समझ कर ही उनके हृदयों में इस प्रकार के विचार उठ खड़े होते हैं। परंतु भूषण की शैली वैदिक होने से उन शब्दों की व्याख्या का रूप भी भिन्न होता है। भूषण ने 'तुर्क' शब्द 'ज़ालिम' के अर्थ में लिया है। उन्होंने उसे कहीं पर भी मुसलमानवाची नहीं माना, न इस रूप में प्रयुक्त ही किया है।

भूषण ने पददलित हिन्दू जाति को संघटन का महत्त्व समझा कर समाज को एक शृंखला में आबद्ध करने का उद्योग किया था। हिन्दू-समाज की संकुचित भावनाओं को उन्होंने जड़ से उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया था। अकबर के समय में जिस वैवाहिक सम्बन्ध को हिन्दुओं द्वारा तिरस्कृत एवं घृणित कहा जा चुका था, तथा जिसके लिए राजपूताने के अनेक प्रधान राज्यों में पारस्परिक शत्रुता की गहरी नींव जम चुकी थी, उसी कार्य को भूषण ने जिस बुद्धिमत्ता से सुलझाया वह भूषण के ही योग्य था। अपने समकालीन तीन विभूतियों – बाजीराव पेशवा, छत्रसाल बुंदेला और सवाई जयसिंह—को पारस्परिक मैत्री में आबद्ध

कर देना भूषण का ही काम था। केवल यही नहीं, उन्होंने उनके सामजिक और धार्मिक विचारों में भी बहुत समानता ला दी थी। ये विभूतियाँ उस समय हिन्दुत्व के प्राण थीं। शिवाजी की एकत्रित राष्ट्रिय विभूति के नष्ट होने पर उसका पुनरुद्धार करनेवाले बाजीराव पेशवा ही थे। छत्रसाल बुंदेला ने ३५०) वार्षिक आय की जागीर से दो करोड़ की वार्षिक आय का एक विशाल स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था। सवाई जयसिंह के विषय में 'टाड राजस्थान' में लिखा है कि उन्होंने १०६ विशेष कार्य किये थे। वे बड़े राजनीतिज्ञ, सभाचतुर, विज्ञानवेत्ता और उदार व्यक्ति थे। भूषण ने इनके सम्बन्ध में "भारी भूमि भार के उबारन को ख्याल है" कहकर उनकी लगन और देश प्रेम की ही ओर संकेत किया है।

भूषण की राष्ट्रियता के विषय में विद्वत्प्रवर सावरकर महोदय अपनी 'हिन्दुत्व' नामक पुस्तक में लिखते हैं। "हमारे उन राष्ट्रिय चारणों में जो हिन्दू स्वाधीनता के युद्ध के उस काल में देश भर में भ्रमण करके हिन्दुस्तान को 'तस्मात्वमुत्तिष्ठ यशोलभस्व' का उपदेश दे रहे थे, महाकवि भूषण बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने औरंगजेब को ललकार कर कहा था —

"हिन्दुन के पति सों न बिसात,
सतावत हिन्दु गरीबन पाय कै।"

तथा

"जगत में जीते महावीर महाराजन ते,
महाराज बावन हू पातसाह लेवा ते।

इस दृष्टि से शिवाजी महाराज और उनके साथियों के

पराक्रम की समस्त हिंदुस्तान में स्तुति हो रही थी। भूषण मरहठे नहीं थे, परंतु शिवाजी से लेकर बाजीराव तक समस्त मरहठा-विजेताओं की विजय-यात्रा का उन्हें इतना ही अभिमान था, जितना स्वयम् मरहठों को। भूषण हिंदुत्व के परम अभिमानी थे और अपने जीवन के शेष क्षण तक वे अपने उद्दीपक कवित्तों को सुनाकर तत्कालीन हिंदू नेताओं में हिंदुत्व का अभिमान जगाते रहते थे।" †

श्रीयुत गोविन्द गिल्लाभाई ने भी अपने गुजराती 'शिवराज शतक' नामक ग्रन्थ में भूषण के इस उद्योग तथा भ्रमण का स्पष्ट उल्लेख किया है।

उपर्युक्त वर्णन से हम 'भूषण' की यथार्थवादिता और उनके राष्ट्रिय स्वरूप का अनुमान कर सकते हैं। उन्होंने कभी किसी की झूठी प्रशंसा नहीं की, न उनकी रचनाओं से इस प्रकार के भाव व्यक्त ही किये जा सकते हैं।

जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह तथा छत्रपति शाहू के सम्बंध में श्री सरदेसाई अपने 'भारतीय इतिहास' के मध्य विभाग-खंड में लिखते हैं।—"शाहू महाराज और सवाई जयसिंह में तो हिन्दू पद पादशाही स्थापन और धर्मरक्षा के विषय में विवाद ही चल पड़ा था कि 'हिंदूधर्म' के लिए हमने क्या किया और तुमने क्या किया? तथा किसने हिन्दुओं और उनके धर्म रक्षणार्थ अधिक उद्योग किया।" ऐसे दो व्यक्तियों की मैत्री कराना क्या साधारण कार्य था?

इन सब बातों से हम भूषण की कार्य-शैली का सरलता-पूर्वक अनुमान कर सकते हैं। उनका लक्ष्य था अत्याचार का

---

† 'हिन्दुत्व' पृ० ५१-५३।

निरोध और सामाजिक सुधारों द्वारा हिंदू जाति में ऐक्य और संघटन स्थापित करना। परन्तु इसके साथ ही देश को एक राष्ट्र के रूप में संघटित करना उनका प्रमुख उद्देश्य था। इसके लिए वे जातिभेद, समाज भेद और छुआछूत आदि बुराइयों को उठा देना चाहते थे। जिससे जातीय संघटन में किसी प्रकार की बाधा न पड़े और राष्ट्र एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में परिगणित हो सके।

भूषण का वह युग 'स्वर्ण प्रभात' के नाम से विख्यात था, जिसमें अनेक विभूतियाँ अवतीर्ण होकर राष्ट्रोत्थान में संलग्न थीं। उसके सूत्रधार भूषण ही थे, जो भारत के रंगमंच पर सर्वोत्कृष्ट पात्र की भाँति अपना खेल खेल कर अन्तर्ध्यान हो गये।

उपसंहार

यद्यपि इस पुस्तक में भूषण-विषयक अनेक घटनाओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है, फिर भी उनके जीवन की बहुत सी घटनाएँ या तो अंधकार के गर्त में विलीन हैं अथवा लुप्तावस्था में हैं। अब तक जितनी बातें जानी जा चुकी हैं, उनसे "स्थाली पुलाक-न्यायेन" यह तो अवश्य प्रतीत हो जाता है कि भूषण का व्यक्तित्व महान् था और उनके कार्य राष्ट्र के लिए ईश्वरीय वरदान के समान थे।

भूषण पर किये गये आक्षेपों पर गंभीर दृष्टि डालने से विदित होता है कि वे तीन श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं।

(१) वे सज्जन जो भूषण की साम्राज्य-विरोधी नीति को अहितकर समझते हैं।

(२) वे महाशय जिन्हें उनकी रचना में जाति-विद्वेष की गन्ध आती है।

(३) वे महानुभाव जो अहिंसा को अपना ध्येय मानकर भूषण की कान्ति को बाधक समझते हैं।

भूषण ने साम्राज्यवाद के विरोध में मोर्चा लिया था और औरंगजेबी साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न किया था। अतः साम्राज्य के भक्तों और समर्थकों का उनसे चिढ़ना स्वाभाविक है। उन लोगों ने मिस मियो की "मदर इंडिया" की भाँति अपनी लेखनी और वाणी समाज में भूषण संबंधी अनेकों भ्रान्तियाँ फैलाई हैं।

भूषण का व्यक्तित्व और उनके कार्य राष्ट्र की महान सम्पत्ति रूप में ऐतिहासिक पृष्ठों पर लिखे हुए हैं। इतिहास के सत्य व हितकारी रूप को भिन्न रूप में परिवर्तन करना किसी समाज के लिए प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। आवश्यकता तो इस बात की है कि भारत के पक्षपातपूर्ण इतिहास का संशोधन कराया जाय जिसके फलस्वरूप हमारे देश का वास्तविक उत्साहवर्द्धक इतिहास हमारे समक्ष आ सके। इस दृष्टि से हमें भूषण के सम्बन्ध में जो थोड़ी-बहुत बातें ज्ञात हुई हैं, इस पुस्तक में उन्हीं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

भूषण का व्यक्तित्व महान और उनकी विद्याविषयक योग्यता तथा प्रतिभा उत्कृष्ट थी। उनका सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक तीनों प्रकार का ज्ञान अति उत्तम था। सामयिक गति को उत्कर्ष देने वाला था। अलंकार पर पूर्ण आधिपत्य होने के कारण ही विद्वानों में उनकी धाक बैठी हुई थी। समाज उन्हें संघठनकर्ता मानता था। उनके धार्मिक विचार बहुत ही परिष्कृत थे। इन्हीं तीनों प्रकार की परिपक्वताओं के कारण उन्हें

भूषण' की उपधि मिली थी। देश के एक जाज्वल्यमान रत्न होने और पांडित्य में सर्वोच्च माने जाने के कारण ही वे 'भूषण' कहे गये थे।

भूषण की भावना वैदिक आधार पर अवलम्बित थी। उसमें 'श्लेष' की प्रधानता है। अतः 'भूषण' शब्द में भी हमें वही विचार-धारा कार्य करती हुई दिखलाई देती है, जो उन्हें अपनी आलंकारिक विद्वत्ता तथा राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक परिष्कृत शैली का अनुगमन करने के कारण ही प्राप्त हुई थी।

भूषण और शिवाजी के विचारों तथा कार्यों की तुलना करने से ज्ञात होता है कि दोनों की भावनाएँ एक ही मार्ग का अनुगमन कर रही थीं। दोनों ही समाज-सुधार के पक्षपाती और स्वराज्य स्रष्टा थे। उनमें यदि प्रथम महर्षि वाल्मीकि के मार्ग का अनुगमन कर रहा था, तो दूसरा भगवान् राम के पदानुसरण करने में अपना अहो भाग्य समझता था। शिवाजी का समर्थ गुरु रामदास को सारा राज्य अर्पण कर देना, भगवान् राम के राज्य-त्याग के समान ही महत्वपूर्ण है। एवं उनके अपूर्व उत्सर्ग का द्योतक है। इसीलिए भूषण ने उन्हें ईश्वर के अवतार रूप में चित्रित किया है। तत्कालीन महाराष्ट्र प्रान्तीय ग्रन्थों में भी हमें यही भावना कार्य करती हुई दृष्टिगोचर होती है। 'शिव भारत' नामक संस्कृत ग्रन्थ और 'राधामाधव विलास चम्पू' में भी हमें भूषण के उन विचारों का पूर्ण परिचय मिलता है।

भूषण की विशेषताओं पर पूर्णरूपेण विचार करने पर यह आशा होती है कि समाज और देश भूषण के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयत्न करेगा, जिससे देश के कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा तथा उनका प्रिय क्रीड़ास्थल भारत उन्नति के पथ पर चलकर उत्कृष्ट राष्ट्रों के समकक्ष स्थान पाने में समर्थ होगा।

१०—परिशिष्ट

सवायी जयसिंह

भूषण-कालीन तीन विभूतियों (१) सवायी जयसिंह * (२) छत्रपति छत्रसाल और (३) बाजीराव पेशवा ने भारतीय राष्ट्रोत्थान में एक महान् कार्य किया है। उत्तरी भारत में सवायी जयसिंह ने सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त कर लिया था।

टाड साहब ने अपने 'एनल्स राजस्थान' में सवायी जयसिंह पर यह आक्षेप किया है। कि "उन्होंने उत्तरी भारत की कुंजी मरहठों के हाथ में दे दी तथा मक्कारी से मुग़लों की शक्ति क्षीण करने में सहायक बने। यही नहीं, टाड साहब ने उनकी राष्ट्रियता और धार्मिकता † में भी संदेह किया है और बतलाया है कि उन्होंने मरहठों की सहायता केवल राष्ट्रियता की दृष्टि से नहीं की वरन मालवा का सूबेदार रहते हुए मरहठों से कुछ स्वार्थ पूर्ण संधि कर ली थी। इस प्रकार साम्राज्यवाद को हानि पहुँचाई।"

इस विषय में टाड साहब ने कई प्रकार की भूलें की हैं। उन्होंने इस पर विचार ही नहीं किया कि उस समय औरंगजेबी नीति के कारण सारा 'हिन्दू' और 'शिया'-समाज विक्षुब्ध था। अतः उनमें

---

* 'हिन्दुत्व' पृ० ५१-६०।

† 'टाड राजस्थान' भाग २ पृ० २९१-७।

राष्ट्रियता की प्रबल धारा बहना स्वाभाविक था। सौभाग्य से उस समय महाकवि भूषण अपनी राष्ट्रिय कविता एवं राजनीतिक भावना द्वारा सारे भारतवर्ष में राष्ट्रियता का प्रसार कर रहे थे और सम्पूर्ण देश में घूम-घूम कर अखिल हिन्दू-समाज तथा अन्य मुसलमानों आदि को संघटन में लाने का घोर प्रयत्न करते दिखाई देते थे। उसी का यह परिणाम था कि सवायी जयसिंह और बाजीराव पेशवा में घनिष्ठ मैत्री हो गई थी।

औरंगजेब ने मिर्जा जयसिंह को— जो सवायी जयसिंह के प्रपितामह थे; विष दिलवाया था और उनके पुत्र की भी वही दशा की थी। इसी प्रकार जोधपुर-नरेश महाराजा जसवन्तसिंह और उनके पुत्रों को भी धोखा देकर मरवा डाला था। ऐसी दशा में उनकी संतान कहाँ तक वफादार रह सकती थी। यदि इतने पर भी किसी में स्वाभिमान न झलके तो उसमें मनुष्यत्व का अभाव ही मानना पड़ेगा।

फिर दिल्ली के वजीर कमरुद्दीन ने तो सवायी जयसिंह को जयपुर राज्य की गद्दी से पदच्युत करके उनके सौतेले भाई विजयसिंह को गद्दी पर बैठाने का उद्योग किया था। यदि जयसिंह इतना चतुर और सावधान न होता, तो न तो वह अपना राज्य प्राप्त कर सकता था, न उसे बढ़ा ही सकता था और न राष्ट्र का ही कोई कल्याण कर सकता था।

उसने अपने राज्य का विस्तार दिल्ली तक कर लिया था। उसका कोष धन से परिपूर्ण रहता था। उसने जयपुर नगर का बहुत ही भव्य रूप में निर्माण कराया था। उसने विद्वानों की

दो धार्मिक सभायें करवाई थीं। जिनमें राष्ट्रिय तथा धार्मिक दृष्टि से समाज-संशोधन का विधान रचवाया था। वह सदैव विद्वानों का आदर करता था और ज्योतिष का तो वह स्वयं ही गंभीर विद्वान् था। उसने उज्जैन, जयपुर, काशी और दिल्ली में वेधशालाएँ बनवाई थीं। इस प्रकार जयपुर-नरेश की कार्य प्रणाली अनेक दिशाओं का अवलम्बन कर रही थी और वह १०६ विद्याओं का ज्ञाता माना जाता था।

भूषण के सहयोग से महाराज सवायी जयसिंह में और भी विशेषताएँ आ गई थीं। राजनीतिक क्षेत्र में भी वे कम चतुर न थे। इस पर भी उन्हें मालवा की सूबेदारी बाजीराव पेशवा की सिफारिश पर ही मिली थी। उस समय दिल्ली के बादशाह पर बाजीराव पेशवा का क्या प्रभाव था, यह इतिहास के पढ़ने वालों से छिपा नहीं है। ऐसी दशा में जयसिंह का मरहठों के विरुद्ध कुछ भी कार्य करना, विश्वासघात होता और वे स्वयं अपनी हानि भी करते। अतः उनकी बुद्धिमानी इसी में थी कि वे सचाई और ईमानदारी से बाजीराव पेशवा का साथ देते, जैसा कि उन्होंने किया।

रहा मुगलिया वंश का साथ न देना। वह तो स्वयं ही अपने पापों से नष्ट हो रहा था। उसका साथ देकर अपनी शक्ति क्षीण करना मूर्खता होती। राव बुधसिंह का पतन इसी का परिणाम था। अतः सवायी जयसिंह जैसे धार्मिक और राजनीतिक व्यक्ति से यह आशा करना ही व्यर्थ था। फिर उन्हें मुगलों से राजपूतों तथा अपने पूर्वजों का बदला चुकाना भी अभीष्ट था क्योंकि औरंगजेब एक प्रकार से राष्ट्रिय शत्रु हो रहा था। इसलिए सवायी जयसिंह पर मक्कारी का दोषारोपण करना नितान्त मिथ्या एवं असंगत है। उन्होंने वही कार्य किया,

जो उच्चकोटि के एक धार्मिक, राजनीतिक और राष्ट्रिय व्यक्ति को करना उचित था।

सवायी जयसिंह के राजनीतिक चातुर्य की तो ऐतिहासिकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है और उसे राष्ट्र के लिए परम हितकारी बतलाया है। परन्तु उनके सामाजिक और धार्मिक कार्यों की ओर जनता का ध्यान ही आकृष्ट नहीं हुआ और न ऐतिहासिकों ने ही उनपर दृष्टिपात किया है। आशा है देश के विद्वान इस ओर शीघ्र ध्यान देंगे और राष्ट्र के कल्याणकारी कार्यों (जो सवायी जयसिंह और भूषण ने मिलकर किये हैं) पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।



सहायक ग्रन्थों की सूची

वृत्त कौमुदी, रचयिता मतिराम द्वितीय (हस्तलिखित प्रति)

विक्रम सतसई की रस चन्द्रिका टीका (हस्तलिखित प्रति)

मिश्रबन्धु विनोद, चार भाग।

हिन्दी नव रत्न।

साहित्य सिंधु (हस्तलिखित प्रति)

शिवसिंह सरोज।

हिन्दुत्व (सावरकर कृत)

हिन्दी पुस्तकों की खोज रिपोर्टस।

खोज रिपोर्टस की सूची।

पिंगल, चिन्तामणि कृत (हस्तलिखित प्रति)

कुमाऊँ राज का इतिहास।

रीवाँ राज्य दर्पण।

तवारीख बुन्देलखंड (उर्दू)

भूषण ग्रंथावली (हस्तलिखित प्रति, काशी राज्य पुस्तकालय) तथा छपी हुई प्रतियाँ, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग, साहित्य सेवक कार्यालय काशी, राम नारायण लाल बुकसेलर प्रयाग, इत्यादि इत्यादि।

शिवा बावनी (हस्तलिखित और छपी प्रतियाँ)

प्रबोध रस सुधासर, नवीन कृत (हस्तलिखित प्रति)

फतह प्रकाश (रतनकवि कृत हस्तलिखित प्रति)

टाड राजस्थान, दो भाग।

(१) पारसनीस का इतिहास।

(१) केलूस्कर का इतिहास।

शिवा छत्रपति बी० एन० सेन कृत सभासद बखर का अनुवाद।

खफी खाँ की तारीख (अंग्रेजी अनुवाद)
वंश भास्कर।
शिवाजी (पं० नन्द किशोर देव शर्मा कृत)।
तजकिरए सर्व आज़ाद हिन्द (फ़ारसी)
वाकियाते मुमलिकात बीजापुरी।
औरंगजेब नामा।
बुन्देलखंड का इतिहास (हिन्दी)
गार्सॉं द तासी कृत इस्त्वार द ला लितरेत्योर इंदु ई
ए इंदुस्तानी (फ्रेंन्च बुक)
कान्य-कुब्ज वंशावली (हस्तलिखित प्रति)
मतिराम सतसई (पं० कृष्ण विहारी मिश्र द्वारा सम्पादित)
छत्रसाल।
वीरसिंह देव चरित (केशवदास कृत)
हिम्मत बहादुर विरुदावली (पदमाकर कृत)
छत्र प्रकाश।
कविता कौमुदी।
ललित ललाम।
रस राज।
रहिमन विनोद।
सोलंकियों की वंशावली (रीवां राज्य पुस्तकालय)
सुरकियों की वंशावली (हस्तलिखित प्रति) पटेहरा राजासाहब के पुस्तकालय से प्राप्त।
शिवराज शतक (गुजराती)
हिन्दी साहित्य का इतिहास (बाबू श्यामसुन्दर दास कृत)
,, ,, (पं० रामचन्द्रजी शुक्ल कृत)
,, ,, (पं० सूर्यदेवजी शर्मा, डी० लिट० कृत)

,, ,, (पं० रामशंकर शुक्ल रसाल कृत)

,, ,, (केइ कृत अंग्रेजी)

हिन्दी (पं० बदरीनाथ भट्ट कृत)

राधामाधव विलास चम्पू (मरहठी)

शिव भारत (संस्कृत)

शिवदिग्विजय (,,)

कुवलयानन्द (,,)

साहित्य दर्पण (पं० शालिग्राम शास्त्री कृत विमला टीका)

काव्य प्रकाश (मम्मट कृत)

वाल्मीकीय रामायण।

अद्भुत रामायण।

ऋग्वेद संहिता।

यजुर्वेद संहिता।

दुर्गा सप्तशती।

उत्तर रामचरित नाटक।

कवि-कुल-कल्पतरु (चिन्तामणि कृत)

अलंकार पंचाशिका (हस्तलिखित) मतिराम कृत।

वैदिक सम्पत्ति (पं० रघुनन्दन शर्मा कृत)

कान्य-कुब्ज जाति का इतिहास (रघुनन्दन शर्मा कृत)।

वैस क्षत्रीय वंशावली।

पृथ्वीराज रासौ।

राज रत्नमाला (मुंशी देवी प्रसाद कृत)।

भगवन्त राय रासा (सदानन्द कृत)

सुजान चरित्र।

श्रृङ्गार संग्रह (सरदार कवि कृत)

पं० श्री लाल जी महापात्र, असनी के कवित्तों का संग्रह।

आ

इ

अं

क

ख

घ

च

श

ह

क्ष

त्र

ज्ञ